हिंदी साहित्य में मुस्लिम साहित्यकारों का योगदान

हिंदी साहित्य में
मुस्लिम साहित्यकारों का योगदान

डॉ. आसिफ उमर

अनुक्रम

प्रसंगवश	....	09–14
हिंदी साहित्य का आदिकाल और मुस्लिम रचनाकार (अब्दुर्रहमान और अमीर खुसरो)	....	15–52
हिंदी साहित्य का मध्यकाल और मुस्लिम रचनाकार (कबीर, जायसी, रसखान, रहीम)	....	53–85
आधुनिक हिंदी साहित्य की विविधता और मुस्लिम रचनाकारों की उपस्थिति (राही मासूम रजा, शानी, मेहरून्निसा परवेज, शकील सिद्दीकी, असगर वजाहत, अब्दुल बिस्मिल्लाह, अनवर सुहैल, नासिरा शर्मा, मंजूर एहतेशाम व अन्य)	....	86–133
मुस्लिम रचनाकारों के साहित्यिक योगदान का मूल्यांकन	....	134–145
परिशिष्ट-I	....	146–151
परिशिष्ट-II	....	152–160
परिशिष्ट-III	....	161–175
परिशिष्ट-IV	....	176–188

'हिन्दी साहित्य में मुस्लिम साहित्यकारों का योगदान' विषय पर पुस्तक लिखने की राय मुझे मेरे गुरु, अभिभावक और मार्गदर्शक पद्मश्री प्रोफेसर अख्तरुल वासे साहब ने दी। मुझ पर इतना विश्वास करने के लिए सर का मैं जीवन भर आभारी रहूँगा। सर ने हमेशा मेरा मार्गदर्शन किया है और मुझे निरंतर काम करने के लिए प्रोत्साहित किया है। मैं इस पुस्तक को अपने गुरु प्रोफेसर अख्तरुल वासे सर को समर्पित करता हूँ और खुसरो फाउंडेशन का दिल से आभारी हूँ जिन्होंने मुझ पर विश्वास किया।

प्रसंगवश

जैसा कि हम सभी लोग जानते हैं कि साहित्य और समाज एक दूसरे के अस्तित्व और निर्माण पर निर्भर करते हैं। ठीक इसी तरह प्रत्येक साहित्य में समाज का प्रत्येक समुदाय अपनी–अपनी भूमिका के माध्यम से समाज को चित्रित करने का प्रयास करता है। किसी भी साहित्य की यदि हम चर्चा करते हैं तो उसमें समाज के प्रत्येक हिस्से का प्रतिनित्वि लगभग हर समुदाय के लोग कहीं न कहीं करते दिखाई देते हैं। 'हिन्दी साहित्य में मुस्लिम साहित्यकारों के योगदान' पर पुस्तक लिखने का उद्देश्य अल्पसंख्यक विमर्श को नई शुरुआत और एक नया आयाम देना है। आज हिन्दी साहित्य में हर तरफ अलग–अलग विमर्शों पर गंभीर चर्चाएँ देखने को मिल रही हैं। लेकिन अल्पसंख्यक विमर्श अभी भी उससे दूर है। अल्पसंख्यक विमर्श के अंतर्गत न केवल सामाजिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक और आर्थिक समस्याओं का उदघाटन ही करना है बल्कि इस विमर्श के माध्यम से क्या कुछ नया हो सकता है उस पर बल देना अति आवश्यक लगता है। हर युग में जीवन–मूल्य बदलते हैं और उनके साथ ही साहित्य का उद्देश्य भी बदल जाता है। हिन्दी साहित्य का आदिकाल, मध्यकाल (भक्ति और रीति) और आधुनिक काल अपने युग की समस्या और जीवन मूल्यों के बदलते चरित्र को उजागर करता है।

प्रसिद्ध पाश्चात्य विचारक रस्किन के अनुसार लोकादर्श की स्थापना ही साहित्य का लक्ष्य है। मानव मात्र में एकता एवं भ्रातृत्व की भावना स्थापित करना साहित्य का एक प्रमुख लक्ष्य है और यही लक्ष्य लेकर हर युग में साहित्य आगे बढ़ता है। वस्तुतः साहित्य समाज का दर्पण है और साहित्यकार समाज का ही एक अंग है। अतः वह कविता,

कहानी, उपन्यास आदि विभिन्न साहित्यिक विधाओं में न सिर्फ अपने को ही अभिव्यक्ति करता है बल्कि अपनी रचनात्मकता के माध्यम से समाज के विभिन्न पक्षों को उजागर भी करता है।

अँग्रेजी के कवि एवं आलोचक मैथ्यू अर्नोल्ड ने बुद्धि द्वारा अनुमोदित सौन्दर्य को साहित्य कहा है अर्थात साहित्य की वास्तविक सत्ता बुद्धि द्वारा प्रतिपादित सौंदर्य में निहित है। वस्तुतः जो सुंदर है, शिव है वही साहित्य है। साहित्य में सत्य भी होता है और कल्पना भी किन्तु कल्पना का भी मूल आधार सत्य ही होता है। कहने का अभिप्राय ये है कि साहित्य सत्यम, शिवम और सुंदरम है। साहित्य की यह परिभाषा सार्वदेशिक और सार्वकालिक कही जा सकती है।

आज इक्कीसवीं सदी में जब हिन्दी साहित्य के हजार वर्ष पूरे हो चुके हैं, अल्पसंख्यक विमर्श की गूंज सुनाई दे रही है। हिन्दी में अल्पसंख्यक विमर्श का अर्थ उस साहित्य से लिया जाता है जिस साहित्य को मुस्लिम हिन्दी लेखकों ने स्वयं अपने समाज के बारे में लिखा है। इन लेखकों में राही मासूम रज़ा, शानी, असगर वजाहत, अब्दुल बिस्मिल्लाह, मंज़ूर एहतशाम आदि का नाम प्रमुखतः से लिया जाता है। ये ऐसे साहित्यकार हैं जिन्होंने भारत मे रह रहे मुस्लिमों की समस्याओं पर लेखनी चलाई है। इन्होने मुस्लिम समाज में देश विभाजन के बाद की स्थिति, अल्पसंख्यक होने का दंश, गरीबी, अशिक्षा आदि विषयों को मुद्दा बनाया लेकिन ऐसा नहीं है कि यह समस्याएँ सिर्फ मुस्लिम समाज की है। डॉ. मोहम्मद अलीम कहते हैं, " प्रसिद्ध मुस्लिम कवियों और लेखकों की रचनाओं पर यदि बारीकी से नजर डालें तो ऐसा लगता है कि उनके लेखन में वही दर्द और छटपटाहट है जो अन्य धर्म-जाति से आने वाले रचनाकारों के यहाँ मौजूद हैं। सभी ने अपने-अपने समाज की समस्याओं, उसकी विसंगतियों पर से पर्दा उठाने की कोशिश की है। किसी का संबंध जागीरदाराना समाज से है तो उसने अपने समाज की उन्हीं समस्याओं पर कलम उठाया है। किसी का संबंध निम्न वर्ग से है तो उसने इस पर लिखा है। मगर उन पात्रों के नाम यदि

हटा दिये जाएँ और उसे कोई तटस्थ सा नाम दे दिया जाए तो फिर यह फर्क करना मुश्किल हो जाएगा कि यह समस्याएँ हिन्दू समाज की हैं या मुस्लिम समाज की हैं।

हिन्दी साहित्य के आदिकाल का प्रारम्भ एक हजार ईसवी के आस-पास माना जाता है। इस काल में हिन्दी के दो महत्वपूर्ण मुस्लिम रचनाकार सामने आते हैं- अब्दुर्रहमान और अमीर खुसरो। अब्दुर्रहमान की रचना संदेशरासक विरह काव्य के रूप में प्रसिद्ध है। इनकी भाषा अपभ्रंश मिश्रित है। इसका कारण है कि भारत में मुस्लिम राज की स्थापना के पूर्व ही बहुत से सूफी और व्यापारी यहाँ पर बस गए थे। अब्दुर्रहमान उसी परंपरा से थे, इसलिए उनकी भाषा में अपभ्रंश का अंश मौजूद है।

अमीर खुसरो ने कई बादशाहों का शासन देखा। उन्हें खुद के हिन्दुस्तानी होने पर गर्व था। जो हिन्दी भाषा (खड़ी बोली) आज प्रचलित है, आदिकाल में सिर्फ अमीर खुसरो ही हैं जिनकी भाषा आज की भाषा से मेल खाती है। इस समय तक मुस्लिम राज भारत में व्यवस्थित हो चुका था इसलिए बहुसंख्यक आबादी की भाषा, हिन्दी संवाद और साहित्य का माध्यम बनी। मध्यकाल तक आते-आते मुस्लिम रचनाकारों की बाढ़ सी आ गई। उनकी रचनाओं में हिंदुस्तान की मिट्टी की सोंधी खुशबू दिखाई देती थी। कथानक भारतीय था। सामाजिक समन्वय की पुकार थी, शासन-तंत्र के लिए फटकार। आततायी का विरोध जायसी करते हैं तो कबीर सभी तरह की सत्ताओं को नकार कर एक समन्वित समाज की हिमायत करते हैं। ये सारे भारतीय मुस्लिम साहित्यकार वैचारिक दृष्टि से सूफी थे और पारस्परिक प्रेम और सौहार्द में विश्वास रखते थे। प्रारंभिक मुस्लिम साहित्यकारों में जिनका आम जनता से सीधा सरोकार था उन्होंने कई स्तरों पर समाज को एक नए संदेश के माध्यम से जोड़ने की कोशिश की। उन्होंने प्रेम के माध्यम से समाज को प्रेम के एक धागे से जोड़ने का प्रयास किया। प्रेम ही एक ऐसा बीज तत्व है जिसके माध्यम से जहाँ एक ओर मनुष्य और मनुष्य

के बीच की खाई पट सकती है वहीं दूसरी ओर परम सत्ता से निकटता की भी संभावनाएं बनती हैं।

स्पष्ट हो जाता है कि कबीर जैसे रचनाकारों के लिए पहले से ही पृष्ठभूमि तैयार हो चुकी थी। अलग–अलग धार्मिक ठेकेदारों की वैचारिक जकड़न से समाज को मुक्त रखने का कार्य प्रारम्भ से ही ये साहित्यकार कर रहे थे। ये साहित्यकार सही अर्थों में पथ–प्रदर्शक थे।

मुल्ला दाऊद, कुतुबन, मंझन, मालिक मोहम्मद जायसी आदि की रचनाओं से हिन्दी के लगभग सभी अध्येता भली–भांति परिचित हैं। इन कवियों का तटस्थ एवं न्याय–संगत मूल्यांकन होना है। इनके प्रेमाख्यानक काव्यों में विभिन्न आलोचकों ने रुचि अवश्य ली है किन्तु उनकी दृष्टि कथानक के भारतीय या अभारतीय होने, हिन्दू या मुस्लिम संस्कारों की अभिव्यक्ति का जायजा लेने और इन्हें शृंगार–परक सिद्ध करने में सीमित रही है। साहित्यिक उद्देश्य का मूल्यांकन नहीं किया गया।

स्वाधीनता के पश्चात भारतीय समाज में कई तरह के बदलाव दृष्टिगोचर होते हैं। जहाँ एक तरफ समाज विभाजन की त्रासदी से गुज़र रहा था वहीं साथ ही मोहभंग और शहरीकरण की समस्या से भी गुज़र रहा था। एक तरफ शहर में एकल परिवार से निर्मित समस्या थी तो वहीं दूसरी तरफ ग्रामीण इलाकों में गरीबी और जातिगत समस्या अपने विकराल रूप में दिखाई दे रही थी। मुस्लिम साहित्यकार तटस्थ हो कर विभाजन की त्रासदी पर लेखनी चला रहे थे तो वहीं गरीबी तथा जातिगत समस्याओं पर भी मुखर हो कर लिख रहे थे। मुस्लिम साहित्यकार अपने सामाजिक भागीदारी को नज़रअंदाज न करते हुए समाज को एक नई दिशा देने का कार्य कर रहे थे।

हिन्दी साहित्य को समृद्ध करने में मुस्लिम रचनाकारों के योगदान को कमतर नहीं आँका जा सकता है। हिन्दी साहित्य के सभी काल–खंडों में इन्होंने अपनी शानदार उपस्थिति दर्ज कराई है। आदिकाल में जहाँ दो महत्वपूर्ण रचनाकार अब्दुर्रहमान और अमीर खुसरो अपनी कृति के

कारण कालजयी बने हुए हैं तो वहीं मध्यकाल में कबीर, जायसी, रहीम, रसखान भक्ति और सूफी मत के आलोक में अपने ज्ञान को आमजन के बीच बिखेर रहे हैं। आधुनिक काल में राही मासूम रज़ा, शानी, महरुन्निसा परवेज, शकील सिद्दीकी, असगर वजाहत, अब्दुल बिस्मिल्लाह, मंज़ूर एहतेशम जैसे रचनाकारों से कौन साहित्य प्रेमी परिचित नहीं है। 'हिन्दी साहित्य में मुस्लिम साहित्यकारों का योगदान' विषय पर सारगर्भित और शोधपूर्ण पुस्तक का अभी तक हिन्दी में अभाव सा दिखाई देता है। जिज्ञासु पाठक एवं शोध के छात्रों के लिए मुस्लिम हिन्दी के रचनाकारों के बारे में जानना और जानकारी उपलब्ध करना अत्यंत ही दुष्कर कार्य था। आशा करता हूँ यह पुस्तक हिन्दी साहित्य के आदिकाल से लेकर वर्तमान काल तक जितने भी महत्वपूर्ण रचनाकार हैं उनके बारे में विस्तृत जानकारी उपलब्ध कराती है। हिन्दी साहित्य में शोध करने वाले छात्रों के लिए यह एक महत्वपूर्ण पुस्तक साबित होनी चाहिए, वहीं सुधि पाठक भी इसके अध्ययन से अपने ज्ञान के सागर को और विस्तृत कर सकते हैं। इसके अलावा यह पुस्तक अल्पसंख्यक विमर्श को एक नए रूप में प्रस्तुत करती है।

'हिन्दी साहित्य में मुस्लिम साहित्यकारों का योगदान' विषय पर पुस्तक लिखने का उद्देश्य साहित्य में अल्पसंख्यक विमर्श की मजबूत नींव, बहस और भारत की गंगा-जमुनी तहजीब को सामने लाना है। यह इस बात का संकेत है कि भारत अपनी एकता और अखंडता के लिए जाना जाता है। भाषा सभी की है और हमें साहित्य के माध्यम से एकता की आवाज़ को मजबूत करने की तरफ पहल करनी चाहिए। यह जरूरी भी है।

अंत में मैं भारतीय गंगा-जमुनी तहज़ीब और जामिया मिल्लिया इस्लामिया के एक महत्वपूर्ण प्रसंग की तरफ इशारा करना चाहता हूँ। जामिया में एक समय ऐसा भी था जब हिन्दी विभाग के अध्यक्ष प्रोफेसर मुजीब रिज़वी थे और उसी समय उर्दू विभाग के अध्यक्ष प्रो. गोपीचन्द

नारंग हुआ करते थे। यह विषय इस बात की गवाही देता है कि हमारे मुल्क का रंग कितना खूबसूरत है और इसे खूबसूरत ही रहने दिया जाना चाहिए। इस पुस्तक की सामाग्री संकलन और महत्वपूर्ण योगदान के लिए मैं सभी गुरुजनों, साथियों, डॉ. अब्दुल हाशिम, शंभू जी, आज़म शेख, डॉ. मोहसिना बानो, मुदस्सिर खान, पूनम सिंह तोमर, डॉ. अज़हर, डॉ. अलीम साहब, कामरान वासे, आस मोहम्मद, कवर डिजाइन के लिए अली खान और सभी शुभ चिंतकों का शुक्रिया अदा करता हूँ। विशेष दुआओं और हौसला अफजाई, मार्गदर्शन और प्यार के लिए अम्मी जान, पत्नी डॉ. महजबी साहिबा, प्यारी बेटी महरीन और परिवार का बेहद शुक्रगुजार और आभारी हूँ।

'हिन्दी साहित्य में मुस्लिम साहित्यकारों का योगदान' विषय पर यह मेरा पहला संस्करण और प्रयास है। अभी मैंने इस पुस्तक में आदिकाल से अब तक के महत्वपूर्ण मुस्लिम साहित्यकारों को शामिल करने का प्रयास किया है। अगले संस्करण में शेष और नये मुस्लिम रचनाकारों को शामिल करने का प्रयास करूँगा। इस संस्करण में यदि कोई त्रुटि या तथ्यात्मक गलती हो तो इसके लिए मैं क्षमा प्रार्थी हूँ। अगले संस्करण में मैं त्रुटियों को सुधारने का प्रयास करूंगा।

डॉ. आसिफ उमर
हिन्दी विभाग
जामिया मिल्लिया इस्लामिया, नई दिल्ली।

पहला अध्याय

हिंदी साहित्य का आदिकाल और मुस्लिम रचनाकार

(अब्दुर्रहमान और अमीर खुसरो)

परिवेश और परिदृश्य

साहित्य में समाज प्रतिबिंबित होता है और समाज में केवल एक धर्म या सम्प्रदाय के लोग नहीं अपितु विभिन्न धर्म व सम्प्रदाय के लोग रहते हैं। जिस प्रकार एक विकासशील समाज अपनी उन्नति के लिए जनता के योगदान पर पूर्णत: निर्भर रहती है उसी प्रकार साहित्य भी अपनी उन्नति के लिए समाज के हर वर्ग, हर धर्म व हर सम्प्रदाय की भूमिका पर निर्भर करती है। किसी भी समाज के साहित्य को समृद्ध करने में हर धर्म और सम्प्रदाय का विशेष महत्व रहता है। कुछ विशिष्ट लोग अपनी सर्जन क्षमता के माध्यम से कुछ ऐसी प्रासंगिक रचनाओं का सृजन कर साहित्य को समृद्ध कर जाते हैं कि वे अपनी जाति और सम्प्रदाय के बंधनों से मुक्त होकर समस्त जन के प्रिय पात्र बन जाते हैं।

हिंदी साहित्य विश्व के समृद्ध साहित्यों में से एक है। और इसे समृद्ध करने का श्रेय केवल एक जाति या धर्म विशेष को ही नहीं दिया जा सकता क्योंकि इसे समृद्ध करने में सभी धर्म व सम्प्रदायों का योगदान रहा है। हिंदी साहित्य के इतिहास को पलटें तो हर युग में मुस्लिम साहित्यकारों ने अपना सुनिश्चित योगदान किया है, लेकिन इनके योगदान को जितना स्थान देना चाहिए उतना उनको नहीं दिया गया। इन सबके बावजूद बहुत से मुस्लिम साहित्यकार अपनी प्रतिभा के दम पर उभरकर सामने आए, जिन्हें नज़रअंदाज नहीं किया जा सकता। इनमें से कुछ के नाम निम्न रूप से हैं जैसे– बाबा फरीद, अमीर खुसरो, हमीदुद्दीन नागौरी, बू अली कलंदर, यह्या मनयरी, शम्स बलखी, मुल्ला दाऊद, मंझन, मलिक मुहम्मद जायसी आदि हिंदी भाषा के प्रसिद्ध कवि रहे हैं। इनके

अलावा मीर अब्दुल जलील, गालिब, अब्दुर्रहमान, शेख अब्दुल कुद्दू, शेख पियारा, शेख शाह मुहम्मद, मीर अब्दुल वाहिद, सैयद मीर, शाह अली मुहम्मद जीव, शाह बुराहानुद्दीन जानम, शेख अब्दुल फैजी, मुबारक, हाजी मुहम्मद नौशा, सैयद निजामुद्दीन महानायक, खूब मुहम्मद चिश्ती आदि कवियों ने हिंदी साहित्य को समृद्ध किया लेकिन साहित्यिक दुनिया के अतिरिक्त इनसे परिचित भी बहुत कम जन हैं।

कबीर, मुल्ला दाऊद, कुतुबन, मंझन, जायसी, रहीम आदि की रचनाओं से हम परिचित हैं शेष अन्य कवियों या रचनाकारों को हाशिए में रखा गया था। किंतु अब हिंदी साहित्य के इतिहास में मुस्लिम रचनाकारों के साहित्यिक योगदान को स्वीकार किया जा रहा है।

आदिकालीन हिंदी साहित्य की बात की जाए तो उस काल में दो प्रमुख मुस्लिम साहित्यकार का नाम प्रमुखता से लिया जाता है, जिसमें एक 'अब्दुर्रहमान' तथा दूसरे 'अमीर खुसरो' हैं। अब्दुर्रहमान के सन्दर्भ में अब तक कोई विशेष शोध व मूल्यांकन/अध्ययन नहीं किया गया है। इनकी प्रसिद्धि का कारण इनकी रचना 'संदेश रासक' है। इसी पुस्तक के आधार पर मुनि जिनविजय ने अब्दुर्रहमान को अमीर खुसरो से पूर्ववर्ती सिद्ध किया है। इनका जन्म 12वीं शताब्दी में माना जाता है। हिंदी साहित्य के इतिहासकार केशवराम काशीराम शास्त्री के अनुसार पश्चिम में यरूच से लेकर चैमूर नगर तक मुसलमानों का राज्य स्थापित होने पर अब्दुर्रहमान के पूर्वज ने किसी हिंदू बालिका से विवाह किया तथा उसी वंश में अब्दुर्रहमान उत्पन्न हुए। इन्होंने प्राकृत एवं अपभ्रंश का अध्ययन किया और अपने ग्रन्थ 'संदेश रासक' की रचना ग्राम्य अपभ्रंश में की।

अमीर खुसरो वर्तमान उत्तरप्रदेश के एटा में पैदा हुए तथा इनके पूर्वज तुर्क थे। इनका वास्तविक नाम 'अबुल हसन' था तथा खुसरो इनका उपनाम था। ऐसा माना जाता है कि खुसरो ने काव्य के क्षेत्र में शिक्षा किसी व्यक्ति से न लेकर सादी, सनाई, खद्कानी, कमाल तथा अनवरी आदि काव्य ग्रन्थों से ली। उनकी रचनाओं में खद्कानी, सनाई तथा अनवरी का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। उनकी साहित्यिक कृतियों में खालिक बारी, हालात-ए-कन्हैया, नजराना ए हिंदी, शिरीन खुसरो, तुगलकनामा तथा आइन-ए-सिकंदरी प्रमुख है। खुसरो अपने समय में अपनी पहेलियों के लिए बहुत प्रसिद्ध हुए। उनकी पहेलियाँ आज भी प्रासंगिक

हैं। ऐसा माना जाता है कि वे राजाश्रयी कवि होते हुए भी सामान्य जन के लिए भी साहित्य सृजन किया।

खुसरो एक देशभक्त कवि थे। उन्होंने अपनी देशभक्ति की अभिव्यक्ति भारतीय सौन्दर्य एवं जन संवेदना के परिप्रेक्ष्य में की है। खुसरो ने भारतीय पक्षियों का वर्णन करते हुए, भारतीय दर्शन, ज्ञान, अतिथि सत्कार, फूलों, वृक्षों, रीति-रिवाजों तथा सौन्दर्य आदि की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। एक स्थान पर वे अपने को हिंदुस्तान की तूती कहते हैं और हिंदवी में बातचीत करने को कहते हैं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि फारसी भाषा के मर्मज्ञ कवि होते हुए भी अपनी मातृ भाषा 'हिंदवी' का गर्व उनमें तनिक भी कम न था। वे एक कवि होने के साथ-साथ अच्छे संगीतकार भी थे। उन्होंने संगीत को आधुनिक रूप प्रदान किया।

खुसरो कई भाषाओं के जानकार होते हुए भी उन्होंने फारसी और हिंदवी में अधिक रचनाएँ की। उन्हें खड़ी बोली हिंदी का प्रथम कवि माना जाता है। यह बात अलग है कि उनकी अधिकांश रचनाएं नष्ट हो गयीं तथा जो उनके नाम से बतायी जाती हैं वह संदिग्ध है। लेकिन यह असंदिग्ध है कि भारत से इतना मोहब्बत करने वाला संवेदनशील कवि ने जनता की बोली को अवश्य अपनाया होगा। हिंदी साहित्य और समाज को इतना कुछ देने हेतु भारतीय पाठक और श्रोता सदा इनका ऋणी रहेगा।

प्रस्तुत अध्याय के परिवेश और परिदृश्य खंड को चार भागों में वर्गीकरण करके अध्ययन किया गया है। ये चार भाग हैं:

(क) भौगोलिक एवं राजनीतिक परिवेश

(ख) सामाजिक परिवेश

(ग) प्राकृतिक परिवेश

(घ) सांस्कृतिक परिवेश।

समाज में जो घटनाएं घटित होती हैं वही साहित्य में भी सर्जना, यथार्थ एवं कल्पना के मिश्रण से अभिव्यक्त होता है। साहित्य और समाज एक-दूसरे से अलग नहीं बल्कि एक-दूसरे के पूरक हैं। इस दृष्टि से अब्दुर्रहमान और अमीर खुसरो के साहित्य को देखा जाए तो इनके काव्यों में भी तत्कालीन समाज, उसका परिवेश एवं परिदृश्य, परिस्थितियाँ आदि लक्षित होती हैं। 'संदेश रासक'

मूलतः संदेश युक्त विरह काव्य है। इसमें तत्कालीन परिवेश आदि का वर्णन कम है किंतु फिर भी यत्र-तत्र सामाजिक स्थितियों का वर्णन उपलब्ध है। अमीर खुसरो का साहित्य-कर्म अब्दुर्रहमान की तुलना में अधिक है तथा वे राजनीतिक कवि भी थे इसलिए उनके काव्य में परिवेश एवं परिदृश्य के वर्णन का पर्याप्त अवकाश मिला तथा उनके काव्यों में परिलक्षित भी होता है।

(क) भौगोलिक एवं राजनीतिक परिवेश

संदेश रासक को देखने से यह पता चलता है कि उस समय मुल्तान पश्चिमोत्तर भारत (आधुनिक पाकिस्तान) में प्रमुख हिंदू तीर्थस्थल के रूप में प्रसिद्ध था। वह अपने सूर्य-कुंड के कारण पश्चिमोत्तर का प्रमुख धार्मिक स्थल समझा जाता था। इससे यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि संदेश रासक की रचना के समय मुहम्मद गोरी का आक्रमण भारत पर नहीं हुआ था। क्योंकि मुहम्मद गोरी द्वारा एक बार नष्ट कर दिये जाने के पश्चात् मुल्तान फिर से अपने पूर्व की प्रसिद्धि को प्राप्त न कर सका। इसके अतिरिक्त संदेश रासक में विजयनगर अथवा विक्रमपुर तथा स्तंभ तीर्थ (आधुनिक खंभात) उल्लेखित हुआ है :-

''फुसइ लोयण रूवइ दुक्खत,
घम्मिल्लपमुक्कमुह विज्जंभइ अणु अंगु मोइइ।''[1]

नायिका का पति धनोपार्जन के लिए खंभात गया था। पथिक भी मुल्तान से अपने स्वामी का पत्र या संदेश लेकर खंभात ही जा रहा था। इससे यह स्पष्ट होता है कि उस समय खंभात बहुत समृद्ध रहा होगा जहाँ देश के विभिन्न क्षेत्रों से लोग धनोपार्जन के उद्देश्य से आया करते थे।

"पुरउ सवित्थरू गमणु वन्नउ अद्धउ जइवि।
करि अज्जु गमणु महु भगा घू अत्थवइ रवि॥

*   *   *

तिहु हंतउ हउँ इक्कणि लेहउपेहयिऊ
खंमाइतिहि वच्चउँ पहु आएसियउ॥''[2]

भारतीय इतिहास के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि खम्भात चालुक्य वंश के शासक सिद्धराज और कुमारपाल के शासनकाल में अत्यंत समृद्ध था। कुमारपाल की मृत्यु के बाद ही खम्भात नगर का वैभव समाप्त होने लगा।

अमीर खुसरो के समय दिल्ली में मुसलमानों का शासन स्थापित हो चुका था। जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है कि खुसरो राजाश्रयी कवि थे इसलिए इन्होंने सुल्तानों की वीरता-वैभव का चित्रण भी अपनी रचनाओं में किया है। इन्होंने अपने पहले दीवान के कसीदों में ज्यादातर ग्यासुद्दीन बलबन एवं उसके बेटे सुल्तान नसीरूद्दीन मुहम्मद की प्रशंसा की है। 'हश्त-बहिश्त' के कसीदों में उन्होंने जलालुद्दीन और अलाउद्दीन खिलजी की प्रशंसा की है।

(ख) सामाजिक परिवेश

यह बात सत्य है कि साहित्य और समाज एक दूसरे से परस्पर संबंधित हैं। साहित्य में न केवल समाज प्रतिबिंबित होता है बल्कि साहित्य समाज को एक दिशा भी देता है कि समाज कैसा होना चाहिए। इस दृष्टि से अब्दुर्रहमान की रचना 'संदेश रासक' पर विचार किया जाए तो यह पता चलता है कि 'संदेश रासक' की नायिका के पति धनोपार्जन के लिए दूसरे देश गए हैं। वह नायिका विशिष्ट नहीं, अपितु एक सामान्य स्त्री है जो कि विरहाग्नि में तप रही है। इससे यह लक्षित होता है कि समाज में असमानता विद्यमान थी। यह असमानता आर्थिक स्तर पर विद्यमान थी। इसी के कारण नायिका का पति खंभात चला जाता है:

रूइवि खणद्ध वि फुसवि नयण पणु वज्जरिउ,
खंमाइत्रिहि णामि पहिय तणु णज्जरिउ।[3]

आधुनिक काल में भोजपुरी भाषा के लोकप्रिय नाटककार भिखारी ठाकुर की रचना 'बिदेसिया' देखने पर 'संदेशरासक' का स्मरण हो जाना लाजिमी है। दोनों में नायिका का पति धनोपार्जन के लिए परदेस गया है और दोनों ही अपने पति के वियोग में विह्वल है।

अब्दुर्रहमान के संदेश रासक में तत्कालीन जाति व्यवस्था का भी संकेत मिलता है, जहाँ 'म्लेच्छ' का चित्रण है-

'पच्चाएसि पहूओ पुत्वपहसिद्धो य मिच्छदेसो त्थि।
तह विसए संभूओ आरघो भीरसेणसेस[4]

अमीर खुसरो के साहित्य में सामाजिक व्यवस्था का व्यापक चित्रण दृष्टिगोचर होता है। अमीर खुसरो के काल में समाज में वर्णाश्रम व्यवस्था लागू थी। समाज में कर्म के आधार पर जातियों की कई श्रेणियां बन चुकी थीं। धोबी,

चमार, कुम्हार, बुनकर, काश्तकार, नाई आदि जातियाँ कर्म के आधार पर चिन्हित थीं। इन सभी श्रमजीवी जातियों के पास कर्म करने के लिए अपने-अपने ढंग के उपकरण थे। खुसरो को लोकजीवन का व्यापक अनुभव था। उनकी हिंदी रचनाओं में समाज में व्याप्त तमाम तीजों-त्योहारों का उल्लेख मिलता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि अमीर खुसरो ने केवल दरबार में रहकर शानो-शौकत की जिंदगी नहीं बिताई बल्कि लोक के विभिन्न रंगों में स्वयं को रंगा भी। ग्राम्य जीवन और संस्कृति से सुवासित खुसरो की हिंदी रचनाएँ प्रवाहमान परम्परा में आज भी सुरक्षित है। डॉ. कन्हैया सिंह लिखते हैं- "प्रतीत होता है कि खुसरो ने इन श्रमजीवियों के जीवन और उनके साधनों को निकटता से समरस होकर देखा था। उन ग्राम्य जातियों के जीवन की सूक्ष्म बातें खुसरो ने पकड़ी है जिसके कारण एक ओर तो उनकी पहेली को बूझने वालों के लिए भी आवश्यक हो जाता है कि ग्राम्य संस्कृति का जानकार हो और दूसरी ओर नारी की सोंधी महक से अमीर साहब का कलाम सुवासित हो उठा। देश की भाषा की उन पहेलियों में यही मुख्य विशेषता है कि उसकी जड़ें धरती में गहरी हैं। लोकानुभव ही उनके सृजन का आधार है और इसी कारण लोककण्ठ की सरणी को पकड़े हुए इतनी सुदीर्घ यात्रा के पश्चात् भी ये जीवित हैं। अमीर खुसरो की भाषा रचनाओं में कितना वजन है, दीर्घ जीवन की कितनी क्षमता है और भावना-संवेदनाओं को अपने सरल एवं अविकृत रूप में कितना उन्होंने सुरक्षित कर रखा है, इसका अनुमान तो केवल इसी से लगाया जा सकता है कि जहाँ अनेक लिपिबद्ध रचनाओं को लोक ने ऐसे भुला दिया कि पाण्डुलिपि संग्रहालयों की दौड़-धूप पर भी नहीं मिलती। अमीर खुसरो की ये रचनाएँ लोकाश्रम में सात सौ वर्षों के लगभग बीत जाने के बाद भी बिना मसि-कागज के जीवन जीती आ रही है।"[5]

हिंदी साहित्य के इतिहास में यह गौरव सिर्फ मैथिली कोकिल विद्यापति को प्राप्त है। उनकी रचनाएं जनसामान्य में इस कदर रसी-बसी है कि पहचानना मुश्किल हो जाता है कि वाकई ये रचनाएं विद्यापति की ही हैं या किसी अन्य की।

सती प्रथा भारतीय समाज में प्रचलित एक ऐतिहासिक परंपरा रही है। दुनिया के अन्य किसी भी देश में ऐसी प्रथा का इतिहास नहीं रहा है। पति के देहांत के उपरांत स्त्री उसकी चिता पर साथ ही जल जाया करती थी। इस प्रथा के पीछे अंधविश्वास का कठोर बंधन रहा है। अमीर खुसरो की एक पहेली में इस प्रथा के विषय में जिक्र मिलता है:

"जल बल गई पिया के पास,
तक को और जनम की आस।
जब सिन्दुर ने आन कहीं,
तब वे तिरिया जान गयी''[6]

'झिंझिया' औरतों के खेलने की एक प्रथा है। खेलने की यह प्रथा आज भी उत्तर बिहार के क्षेत्रों में जीवित है। यह दशहरा के समय खेले जाने वाला खेल है। इसमें मिट्टी का एक घड़ा होता है जिसमें जाली की तरह छोटे-छोटे छिद्र बने होते हैं। इसके अंदर एक छोटा-सा दीपक जलाकर रखा जाता है। स्त्रियाँ समूह में एकत्रित होकर उसे अपने सिर पर रखकर इस अवसर के गीत गाती हैं। इस प्रथा का उल्लेख निम्नलिखित पहेली से होता है:-

"देही में दीहैं घनै,
और तन में दिया बला।
घर-घर मांगत फिरत है।
पा लग सीस चढ़ा।''[7]

भारतीय समाज के छोटे वर्ग के लोगों में ताड़ी के सेवन का चलन आज भी है, वैसा ही चलन खुसरो के युग में भी था। उससे संबंधित खुसरो की एक पहेली दृष्टिगोचर होती है-

"काठ की गाड़ी मिट्टी बाछा।
दूध पिये वह अच्छा अच्छा।
बेड़ी पहन दोहापन जाये।
थन कारे तब दूध बहाये''[8]

मौसम की परिस्थितियों का भी उल्लेख अमीर ख़ुसरो करते हैं। जाड़ा और गर्मी से संबंधित उनकी मुकरियाँ प्रसिद्ध हैं। जाड़े के विषय में उनकी एक प्रसिद्ध मुकरी है-

"लपट लपट के वाके होई।
छाती पाँव लगा के सोई।।
दांत से दांते को ताड़ा।

सखी साजन ना सखी जाड़ा।''[9]

जब मौसम में परिवर्तन होता है तो परिस्थितियाँ अनुकूल हो जाती है। अमीर खुसरो गर्मी के विषय में मुकरी लिखते हैं-

"बैसाख में मेरे ढिग आवत।
मो को संगी सेज पर डारत॥
न सोवत न सोवन देत अधरमी।
ऐ सखी साजन ना सखी गरमी॥''[10]

अमीर खुसरो के युग में खाता-बही प्रचलित थी। इससे यह स्पष्ट होता है कि उस युग में भी ऋण की समस्या व शोषक-शोषितों की समस्या विद्यमान थी। लेनी-देनी के लिए खाता-बही का प्रयोग होता था। यह स्मरण करने हेतु बेहद उपयोगी माध्यम हुआ करता था। अमीर खुसरो लिखते हैं-

"काला मुँह करके जब दिखलावे,
भूला बिसरा याद दिलावे।
कीन दिना चासर गस्म खाता,
मूरख को लेखा नहीं आता''[11]

भारतीय समाज में वर्णाश्रम व्यवस्था के अंतर्गत विभक्त जातियों के पेशों एवं उनके द्वारा प्रयुक्त उपकरणों पर पहेलियाँ एवं मुकरियाँ लिखकर उस समाज का दस्तावेज खुसरो ने प्रस्तुत किया है। 'नाई' का भारतीय समाज में विशेष महत्व है। यह ग्रामीण क्षेत्रों में, अनुष्ठानों में संदेश-वाहक का कार्य भी करता है लेकिन इसका मूल कार्य 'बाल' बनाना ही है। यह प्रथा आज भी जीवित है। ये स्वभाव से मृदुल और मीठी बातें करने में माहिर होते हैं। यह इनका जातीय स्वभाव है। खुसरो लिखते हैं-

"मीठी-मीठी बात बनावे,
ऐसा पुरुष ओ किसको भावै।
बूढ़ा-बढ़ा जो कोई आवै।
उसके आगे सीस नवाये॥''[12]

समाज में कुम्हार जाति के लोगों का भी विशेष महत्व है। तत्कालीन समय में आज की तरह के धातुओं के बर्तन सामान्यतः उपलब्ध नहीं थे। बल्कि कुम्हारों द्वारा बनाए गए मिट्टी के बर्तनों का ही उपयोग विभिन्न कार्यों के लिए

लोग करते थे इसलिए ये जनसामान्य के लिए बहुत उपयोगी थे। खुसरो की दृष्टि में ये श्रेष्ठ थे। कुम्हार के औजारों पर अनेक पहेलियाँ खुसरो ने लिखी है–

"कीली पर खेती करै औ पेड़ में दे दे आग।

रास ढावै घर में रखै, वहाँ रह जाए राख॥''[13]

इसी प्रकार एक अन्य पहेली द्रष्टव्य है:

"चार अंगुल का पेड़ सवा मन का पत्ता।

फल लगे अलग-अलग पक जाये इकट्ठा॥''[14]

अमीर खुसरो समाज की गहराइयों से पूर्णतः भिज्ञ थे। यही कारण है कि उनकी देशभाषा काव्य में तत्कालीन जीवन और संस्कृति जीवित हो उठी है। डॉ. भगवती प्रसाद सिंह लिखते हैं– "यह निश्चित एक आश्चर्य की बात है कि सारी जिन्दगी बादशाहों और अमीरों के बीच बिताते हुए भी खुसरो ग्राम्य जीवन का कोना-कोना झांक आये थे। उनके संवेदनशील मानस में जाड़े से ठिठुरते हुए दीन-हीन लोग, घर की देहली पर लटकते हुए पिजड़े में राम-राम करने वाले तोते, ठठरियों के बल पर महाकाल से लोहा लेने वाले निरीह बुड्ढ़े तथा गर्मियों में शरीर का पसीना सुखाने वाले पंखे के लिए ही नहीं, निरन्तर तिरस्कार करने पर भी पैर चाटने वाले नौकर, रोटी के एक टुकड़े पर घर की चौकीदारी करने वाले कूत्ते एवं काँटे और कीचड़ से रक्षा करते हुए पैर चूमने वाले निष्काम कर्म योग के अप्रतीय जूतों के प्रति पर्याप्त सभादार था।''[15]

इस प्रकार से अब्दुर्रहमान और अमीर खुसरो के साहित्य में समाज अपने विविध रूपों में प्रकट हुआ है। अब्दुर्रहमान के काव्य में तो इसका जिक्र कम है परन्तु अमीर खुसरो के काव्य में यह पर्याप्त रूप में वर्णित है।

(ग) प्राकृतिक परिवेश

अब्दुर्रहमान की रचना संदेशरासक चूँकि एक विरह काव्य है इसलिए इसमें विरह की दशा को दीप्त करने हेतु कवि ने षड्ऋतु वर्णन की परिपाटी का अनुसरण किया है। हम यह जानते हैं कि वस्तु का प्रतिबिंबन ही साहित्य में होता है। इस दृष्टि से 'रासक' काव्य में षड्ऋतु वर्णन में अनेकानेक ऐसे प्राकृतिक दृश्यों का बिंब उत्पन्न हुआ है जो लौकिक हैं। साथ ही अब्दुर्रहमान ने सौन्दर्य वर्णन में प्रकृति को इस प्रकार से प्रस्तुत किया है कि मानो वह कल्पना न होकर यथार्थ हो।

काव्य में प्रकृति दो रूपों में वर्णित होती है। प्रथम, प्रकृति का स्वतंत्र आलंबन के रूप में तथा द्वितीय नायक के भावों के उत्तेजक-उद्दीपन के रूप में। संस्कृत साहित्य में प्रकृति का चित्रण या यूँ कहें तो प्राकृतिक परिदृश्य भरपूर परिणाम में दिखाई देता है। चूँकि साहित्यकार प्रकृति के बहुत निकट थे इसलिए उनकी रचनाओं में ऐसा प्रभाव लक्षित होता है। आदि कवि वाल्मीकि और कालिदास ने प्रकृति की अनुपम छटा को जो बिखेरा है वह अन्य साहित्य में दुर्लभ है। इन कवियों ने प्रकृति के मनमोहक रूपों को ही केवल ग्रहण नहीं किया है बल्कि साधारण-से-साधारण वस्तु के भी मनोहर पक्ष को इस प्रकार प्रस्तुत किया है कि वह सर्वग्राही हो गया है। वाल्मीकि ने बर्फ से आच्छादित पर्वत श्रेणियों, कल-कल करती निर्झरों, शीतल रात, कदम्ब के फूलों आदि का ही वर्णन नहीं किया है बल्कि पाला गिरने से गीली घासों पर पड़ती हुई धूप की शोभा, अतिशीतल हेमन्तकालीन जलस्पर्श से संकुचित वनों का चित्रण तथा जीर्ण होकर झड़े हुए पत्रों वाले, टूटी छतरी के सरकर्णिक वाले पाले से ध्वस्त कमलों का भी वर्णन प्रलक्षित होता है। इस प्रकार कालिदास ने जहाँ एक ओर हिमालय के सौन्दर्य का अद्वितीय वर्णन किया है तो वहाँ वर्षाकाल में मेघगर्जन तथा कुकुरमुत्तों की भी उपेक्षा नहीं की है।

परवर्ती कवियों में स्वतंत्र प्रकृति-वर्णन का क्रमशः लोप हो गया। आचार्य रामचंद्र शुक्ल लिखते हैं- "कालिदास के समय से, या उसके कुछ पहले से ही दृश्य वर्णन के संबंध में कवियों ने दो मार्ग निकाले। स्थल वर्णन में तो वस्तु वर्णन की सूक्ष्मता बहुत दिनों तक बनी रही, पर ऋतुवर्णन में चित्रण उतना आवश्यक नहीं समझा गया जितना कुछ इनी-गिनी वस्तुओं का कथनमात्र करके भावों के उद्दीपन का वर्णन।''[16]

परवर्ती काव्यों में प्रकृति का चित्रण मुख्यतः उद्दीपन के रूप में ही होने लगा। महाकाव्यों में अधिक अवकाश होने के कारण इनमें ऋतु वर्णन का थोड़ा-बहुत बहाना मिल जाता है परंतु लघुत्तर काव्यों में इसका अभाव हो गया। शृंगारी काव्यों में इस प्रकार की प्रवृति किंचित ही दिखाई देती है। संदेशरासक काव्य में प्राकृतिक परिवेश षड्ऋतु वर्णन के अंतर्गत ही आ जाता है। संदेशरासक में ग्रीष्म ऋतु का दृश्य इस प्रकार लक्षित होता है-

"जम जीहह जिम चंचलु णहयलु लहलहइ,
तडतडयडि घर तिडटू ण तेयह भरू सहइ॥''[17]

अर्थात सूर्य की प्रचंड किरणों के ताप से भूमि-तल वन-तृण जलने लगते हैं। इतना ही नहीं, यमराज की जिह्वा के समान आकाश-तल लहलहाने लगता है। घरित्री कठिन ताप को सहन न कर सकने के कारण तड़-तड़-तड़ शब्द करने लगती है। आकाश में अहि ऊष्म प्रभंजन चलता है।

इसी प्रकार वर्षा-ऋतु के परिदृश्य का एक अद्‌भुत चित्रण द्रव्टव्य है-

"गिंभत विण खर तापिय बहु फिरणक्करिहिं,
पउ पडंतु पुक्णरहु ण मावइ पुक्खरिहिँ।
पयहात्थिग किय पहिय पहिहि पवंहतियहि,
पइ पइ पेसइ करलउ गयणि खिवंतयहि।''[18]

अर्थात् वर्षा में चारों ओर अंधकार छा जाता है। जल से परिपूर्ण बादल मानों रोष के साथ वर्षण करते हों। भयभीत विद्युत के चमकने पर ही पगडण्डियाँ दिखाई पड़ती हैं। पपीहे संतुष्ट होकर मनोहर शब्द बोलने लगते हैं। ग्रीष्मकालीन प्रचण्ड सूर्य की किरणों के ताप से पुष्कर मेघ इतनी वर्षा कर रहे हैं कि जल पोखरों में नहीं समाता।

आगे वे कहते हैं, वर्षा ऋतु में बगुले तालाब को छोड़कर वृक्षों पर चले गये हैं। पर्वत शिखरों पर नृत्य करते हुए मयूर केकाध्वनि उत्पन्न कर रहे हैं। जल में मेंढ़क आवाज कर रहे हैं। आम के वृक्षों के शिखरों पर बैठकर कोयल मनोरम स्वर से दिशाओं को पूरित कर रही हैं। विषधर नागों की अधिकता से दसों दिशाएं अवरुद्ध हो गये हैं। जल की अधिकता से पाटल दल छिन्न-भिन्न हो गया है। हंस पर्वत शिखरों पर करुण स्वर से रो रहे हैं-

"बगु मिल्हवि सलिलछहु तरूसिहरिहि चाडिउ,
तंडवु करिपि सिंहिडिहि वर सिहरिहि रडिउ।
सलिल निवहि सालूरिहि फरसिउ रखिउ सरि,
कलयलु किउ कलयंटिहि चडि चूयह सिहरी॥''[19]

तथा

"णाय णितड परूध्द फणिदिहि दह दिसिहिँ,
हुवूय असंचर मग्ग महंत महाविरिहि॥''[20]

अमीर खुसरो को भारतीय सुषमा, पेड़-पौधे, पशु-पक्षी, फल आदि प्रिय थे जिसकी प्रशंसा मुक्तकंठ से उन्होंने की है। हिंदी काव्य में यत्र-तत्र प्रकृति वर्णन

पाया जाता है तो भला खुसरो इसमें पीछे कैसे रह सकते थे। फलों का राजा कहे जाने वाला फल 'आम' खुसरो को सर्वाधिक प्रिय था। मौलवी सहाबुद्दीन अब्दुर्रहमान ने उल्लेख किया है कि "आम का जिक्र आता है तो (अमीर खुसरो) कहते हैं कि कुछ लोग आम को अंजीर पर तरजीह देते हैं लेकिन अंधी औरत तो बसरा को शाम से बेहतर बतायेंगी। फिर इसी सिलसिले में हिंदुस्तान को बहिश्त समझना चाहिए। वरना यहाँ आदम और ताऊम (मोर) क्यों उतारे जाते।"[21] अमीर खुसरो को मोर पक्षी बहुत प्रिय है। इसके रंग-बिरंगे पंख एवं उसका नर्त्तन चित्ताकर्षक होता है। उसे स्वर्ग का पक्षी भी कहा जाता है। अमीर खुसरो कहते हैं-

"एक जानवर रंग-रंगीला,
बिन मारे वह रोए।''[22]

इसी प्रकार,

"नीला कंठ और पहिरे हरा।
सीस मुकुर नाचे वह खड़ा।।
देखत घटा अलायत चोर।
ऐ सखी साजन न सखी मोर।''[23]

बगुला पक्षी अपनी एकाग्रता को लेकर विशेष है। इसका अधिकांश रंग सफेद होता है। देखने में तो यह साधु प्रवृत्ति का होता है परंतु उसकी प्रकृति विपरीत होती है। खुसरो को पक्षियों का भी बड़ा गहरा अनुभव था। वे लिखते हैं-

"उज्ज्वल बरन आधी तन, एक चित्र दो ध्यान।
देखत में साधु है, पर निपुट पाप की खान।।''[24]

इसके अतिरिक्त खुसरो ने भौंरा, कोयल, तोता, हाथी, कुत्ता आदि पशु-पक्षियों पर भी खूब लिखा है। इससे यह स्पष्ट होता है कि खुसरो प्रकृति के काफी निकट थे। उन्हें प्रकृति से अनन्य प्रेम था और यही प्राकृतिक परिवेश उनके आस-पास रहा होगा।

अमीर खुसरो की फारसी रचनाओं में प्राकृतिक परिदृश्य समृद्धि के साथ प्रकट हुआ है। यह प्रकटीकरण हिंदी रचनाओं में भी यदा-कदा दृष्टिगोचर हो जाते हैं। बरसात में आकाश में काले-उजले जल भरे बादल सबको मोहने वाले होते हैं। खुसरो इस रूप को निम्नलिखित माध्यम से अभिव्यक्त करते हैं-

"भाँति-भाँति की देखी नारी
नीर भरी गोरो काली
ऊपर से ओ जग को धौपे
रक्षा करे जब नीर बहावै।''[25]

बरसात के दिनों में बादलों के मध्य जब बिजलियाँ चमकती हैं तो बड़ा चित्राकर्षक दृश्य उत्पन्न होता है। इसका जिक्र इस प्रकार लक्षित होता है-

"हे वो नारी सुन्दर नार
नार नहीं पर वो है प्यार
दूर से सबको छति दिखलावै
साथ किसी के कबहूँ न आवै।''[26]

बादल का इकट्ठा होना, उमड़-घुमड़ कर चलना, बिजली का चमकना, वर्षा का होना तथा ओले पड़ना ये सभी आसमान से ही होते हैं। सितारे आसमान में जगमग करते हैं, उसकी छवि निराली होती है। खुसरो का कवि हृदय आसमान के विषय में इस प्रकार से अभिव्यक्त होता है-

"एक थाल मोती से भरा।
सब के सिर पर औंधा घरा
चारों ओर वह थाली फिरे।
मोती उसके एक न गिरे।।''[27]

इस प्रकार अब्दुर्रहमान और अमीर खुसरो के साहित्य में प्रकटित प्राकृतिक परिवेश एवं परिदृश्य विविधता के आयामों को स्पर्श करती है।

(घ) सांस्कृतिक परिवेश

मनुष्य के स्थायी होने के साथ ही संस्कृति का विकास होने लगा। इतिहास के पृष्ठों को पलटा जाए तो हमें यह ज्ञात होता है कि हड़प्पा सभ्यता के साथ ही हड़प्पा संस्कृति का विकास हुआ। और आगे चलकर वैदिक तथा उत्तर-वैदिक संस्कृतियाँ उत्पन्न हुईं। कालांतर में बौद्ध-जैन धर्म एवं संस्कृतियां भी विकसित हुईं। ईसा की सातवीं शताब्दी के आस-पास भारत में इस्लाम धर्म एवं संस्कृतियाँ भी दिखाई देने लगती हैं। इस प्रकार से देखा जाए तो संस्कृति का एक क्रमिक

विकास हुआ और आगे चलकर कई सारी संस्कृतियाँ एक-दूसरे के समानांतर चलने लगीं। ये संस्कृतियाँ एक-दूसरे को प्रभावित करने लगी तथा एक-दूसरे से प्रभावित होने लगीं।

अब्दुर्रहमान एवं अमीर खुसरो के समय एवं उनके साहित्य में व्यक्त राजनीतिक, भौगोलिक, सामाजिक, प्राकृतिक, सांस्कृतिक आदि परिवेश एवं परिदृश्य का ज्ञान हमें हो जाता है। चूँकि अब्दुर्रहमान के संबंध में विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं है इसलिए उनके समय के समाज का अवलोकन कर पाना थोड़ा मुश्किल कार्य है परन्तु संदेशरासक में जो वर्णित कथानक है उसके आधार पर कुछ ज्ञान अवश्य ही अर्जित किया जा सकता है। साथ ही, अमीर खुसरो चूँकि राज्याश्रित कवि, इतिहासकार, संगीतज्ञ आदि रहे हैं तथा उनकी कई पहेलियाँ एवं मुकरियाँ लोक प्रचलित रही हैं। इस आधार पर उनके समय की संस्कृतियों का बोध होता है।

सामासिक संस्कृति

सामासिक संस्कृति से आशय है कई संस्कृतियों का मिलकर एक हो जाना। अर्थात् एक साथ कई संस्कृतियों का प्रचलन ही सामासिक संस्कृति है। संस्कृति व्यक्ति चेतना की क्रियाशीलता का सामाजिक रूप है। ऐसा भी हो सकता है, जब व्यक्ति चेतना अपने उत्कर्ष तथा ऊर्जा के फलस्वरूप सामाजिक चेतना पर आधिपत्य स्थापित कर ले। ऐसा तब होता है जब कोई बड़ा दार्शनिक, विचारक, महर्षि अथवा युग-पुरुष नेता समाज को किसी विशेष दिशा में गतिशील करने में समर्थ होता है। बुद्ध, शंकर, तुलसीदास, भारतेंदु, गाँधी ऐसे ही युग-पुरुष थे। व्यक्ति में जो सर्वश्रेष्ठ है, जब वह समाजीकृत होता है तो संस्कृति के तत्व रूपायित होते हैं। विचार व्यक्तिगत प्रक्रिया है। व्यक्ति विशेष के चेतन मन में विचार उत्पन्न होते हैं। ये विचार भाषा तथा अन्य साधनों द्वारा समाजीकृत होते हैं। चिंतन धाराओं को प्रवर्तित करने वाले मनीषियों की वैयक्तिक चेतना समाज द्वारा स्वीकृत होकर सामाजिक चेतना बन जाती है तथा सामाजिक संस्कृति का आकार लेती है। अनेक सामाजिक संस्कृतियों का जब योग होता है, उनका ऐसा मिलन होता है जिसमें कई संस्कृतियाँ मिलकर एक हो जाए तो सामासिक संस्कृति का स्वरूप सामने आता है। साहित्य के ऊपर संस्कृतियों की सामासिकता का प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता, इसलिए साहित्य वह सहज साधन है

जिसके द्वारा सामाजिक संस्कृति के प्रमुख तत्वों को एक सीमा तक जानने-समझने का प्रयत्न कर सकते हैं।

हमारा देश भारत अनेक संस्कृतियों की मिलन भूमि का देश रहा है। आर्य-अनार्य, हिंदू-मुस्लिम, प्राच्य-पाश्चात्य आदि अनेक संस्कृतियाँ यहाँ उत्पन्न हुईं और एक-दूसरे को प्रभावित-अनुप्राणित करती रही। इनमें परस्पर किस प्रकार का मेल-जोल, सामंजस्य-समन्वय धरित हुआ है तथा किन विशेष तत्वों को लेकर समाहार की स्थिति बनी, इसका सम्यक् दर्शन हिंदी-साहित्य के इतिहास के पृष्ठों में अपेक्षित है। परन्तु दुःख इस बात का है कि अब तक जितने साहित्येतिहास ग्रन्थ लिखे गये हैं उनमें से किसी में भी इस दृष्टिकोण का सम्यक् अनुसरण नहीं हुआ है। परिणामस्वरूप साहित्य एकाकी-सा लगने लगता है।

हिंदी साहित्य के इतिहास के आदिकाल पर विचार किया जाए तो हमें एक-साथ अनेक साहित्यिक प्रवृत्तियों के दर्शन होते हैं- बौद्ध-ब्रजयानी साहित्य परंपरा में लिखित अपभ्रंश सिद्ध साहित्य (सरहपा आदि), अपभ्रंश जैन प्रबंध काव्य (स्वयंभू, पुष्पदंत आदि), अपभ्रंश विशुद्ध शृंगार काव्य (अब्दुर्रहमान), मैथिली कृष्ण काव्य (विद्यापति), राजस्थानी चारण काव्य (चंदवरदाई, जगनिक), खड़ीबोली मनोरंजन काव्य (अमीर खुसरो) आदि। इनकी प्रवृत्तियों में अनेक धार्मिक-सांस्कृतिक धाराएं हमें परिलक्षित होती हैं।

आदिकाल में सिद्ध और जैन साहित्य समांतर रूप से स्पष्टतः दो सांस्कृतिक चेतनाओं का प्रतिनिधित्व कर रहे थे, जिनका समासीकरण नहीं हुआ था, परन्तु इनका समाहार भारतीय जीवनधारा में दिखाई देता है। यदि हम इस काल के लोकभाषा साहित्य का अवलोकन करें तो हमें सांस्कृतिक चेतना के विविध रूपों के दर्शन होते हैं। एक ओर राजस्थानी चारण काव्य में वीर रस के साथ लौकिक शृंगार रस की अभिव्यक्ति दिखाई पड़ती है वहीं दूसरी ओर विद्यापति के राधाकृष्ण प्रेम के वर्णन में आमृस्मिक की अगरूगंध की अनुभूति होती है। इसी काल में अमीर खुसरो लोकजीवन के अत्यंत निकट आकर मनोरंजन साहित्य (पहेलियाँ, मुकरियाँ) की सृष्टि करते हैं। इस काल में जहाँ साहित्य राजाओं और दरबारों की मान्यता में फला-फूला है, वहीं खुसरो में लोकोन्मुखी प्रवृत्ति के दर्शन विशेष रूप से अर्थपूर्ण है। दरबारी संस्कृति तथा लोक संस्कृति के मध्य भक्तिकाल में जो समन्वय हुआ उसकी पीठिका हम आदिकाल की इस स्थिति को मान सकते हैं। आदिकाल में ही 'इस्लाम' धर्म भारत में आ चुका था लेकिन इस्लामी

संस्कृति की देश में ऐसी प्रतिष्ठा नहीं हो पायी थी कि साहित्य में उसका स्पष्ट बिंब दिखाई पड़ता। फिर भी अब्दुर्रहमान तथा अमीर खुसरो इस सांस्कृतिक समन्वय को पूर्वाभासित कराते हैं जो भक्तिकाल में प्रभावी रूप से भासित हुआ।

इस प्रकार से दीर्घकालीन साहचर्य के फलस्वरूप विभिन्न संस्कृतियों के तत्वों का समासीकरण हों जाता है तथा एक सामासिक संस्कृति का उदय होता है। इसका जीवित उदाहरण मध्यकालीन भक्ति और सूफी साहित्य है। हालांकि इसके बीज आदिकाल में ही पड़ चुके थे जिसके बोने में अब्दुर्रहमान और अमीर खुसरो की भूमिका रही।

यह पहले ही कहा जा चुका है कि अब्दुर्रहमान की रचना 'संदेशरासक' एक विशुद्ध संदेश काव्य है जिसमें विरहिनी नायिका अपने कंत को संदेश भेजती है। इस विरह काव्य में विरह की तीव्रता को दिखाने के लिए षडऋतु वर्णन का सहारा लिया गया है। चूँकि मूलतः यह विरह काव्य है इसलिए इसमें सामासिक संस्कृति का दृश्य अपेक्षाकृत कम दिखाई देता है। लेकिन अब्दुर्रहमान जैसे मुसलमान कवि द्वारा हिंदू संस्कृति का बखान करना ही अपने-आप में सामासिक संस्कृति का लक्षण है। कवि ने गंगा नदी का उल्लेख अपने काव्य में श्रेष्ठ रूप में किया है। वास्तव में गंगा जीवनदायिनी है। प्राचीनकाल से ही हिंदू सभ्यताओं का विकास इसी नदी के तटों पर हुआ, शहर-नगरों का विकास हुआ और मनुष्य के जीवन का आधार यही नदी बनी। इसीलिए यह नदी हिंदू धर्म में पवित्र है एवं आस्था का प्रतीक है। साथ ही इस्लाम धर्म में भी यह उतने ही महत्व की है। तभी तो एक मुसलमान कवि अब्दुर्रहमान गंगा को तीनों लोकों में श्रेष्ठ बताता है। यह श्रेष्ठ बताना ही सामासिक संस्कृति है-

"जइ अत्थि णई गंगा तियलोर णिच्चपयडियपहावा।

वच्चइ सामरसमुहा ता सेससरी म वच्चंतु।''[28]

अर्थात् तीनों लोकों में जिसका प्रभाव नित्य प्रकटित है, ऐसी गंगा यदि सागर की ओर बहती है तो क्या दूसरी नदियां न बहें?

इन पदों में गंगा की श्रेष्ठता का वर्णन तो है ही, साथ में अन्य नदियों को भी श्रेष्ठ बताया गया है। ऐसा हो भी क्यों न! आखिरकार नदियों का मनुष्य के जीवन पर बहुत गहरा प्रभाव रहा है।

रामायण और महभारत हिंदुओं का पवित्र ग्रन्थ है। हिंदू धर्मावलंबी इस ग्रन्थ

की पूजा करते हैं तथा कथानक का मंचन भी किया करते हैं। अब्दुर्रहमान इन सभी लोकसंस्कृति से परिचित हैं और संदेशरासक में इसका यथास्थान उल्लेख करते हैं–

"कह व ठाइँ सुदवच्छ कत्थ वर नलचरिउ,

कत्थव विविहणिणांइहि भारहु उच्चरिऊ

कहव ठाइ आसीसिय चाइहिँ दयवरिहँ,

रामायणु अहिणणियइ कत्थवि कथवरिहि।।"[29]

अर्थात् कहीं सुन्दर सुदवच्छ, कहीं नलचरित तथा कहीं विनोदपूर्वक महाभारत की विविध कथाएँ पढ़ी जाती हैं। तो कहीं त्यागी ब्राह्मण आशीर्वाद देते हैं और मायावी नर रामायण का अभिनय करते हैं। आशय यह है कि तत्कालीन समय में लोक संस्कृति इतनी समृद्ध थी कि इसका सप्रमाण वर्णन अब्दुर्रहमान 'संदेशरासक' में प्रस्तुत करते हैं। यह लोक की संस्कृति सभी धर्म एवं सम्प्रदाय के लोगों में समान रूप से उपस्थित थी। इंडोनेशिया वर्तमान में एक इस्लामिक देश है मगर आज भी यहां सामासिक संस्कृति मौजूद है।

दिवाली हिंदू धर्म में प्रमुख पर्वों में एक है जो कि बुराई पर अच्छाई की जीत का प्रतीक है। दीप ज्ञान की ज्योति का प्रतीक है। अब्दुर्रहमान 'दिवाली' जैसे त्योहारों को अपने 'रासक' में स्थान देकर सामासिक संस्कृति का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं–

"दिंतीय णिसी दीवालिय दीवय

णवससिरेह सरिस करि लीअय।

मिंडहि भुवण तरूण जोइक्खहिँ,

महिलिय दिंती सलाइय अक्किहिँ।।"[30]

अर्थात् स्त्रियाँ दिवाली के अवसर पर रात्रि में दीपदान करती हैं। वो हाथों में नव राशि रेखा के समान दीप लेती हैं। तरुण दीपकों से गृह मण्डित हैं। महिलाएँ आँखों में सलाई देती है। इस प्रकार हमें संदेश रासक में ज्यादा तो नहीं परन्तु संस्कृति के कुछेक तत्वों के दर्शन अवश्य हो जाते हैं, जिससे हमें सामासिक संस्कृति का ज्ञान होता है।

वर्तमान समय में दिलों में दूरी, नफरत, शक, भय और अनेक कलयुगी गुण

मनुष्य जाति में अवतरित हो गया है। वर्तमान समय साझी संस्कृति और विरासत की समाप्ति के द्वार पर खड़ा है। आज की भारतीय राजनीति अपने स्वार्थ के लिए हिंदू-मुस्लिम सामासिक संस्कृति को छिन्न-भिन्न करना चाहती है। जब धर्मों में विभेद उत्पन्न होने लगे तो इसकी समाप्ति का दायित्व एक सजग रचनाकार पर होता है इसलिए हिंदू-मुस्लिम रचनाकारों को दोनों संप्रदायों के लोगों के दिलों को जोड़कर समन्वय स्थापित करने वाली रचना रचने का प्रयास करना चाहिए। हिंदी साहित्य के इतिहास में समन्वय को बड़े ही शिद्दत से प्रस्तुत करने वाले रचनाकारों में अमीर खुसरो का नाम प्रमुखता से लिया जाता है।

अमीर खुसरो इस देश के उन चेतनावादी, समन्वयवादी, मानवतावादी महापुरुषों में से एक हैं जिन्होंने इस देश की सेवा में अपना जीवन अर्पित कर दिया था। खुसरो खड़ी बोली के प्रथम कवि, उदार साधना के प्रवर्त्तक, हिंदू-मुस्लिम एकता के अग्रदूत, सांस्कृतिक समन्वय के सेतुबंध, भारतीय संगीत के उन्नायक तथा जन्मभूमि के प्रति अगाध प्रेम रखने वाले पक्के राष्ट्रप्रेमी थे। मध्ययुग में सांस्कृतिक समन्वय की चेतना से प्रेरित होकर सुफियों ने हिंदू-मुस्लिमों के मध्य की खाई को पाटने में महत्वपूर्ण योगदान दिया और भावनात्मक एकता का मार्ग प्रशस्त किया, उनमें अमीर खुसरो प्रथम पायदान पर खड़े हैं। भारतीय संस्कृति के प्रति खुसरो के मन में अटूट आस्था थी। हिंदू-मुसलमान, संस्कृत-फारसी, धर्म-अध्यात्म सबके मध्य एक समन्वित प्रवृत्ति का ही परिणाम हुआ कि खुसरो अपने समय में भारतीय संस्कृति के उदात्त आदर्शों के सशक्त व्याख्याता बनें।

अमीर खुसरो सांस्कृतिक समन्वय के उन्नायक कहे जाते हैं। जिस समय मुसलमान भारत में आये, उस समय उनकी भाषा एवं संस्कृति भारतीयों से अलग थीं। इस कारण हिंदू और मुसलमान दोनों भिन्न दिखाई पड़ने लगे। खुसरो ने इस विभिन्नता को दूर करने के लिए 'खालिक बारी' नामक पुस्तक की रचना की, जिसमें उन्होंने अरबी, फारसी और हिंदी शब्दों का पर्याप्त उपयोग किया। साथ ही उन्होंने हिंदवी में कविता लिखा। उनका विश्वास था कि आत्मीयता और एकता को स्थापित करने का सबसे महत्वपूर्ण साधन भाषा है। भारत में आने से पूर्व ही अरबी एवं फारसी रागों का मिश्रण हो चुका था। परन्तु जब मुसलमानों का संबंध भारत से हुआ तो संगीत के क्षेत्र में भी मिश्रण होना आरंभ हो गया। दो संस्कृतियों के मिलन से विद्या, भाषा एवं कला को एक नवीन दिशा देना तथा उसे जनसाधारण के लिए उपयोगी बनाना अमीर खुसरो जैसे व्यक्तित्व के लिए

आवश्यक था। इस कारण उन्होंने हिंदू-मुस्लिम हृदय को एकाकार करने का कार्य किया जो कि सूफी साधना का मुख्य उद्देश्य रहा है।

खुसरो के काव्य एवं व्यक्तित्व में जो सहिष्णुता लक्षित होती है वह उस युग में दुर्लभ थी। धार्मिक, सामाजिक, जातीय, किसी प्रकार का भी बंधन खुसरो में नहीं था। वे स्वयं को भारतीय तुर्क कहते हैं। खुसरो की समन्वयवादी दर्शन की पराकाष्ठा प्रेम संबंधी विषयों पर विशेष रूप से दिखाई देती है। वे कहते हैं-

"काफीरे इश्कम् मुसलमानी मरा दरकार मीस्त।

हर रगे मन गश्ता हाजते जुन्नार वीरता॥"[31]

प्रिय के प्रेम में कवि इतना तल्लीन है कि उसे काफिर या मुसलमान ये सब बाहरी नामकरण या आडंबर नहीं चाहिए। वह तो केवल प्रेम का उपासक है।

''नाखुदा दर किश्तिये या गर न बाशद गो मबाश।

मा खुदा दारेम मा रा नाखुदा दरकरि नीरत।''[32]

आशय यह है कि जो प्रेम करते हैं उन्हें वेदना की ज्वाला से भयभीत नहीं होना चाहिए। प्रेम में दृढ़ता अनिवार्य है।

अमीर खुसरो ने यह अच्छी तरह अनुभव किया था कि आपसी फूट के कारण ही मानव की एकता नष्ट हो जाती है। आपसी एकता न रहने के कारण ही सामाजिक संगठन टूटता है। मतभेद के कारण जाति-धर्म आदि के बीच संघर्ष उत्पन्न होने लगता है। हिंदू और मुसलमान धर्म के नाम पर अलग-अलग गुटों में बँट जाते हैं तथा परस्पर संघर्ष शुरू हो जाता है। जब तक मनुष्य के जीवन में यह धार्मिक संघर्ष समाप्त नहीं होगा तब तक सामाजिक एकीकरण संभव नहीं है। खुसरो इस सत्य से भली-भाँति परिचित थे तथा साम्प्रदायिक संकीर्णता की जड़ों को उखाड़ फेंकना चाहते थे। किसी भी रूढ़ि या अंधविश्वासी परंपरा में उनका विश्वास नहीं था बल्कि उनकी दृष्टि में मनुष्यता ही सबसे बड़ा धर्म था।

खुसरो का सबसे बड़ा प्रयत्न हिंदुओं को मुसलमानों की भाषा से तथा मुसलमानों को हिंदुओं की भाषा से परिचय कराना रहा है। इसलिए उन्होंने हिंदी के छंदों को बोलचाल की भाषा में अभिव्यक्त किया। हिंदू और मुस्लिम संस्कृति को सुन्दर समन्वय करना खुसरो की बहुमुखी प्रतिभा का द्योतक है जिसे मूर्त रूप देने में उनके गुरु निजामुद्दीन औलिया ने विशेष भूमिका अदा की। खुसरो ने दो

संस्कृतियों के मध्य सेतु का काम किया जिसके फलस्वरूप एक मिश्रित भाषा 'फारसी-हिंदवी' का जन्म हुआ।

खुसरो की समस्त कविता सांस्कृतिक समन्वय की दृष्टि से प्रेरित है। इनमें साम्प्रदायिक कट्टरता का लेश मात्र भी अंश नहीं है। बल्कि मनुष्यता की भावना स्थापित करना इनके लिए सबसे बड़ी उपलब्धि थी। हिंदू-मुस्लिम एकता, पूर्व मध्ययुग की एक महत्वपूर्ण राष्ट्रीय समस्या रही है। इसी कौमी एकता को मजबूत बनाने में खुसरो की महत्वपूर्ण भूमिका मानी जा सकती है। इन्होंने हिंदू-मुस्लिम दोनों धर्मों के प्रमुख त्योहारों को सांस्कृतिक समन्वय का एक माध्यम बनाया तथा अपनी काव्य-प्रतिभा से लोक में संदेश देते रहे।

मुस्लिम जीवन और संस्कृति में तस्बीह का बहुत बड़ा स्थान आरंभ से ही रहा है जो आज तक अपनी स्थिति बनाये हुए है। यह जाप के लिए प्रयोग में लाया जाता है तथा स्त्री एवं पुरुष दोनों इसका प्रयोग करते हैं। खुसरो लिखते हैं-

"दाना-दाना नाते हैं

सबका लिखा खाते हैं।

कर यारी वा नारी से

हर कोई भजे बिचारी से।।''[33]

मुसलमानों के अनिवार्य धार्मिक कृत्यों में रोजा का महत्वपूर्ण स्थान है। प्रत्येक मुसलमान पर 'रोजा' रमजान फर्ज माना गया है। यह रमजान अपने खुदा के लिए एक पवित्र इबादत है। इस सन्दर्भ में खुसरो लिखते हैं-

"भूखे प्यासे आते हैं

वह बुजुर्ग क्यों कहलाते हैं।

फिकर से उनको मुंह में रखे।

बैकुण्ठों में भोजन चखे।।"[34]

यही उपवास की परंपरा हिंदू धर्म में भी दिखाई देती है जहाँ प्रत्येक सप्ताह धार्मिक परम्परा के अनुसार कोई-न-कोई उपवास का प्रचलन है। इस प्रकार से दोनों धर्मों की सामासिकता हमें अमीर खुसरो की रचनाओं में परिलक्षित होती है।

खुसरो की दृष्टि में ईश्वर एक है। वह निराकार है। उसके यहाँ कोई भेद-भाव नहीं है बल्कि वह सबका प्रिय है तथा सबमें मौजूद है-

"सब सखियन का पिया प्यारा
सब में है और सब सो न्यारा
वाकी आन मुझे यह या,
जारी है बिन देखे चा॥"[35]

आगे कबीर के दर्शन में भी हमें ईश्वर के संबंध में यह तत्व दृष्टिगोचर होता है। खुसरो आध्यात्मिक व्यक्ति थे। इस्लाम में रूह और नफ्स का उल्लेख मिलता है। खुदा की इबादत में नफ्स पर नियंत्रण अनिवार्य है। इस पर नियंत्रण के बिना साधक साधना की परम ऊँचाई को स्पर्श भी नहीं कर सकता। अमीर खुसरो रूह और नफ्स पर पहेली बुझाते हैं-

"नर नारी में कुश्ती है।
कश्ती है वे पुश्ती है।
बूझ पहेली जो कोई जावे।
बैकुण्ठों में बासा पाये॥"[36]

अर्थात् नफ्स को पूर्णत: नियंत्रित कर साधना करने वाला ही जन्नत में जा सकता है। यह जन्नत की अवधारणा हिंदू धर्म में भी दिखाई देती है। खुसरो ने हिंदू धर्म का बड़ी बारीकी से अध्ययन किया था। उन्होंने अपनी रचना 'नूर सिपेहर' में इन दोनों धर्मों की समानताओं और विषमताओं पर प्रकाश डाला है। साथ ही, हिंदू धर्म की अन्य धर्मों से तुलना की है एवं उसे इस्लाम से अलग तथा अपेक्षाकृत श्रेष्ठ बताया है। खुसरो का यह विचार उनके ज्ञान की पराकाष्ठा है। ऐसे सभी धर्मों के प्रति उसकी दृष्टि उदार थी।

"खल्क मी गोयद कि खुसरो बूत परस्ती मीकुनद।
आरे मी कुनम बा खलक ओ-आलम कार नेस्त।"[37]

अर्थात् दुनिया कहती है कि खुसरो मूर्तिपूजक है। लेकिन भाव यह व्यंजित होता है कि यदि कोई मूर्तिपूजा भी करता है तो वह एक प्रकार से इबादत ही है। दुनिया को इसमें दखल देने की आवश्यकता नहीं है। इन दो पंक्तियों में उदारता और सहिष्णुता से भरी हुई बातें सीधे हृदय से निकली हुई प्रतीत होती

हैं। खुसरो तुर्क वंशज थे लेकिन स्वयं को विशुद्ध भारतीय कहने में ही उन्हें आत्मसंतुष्टि की अनुभूति होती थी। उन्हें अपनी जन्मभूमि हिंदुस्तान पर गर्व था तथा हिंदी से बेहद लगाव था। जन्म से तुर्क होते हुए भी उन्होंने 'हिंदवी-हिंदी' को समुचित स्थान दिया जिसका समस्त हिंदी जाति कृतज्ञ है।

इस प्रकार से हमें अब्दुर्रहमान तथा अमीर खुसरो के साहित्य तथा व्यक्तित्व में सामासिक संस्कृति के दर्शन होते हैं जो कि आदिकालीन मुसलमान रचनाकारों की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं।

हिंदी आलोचकों की दृष्टि

साहित्य का भंडार अनंत एवं विशाल है। साहित्य के लिए पाठक में जहाँ अपरिमित जिज्ञासा और उसकी प्राप्ति की ललक होती है, वहीं वे इस बात से भिज्ञ होते हैं कि उसे सही ढंग से प्राप्त करना सहज नहीं है। ऐसे में अच्छे एवं उत्कृष्ट साहित्य को चुनने में आलोचना मदद कर सकती है। आलोचना रचना का स्वयं आस्वादन कर पाठक को उसी प्रकार के आस्वादन में सहायता करती है। इतना ही नहीं, आलोचना पाठक की अभिरुचि को भी परिमार्जित करती है। यह कृति विशेष के गुण-दोषों का उद्घाटन कर रचनाकारों के प्रति पाठकों का मत स्थिर करने में भी सहायक है।

आलोचना का कार्य उत्कृष्टतम का प्रकाशन है। इसके इतर काव्य-प्रतिभा का पूर्व-उद्घाटन भी आलोचना करती है। यदि आलोचक कवि की कृति के माध्यम से कवि के मन पर प्रकाश डालने के उत्तदायित्व के प्रति सजग है तो वह आलोचना के मूल्य को स्थापित करने में तथा कृति की व्याख्या करने में सफल हो पाता है। इसी दृष्टि के अन्तर्गत हम अब्दुर्रहमान तथा अमीर खुसरो के साहित्य पर विभिन्न आलोचकों के विचारों पर दृष्टिपात करेंगे।

यह स्पष्ट है कि अब्दुर्रहमान ही हिंदी के प्रथम मुसलमान कवि हैं। इस सन्दर्भ में प्रो. हरिवंश कोछड़ लिखते हैं- "अब्दुर्रहमान ही सर्वप्रथम मुसलमान कवि हैं जिन्होंने कि भारत की संस्कृति को अभिव्यक्त करने वाली साहित्यक भाषा में रचना की; हिंदू सभ्यता या भारतीय सभ्यता को अपना कर प्रचलित भारतीय साहित्यिक शैली पर पूर्ण रूप से अधिकार प्राप्त किया।"[38]

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी अब्दुर्रहमान की रचना संदेशरासक को बहुत महत्वपूर्ण मानते हैं। वे लिखते हैं- "संदेशरासक बहुत महत्वपूर्ण विरह काव्य है,

जो एक तरफ ढोला मारू रा की मारवाणी की याद दिलाता है, और दूसरी तरफ पद्मावत की नागमति की।"[39] द्विवेदी जी इस बात की ओर संकेत कर रहे हैं कि संदेश रासक पद्मावत तथा ढोला मारू रा की श्रेणी की रचना है तथा वर्णित विषय भी लगभग समानता लिए हुए हैं।

प्रो. कोछड़ इस काव्य में लौकिक तत्व तथा ग्राम्य जीवन की छटा की विवेचना करते हुए कहते हैं– "काव्य के इस छोटे से कथानक में अलौकिक घटनाओं का अभाव है। ग्राम्य जीवन का चित्रण काव्य में दिखाई देता है। काव्यगत वर्णन से प्रतीत होता है कि कवि का हृदय लौकिक भावनाओं से प्रभावित था।"[40]

विश्वनाथ त्रिपाठी संदेश रासक की तुलना संस्कृत के अन्य संदेश काव्यों से करते हैं। वे लिखते हैं कि "भारतीय साहित्य में इस प्रकार के संदेश-काव्यों की कमी नहीं है। 'मेघदूत' से 'उद्धवशतक' तक न जाने कितने ऐसे काव्य गिनाए जा सकते हैं जिनकी रचना का मुख्य आधार संप्रेषण है।... किंतु संदेशरासक की भाँति 'मेघदूत' में केवल संदेश और विरह वर्णन की ही प्रधानता नही है।"[41]

संदेश रासक में विरहिणी के विरह वर्णन को लेकर प्रो. हरिवंश कोछड़ लिखते हैं – "स्थूल प्रकृति वर्णनों की अपेक्षा कवि मानव हृदय का वर्णन अधिक सुन्दरता से कर सका। सारा काव्य विरहिणी के वियोगपूर्ण हृदय के भावमय चित्रों से परिपूर्ण है।"[42] तो वहीं विश्वनाथ त्रिपाठी संदेशरासक को कालिदास की रचना मेघदूत की छायामात्र मानते हैं और लिखते हैं– "विरही यक्ष के चित्र की अवस्था को अभिव्यक्त करने हेतु जो अपूर्व चित्रावली कालिदास द्वारा प्रस्तुत की गई है वह संदेशरासक में कहाँ मिलेगी? मेघदूत के पाठक का हृदय समस्त उत्तर भारत के परिदृश्य में निरन्तर नवीन कृति के पुण्य अवलोकन से रस-विभोर हो उठता है। उसमें हृदय का चित्र, स्वच्छन्द प्रकृति का साक्षात्कार, काव्यानुभूति के माध्यम से करता है। संदेशरासक का प्राकृतिक कैनवास इतना भव्य नहीं है, उसका प्रधान आकर्षण संदेश-प्रेषण और विरह-वर्णन ही है। हाँ, प्रसंगानुसार लोकजीवन के विविध पक्षों का स्वाभाविक चित्रण उसमें अवश्य हुआ है।"[43]

बारहमासा एवं षड्ऋतु वर्णन का उपयोग सामान्यतः विरह की गंभीरता के लिए किया जाता है तथा इसे प्रबंध काव्यों में पर्याप्त अवकाश होने के कारण उपयुक्त माना गया है। इस दृष्टि से संदेशरासक अनुपम काव्य है। इस विषय पर

प्रो.हरिवंश कोछड़ तथा विश्वनाथ त्रिपाठी के मत लगभग समान हैं। प्रो. कोछड़ लिखते हैं "ऋतु-वर्णन स्वाभाविक है और कवि की निरीक्षण शक्ति का परिचायक है। प्रत्येक ऋतु में प्राप्य और दृश्यमान वस्तुओं का वर्णन मिलता है। इस प्रसंग में ग्राम्य जीवन का चित्र भी स्थान-स्थान पर कवि ने अंकित किया है।.... जायसी की भाँति अद्दहमान के सादृश्यमूलक अलंकार और बाह्यवस्तु निरूपक वर्णन बाह्यवस्तु की ओर पाठक का ध्यान न ले जाकर विरह-कातर व्यक्ति के मर्मस्थल की पीड़ा को अधिक व्यक्त करते हैं। कवि प्राकृतिक दृश्यों का चित्रण इस कुशलता से अंकित करता है कि इससे विरहिणी के विरहाकुल हृदय की मर्मवेदना ही मुखरित होती है। वर्णन चाहे जिस हृदय का हो, व्यंजना हृदय की कोमलता और मर्मवेदना की ही होती है।"[44]

विश्वनाथ त्रिपाठी लिखते हैं, "महाकाव्यों में तो अधिक अवकाश होने और लक्षण-पालन प्रकृति व स्वतंत्र वर्णन के लिए थोड़ा-बहुत बहाना मिल जाता था, किंतु लघुत्तर काव्यों में इसका अभाव हो गया। शृंगारी काव्यों में षड्ऋतु वर्णन जैसी परम्परा के कारण कवियों की प्रकृत्ति की ओर झाँकने का यत्किंचित अवसर मिल जाता था। षड्ऋतु का वर्णन काव्य में संयोग सुख या विरह दुःख को तीव्रतर दिखाने के लिए किया जाता था। संदेशरासक में प्रकृति वर्णन इसी रूप में अर्थात् षड्ऋतु वर्णन के अंतर्गत ही आया है। इतने छोटे काव्य में हमें विस्तृत प्रकृति-वर्णन की आशा भी नहीं करनी चाहिए। संदेश रासक के कवि को षड्ऋतु वर्णन करना था इसलिए उसे बाह्य प्रकृति की सहायता लेनी पड़ी।"[45]

अब्दुर्रहमान की संदेशरासक की भाषा पर दृष्टिपात करते हुए प्रो. हरिवंश कोछड़ लिखते हैं, "इस काव्य में प्रयुक्त भाषा का रूप अधिकतर बोलचाल में प्रयुक्त होने वाली अपभ्रंश का रूप है। इस भाषा का रूप साहित्यिक अपभ्रंश से भिन्न है। अपभ्रंश भाषा का उत्तरकालीन रूप, जिस पर प्रांतीय भाषाओं का प्रभाव भी पड़ने लग गया था, इस काव्य में देखा जा सकता है।... भाषा में भावानुकूल शब्द योजना हुई है। ग्रीष्म और पावस की प्रचण्डता एवं कठोरता भी विरहिणी मुख से निकले शब्दों से दूर हो जाती है। शब्दों में विरहिणी के कोमल और सुकुमार हृदय की झाँकी मिलती है।"[46] तो वहीं संदेशरासक की भाषा पर विचार करते हुए नामवर सिंह लिखते हैं, "भाषा इतनी सरल, प्रांजल तथा टकसाली अपभ्रंश है कि पूरे अपभ्रंश काव्य में कम कवियों की भाषा इसके सामने ठहरेंगी।"[47]

विश्वनाथ त्रिपाठी का मंतव्य भी संदेशरासक की भाषा पर महत्वपूर्ण है। वे लिखते हैं - "संदेशरासक के कवि ने भी अपनी रचना को बोलचाल के निकट रखने की ओर यथेष्ट ध्यान दिया है। वे जब कहते हैं कि मेरी कविता सदा उन्हीं के सामने पढ़ी जानी चाहिए जो न पंडित हैं न मूर्ख; बल्कि मध्यम हैं तो इसका अर्थ यही है कि उन्होंने अपने काव्य की रचना जन-साधारण के लिए की है।"[48]

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का विचार संदेशरासक की भाषा पर इस प्रकार है- "संदेशरासक इसी प्रकार की अपभ्रंश में बारहवीं-तेरहवीं शताब्दी में - अर्थात् लगभग उसी समय जब पृथ्वीराज रासो लिखा जा रहा था - रचित हुआ था। इसकी भाषा बोलचाल के अधिक नजदीक थी। यद्यपि इसके कवि अद्दहमान या 'अब्दुर्रहमान' प्राकृत अपभ्रंश की परंपरा के अच्छे जानकार थे और बीच-बीच में उन्होंने जो प्राकृत-गाथाएँ लिखी हैं, ये उनकी प्राकृत-पटुता की सूचना देती है। फिर भी, उन्होंने अपनी रचना बोलचाल के अधिक नजदीक रखने की ओर अधिक ध्यान दिया है।"[49]

अब्दुर्रहमान द्वारा प्रयुक्त उपमानों के सन्दर्भ में विश्वनाथ त्रिपाठी का मत विशेष महत्व का है, "संदेशरासक ने यद्यपि अधिकांश परम्परागृहित उपमानों का ही प्रयोग किया है फिर भी अपनी काव्योचित सहृदयता से उन्हें प्राणवन्त बना दिया है। कहीं-कहीं अब्दुर्रहमान ने स्वच्छंद विरल प्रयुक्त या नए उपमानों का प्रयोग करके अपनी मौलिकता का भी परिचय दिया है। संदेशरासक में केवल बाह्य रूप वर्णन ही नहीं है अपितु गहरे जाकर हृदय पर पड़ने वाले रूप-प्रभाव को भी उपमानों के माध्यम से व्यक्त किया गया है।"[50]

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी उपमानों के सन्दर्भ में लिखते हैं, "उपमाएँ अधिकांश में यद्यपि परंपरागत और रूढ़ ही हैं, तथापि बाह्य वृत्त की वैसी अभिव्यंजना उसमें नहीं है जैसी आंतरिक अनुभूति की।"[51] संदेशरासक में 22 प्रकार के छंदों का प्रयोग दिखाई देता है जिस पर संस्कृत, प्राकृत आदि का प्रभाव भी लक्षित होता है। विश्वनाथ त्रिपाठी अब्दुर्रहमान द्वारा प्रयुक्त छंदों के विषय में लिखते हैं - "ज्ञात होता है कि संदेशरासक का रचयिता समाप्त मधुर प्राकृत शब्दों और प्राचीन शैली का मोह नहीं छोड़ पाया था। संदेशरासक के दोहों की भाषा, गाहा, रड्डा तथा अन्य छंदों की भाषा से अधिक विकसित जान पड़ती है। दोहे को अपभ्रंश का अपना छंद कहा गया है। संदेशरासक का कवि गाहा तथा

अन्य छंदों को लिखते समय अपने आप को संस्कृत, प्राकृत आदि के ज्ञानभार से सर्वथा मुक्त नहीं कर पाता था।"[52]

इस प्रकार हमने अब्दुर्रहमान की रचना संदेशरासक के आलोक में विभिन्न विद्वानों के विचारों का विविध आयामों के परिदृश्य में विवेचन-विश्लेषण किया।

खुसरो के बारे में कहा जा चुका है कि खुसरो दरबारी कवि थे और गयासुद्दीन बलबन से लेकर कुतुबुद्दीन मुबारकशाह तक कई पठान बादशाहों के दरबार में अपनी सेवाएँ दी। ये फारसी के बड़े विद्वान थे लेकिन इनके व्यक्तित्व को लेकर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है – "ये बड़े ही विनोदी, मिलनसार और सहृदय थे, इसी से जनता की सब बातों में पूरा योग देना चाहते थे। जिस ढंग के दोहे, तुकबंदियाँ और पहेलियाँ आदि साधारण जनता की बोलचाल में इन्हें प्रचलित मिले उसी ढंग के पद, पहेलियाँ आदि कहने की उत्कंठा इन्हें भी हुई।"[53]

अमीर खुसरो की रचना की प्रामाणिकता पर समय-समय पर प्रश्न उभरते रहे हैं। कुछ विद्वान इनकी रचनाओं को प्रामाणिक तो कुछ अप्रामाणिक मानते हैं। रामस्वरूप चतुर्वेदी लिखते हैं – "पर यह सामग्री भाषा और संवेदना की दृष्टि से जितनी महत्वपूर्ण है पाठ की प्रामाणिकता की दृष्टि से उतनी ही संदिग्ध।"[54]

रामस्वरूप चतुर्वेदी खुसरो की फारसी रचना को प्रामाणिक तथा हिंदी रचना को संदिग्ध मानते हुए कहते हैं– ''अमीर खुसरो ने शिष्ट काव्य-रचना फारसी में की जो अपने प्रामाणिक रूप में सुलभ है। तब नवोदित हिंदवी में लोक शैली की रचना है, इसलिए उसका कोई व्यवस्थित और स्थिर रूप प्राप्त नहीं होता''[55] इससे यह बात तो स्पष्ट है कि हिंदवी की रचना संदिग्ध है क्योंकि इसमें लोक शैली ज्यादातर लक्षित होती है तथा यह भी संभव है कि लंबे समय तक लोक-परंपरा में रहने पर इसकी शैली में भिन्नता आ गयी हो।

खुसरो की पहेलियों की संदिग्घता पर भोलानाथ तिवारी का विचार इस प्रकार है – "पहेलियाँ मूलतः जनता की चीज है। साहित्यिक पहेलियाँ उन लौकिक पहेलियों का ही अनुकरण हैं। खुसरो ने भी कदाचित लोक के प्रभाव में ही पहेलियों की रचना की। इतना ही नहीं लोक प्रचलित और खुसरो की, दोनों ही प्रकार की पहेलियों में कुछ तो बिलकुल एक ही रूप में मिलती है। नहीं कहा जा सकता कि इस प्रकार की पहेलियाँ मूलतः लोक-साहित्य की हैं या अमीर खुसरो की।"[56] बच्चन सिंह ने खुसरो को खड़ी बोली हिंदी का प्रथम कवि

स्वीकारते हुए उनकी रचनाओं की संदिग्घता पर भी विचार किया है। वे अपने इतिहास ग्रन्थ में लिखते हैं – "खुसरो खड़ी बोली हिंदी के प्रथम कवि माने जाते हैं, यद्यपि खड़ी बोली का प्रभाव अपभ्रंश की कविताओं पर भी है। पर, जैसा कि प्रचलित विश्वास है कि खुसरो ने खड़ी बोली में प्रभूत रचनाएँ कीं किंतु उनमें से अधिकांश नष्ट हो गयीं। जो रचनाएँ उनके नाम पर उद्धृत की जाती हैं वे सर्वथा संदिग्ध हैं। लेकिन भारत की जमीन को इतना प्यार करने वाले संवेदनशील कवि ने जनता की बोली को अवश्य अपनाया होगा।"[57] भोलानाथ तिवारी खुसरो की रचनाओं को मूलत: जनता से अभिप्रेत मानते हैं तथा भाषा के आधार पर कहते हैं, "ये रचनाएँ मौखिक परंपरा से आई हैं, अत: भाषा में परिवर्तन के साथ-साथ उनमें परिवर्तन होता रहा है, और जो रूप आज उपलब्ध है, वह प्राय: बहुत बाद का है। ऐसी स्थिति में इन रचनाओं की भाषा के आधार पर खुसरो की भाषा के बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता।''[58] खुसरो फारसी के विद्वान थे परन्तु उन्होंने लोक की बोली को अधिक महत्व दिया। उनमें फारसी और हिंदवी का अंतर्विरोध दिखाई देता है। इस ओर बच्चन सिंह ध्यानाकृष्ट करते हुए लिखते हैं- ''पर खुसरो में अनेक अंतर्विरोध थे। एक ओर वे मलिक धज्जू जलालुद्दीन, अलाउद्दीन खिलजी, तुगलक आदि के राजकवि थे तो दूसरी ओर सूफी फकीर निजामुद्दीन औलिया के पक्के शिष्य। एक ओर दरबार था तो दूसरी ओर मठ। एक ओर वे कट्टर बादशाहों और मुल्लाओं से घिरे थे तो दूसरी ओर सूफी फकीरों से। एक ओर वे फारसी में लिखते थे तो दूसरी ओर खड़ी बोली में। एक ओर अलाउद्दीन खिलजी की कट्टरता की अतिश्योक्तिपूर्ण प्रशंसा करते थे तो दूसरी ओर सूफी फलसफे के प्रकाश में वीरानगी के सुलतान पर मरासिया पढ़ते थे।.... दरबार और मठ में तालमेल बैठाने के सिवा खुसरो के सामने अन्य विकल्प न था। ऐतिहासिक साक्ष्य से उनकी धार्मिक कट्टरता सिद्ध है। पर देश और देश के प्रति उनका प्रेम अविस्मरणीय रहेगा।''[59]

भाषा को लेकर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का उद्घाटन भी विशेष महत्व का है। वे लिखते हैं ''खुसरो की हिंदी रचनाओं में दो प्रकार की भाषा पाई जाती हैं। ठेठ खड़ी बोली पहेलियों, मुकरियों और दो सखुनों में ही मिलती है- यद्यपि उनमें भी कहीं-कहीं ब्रजभाषा की झलक है। पर गीतों और दोहों की भाषा ब्रज या मुखप्रचलित काव्यभाषा ही है।''[60]

हिंदी साहित्य के इतिहासकार रामस्वरूप चतुर्वेदी उनकी भाषा के संदर्भ में उनके परिवेश को महत्वपूर्ण मानते हैं तथा वे लिखते हैं "खुसरो के समय उत्तर भारत में संगीत की भाषा ब्रज थी, सो उन्होंने ब्रजभाषा में गीतों और कव्वालियों की रचना की, जो संगीत परम्परा में पीढ़ी-दर-पीढ़ी प्रचलित और सुरक्षित है। दिल्ली-मेरठ की चलती खड़ी बोली में उन्होंने लोक-रंजन के लिए कुछ दोहे, मुकरियाँ और पहेलियाँ कहीं जो मौखिक रूप से लोक-रुचि के अनुसार बदलती, घटती-बढ़ती चली आई हैं। पर शिष्ट काव्य की रचना उन्होंने दरबार की भाषा फारसी में ही की, जिससे कई राज्य-कालों में वे बराबर जुड़े रहे और यह साहित्य पूरे व्यवस्थित रूप में सुरक्षित और संरक्षित हैं। यों, खड़ी बोली क्षेत्र में उस समय क्या घटित हो रहा था, इस जिज्ञासा का एक संक्षिप्त उत्तर खुसरो के इस बहुरूपी कृतित्व से मिल जाता है।"[61]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल खुसरो की बोलचाल की भाषा की तुलना कबीर से करते हुए कहते हैं - "कबीर की अपेक्षा खुसरो का ध्यान बोलचाल की भाषा की ओर अधिक रहता है। खुसरो का लक्ष्म जनता का मनोरंजन था। पर कबीर धर्मोपदेशक थे, अतः उनकी बानी पोथियों की भाषा का सहारा कुछ-न-कुछ खुसरो की अपेक्षा अधिक लिए हुए है।"[62] अमीर खुसरो शुरुआत से ही असांप्रदायिक रहे हैं। इस ओर रामस्वरूप चतुर्वेदी कहते हैं "खुसरो के कृतित्व से एक और महत्वपूर्ण तथ्य उजागर होता है कि हिंदी का चरित्र एकदम आरंभ से ही असांप्रदायिक रहा है, वह सामासिक संस्कृति की सच्ची रचना है। हिंदू-मुसलमानों का जहाँ सीधा द्वन्द्व हिंदी कवि ने चित्रित किया है वहां भी वह वीरों का युद्ध है किसी एक पक्ष के प्रति घृणा या दोष उत्पन्न करने का प्रसंग नहीं, चाहे वह चंदवरदाई कृत 'पृथ्वीराज रासउ' हो या कि मलिक मुहम्मद जायसी द्वारा रचित 'पद्मावत'।"[63]

उपरोक्त वर्णित विद्वानों-आलोचकों ने अपने-अपने विचार अब्दुर्रहमान तथा अमीर खुसरो के संदर्भ में रखे हैं। इससे एक बात तो स्पष्ट है कि ये दोनों हिंदी साहित्य के प्रारंभिक मुसलमानों रचनाकारों में से एक हैं। साथ ही इनकी रचनाएँ विशेष महत्व की है। अब्दुर्रहमान का संदेशरासक साहित्य की दृष्टि से श्रेष्ठ है तो वहीं खुसरो की रचनाएँ साहित्य एवं भाषा-दोनों दृष्टि से। यहां तक कि खुसरो को खड़ी बोली हिंदी के प्रथम कवि के रूप में घोषित किया जाए तो भी इसमें कोई विशेष आपत्ति नहीं होगी।

साहित्यिक योगदान

अब्दुर्रहमान और अमीर खुसरो आरंभिक हिंदी के ऐसे स्तभ पुंज हैं जिन्होंने परवर्ती हिंदी साहित्य और भाषा के पथ को आलोकित किया। अब्दुर्रहमान की रचना 'संदेशरासक' संस्कृत के विभिन्न साहित्यों से छाया ग्रहण कर हिंदी में नवीन विषयों एवं दृश्यों का सूत्रपात करती हुई प्रतीत होती है, तो वहीं अमीर खुसरो की विभिन्न रचनाएँ साहित्य के साथ-साथ भाषा के स्वरूप को भी परिमार्जित करती हुई दिखाई देती है। इन दोनों साहित्यकारों का प्रभाव परवर्ती रचनाकारों यथा-जायसी, कबीर, तुलसी, सूर आदि के यहाँ दृष्टिगोचर होता है।

यह स्पष्ट है कि अब्दुर्रहमान उस संधिकाल पर खड़े हैं जहाँ संस्कृत भाषा अपनी अंतिम अवस्था की ओर अग्रसर हो रही थी और हिंदी भाषा का पदार्पण हो रहा था। यह बात अलग है कि वह आज की हिंदी न होकर आंरभिक हिंदी थी। लेकिन इनमें जो लिखे साहित्य हैं वे आगामी साहित्य पर एक बड़ा प्रभाव छोड़ते हैं। अब्दुर्रहमान की सुप्रसिद्ध रचना 'संदेश रासक' इसी प्रकार का एक काव्य है जिसकी रचना 1207 ई. के आस-पास हुई। सामान्यतः इसे दूतकाव्य के रूप में जाना जाता है। जैसा कि संस्कृत के कालिदास की रचना 'मेघदूतम्' है। परन्तु हिंदी भाषा में लिखा गया यह ग्रन्थ अनुपम है। कालिदास की रचना 'ऋतुसंहार' में जो प्रकृति का अप्रतीम चित्रण दिखाई देता है उसका स्पष्ट प्रभाव हमें संदेशरासक के षड्ऋतु वर्णन में लक्षित होता है। कहने का आशय यह है कि अब्दुर्रहमान उन प्रारंभिक हिंदी कवियों में से एक हैं जिन्होंने अपने पूर्व के कवियों से प्रेरित होकर एक ऐसी परंपरा का सूत्रपात किया जिसमें आगे चलकर प्रेमाश्रयी शाखा के कवियों के साथ-साथ भक्तकवियों की भी एक श्रृंखला दिखाई देती है। संदेश रासक के आरंभ में मंगलाचरण, सज्जन प्रशंसा, दुर्जन-निंदा, समकालीन एवं पूर्वकालीन कवियों का स्मरण, आत्मनिवेदन आदि मिलता है। यही परिपाटी हिंदी के महाकवियों ने भी अपने प्रबंधकाव्यों में अपनायी है। इसके बाद ही कथा प्रारंभ होती है तथा आगे विस्तार ग्रहण करती है। अब्दुर्रहमान 'संदेशरासक' में काव्यारंभ करते हुए कहते हैं - हे बहुजनो! जिसने आरंभ में समुद्र, पृथ्वी, पर्वत, वृक्ष तथा आकाशरूपी आँगन में तारों (इत्यादि) सबको सिरजा वह तुम्हें कल्याण दें। हे नागराजो! उस करता को नमस्कार करो जो मनुष्यों, देवताओं, विद्याधरों और आकाश मार्ग पर चलनेवाले सूर्य, चन्द्र, बिंबों तथा अन्य द्वारा नमस्कृत होता है।

पश्चिम में प्राचीनकाल से अत्यंत प्रसिद्ध जो म्लेच्छ देश है उसी प्रदेश में 'मीरसेण' नामक तन्तुवाय उत्पन्न हुआ। उसके पुत्र अद्दहमान ने, जो अपने कुल का कमल था और प्राकृत काव्य तथा गीत–विषय में सुप्रसिद्ध था, संदेश रासक की रचना की।

शब्दशास्त्र में कुशल प्राचीन विद्वानों और कवियों को मैं नमस्कार करता हूँ, जिनके द्वारा त्रिलोक में सुन्दर छंद बनाए गए तथा निदिष्ट किए गए।

"रयणायर त्रिरितरूवराइँ गयणंगणंमि रिक्खाईं।

* * *

आएहिँ जो णमिज्जइ तं णयरे णमह कतारं॥''[64]

इसी प्रकार से मंगलाचरण करते हुए जायसी कहते हैं –

"सुमिरौ आदि एक कर तारू। जेहिं जिउ दीन्ह कीन्ह संसारू॥

कीन्हेसि अगिनि जोति परकासू। कीन्हेसि तेहि पिरीत कैलासू॥"[65]

तुलसीदास जी 'रामचरितमानस' का आरंभ मंगलाचरण से करते हैं –

"जो सुमिरत सिधि होइ गन नायक करिबर बदन।

करहु अनुग्रह सोइ बुद्धि रासि सुभ गुन सदन॥

मूक होइ बाचाल पंगु चढ़इ गिरिबर गहन।

जासु कृपा सो दयाल द्रवउ सकल कलिमल दहन॥"[66]

इस प्रकार से संदेशरासक में सज्जन प्रशंसा, दुर्जन निंदा, आत्म विनय का जो वर्णन हमें दिखाई देता है वह पद्मावत, रामचरिमानस आदि परवर्ती महाकाव्यों के वर्णन में भी लक्षित होता है। किंतु यह पद्धति अब्दुर्रहमान की मौलिक नहीं है अपितु यह संस्कृत काव्यों और फिर हिंदी काव्यों में अवतरित हुई है। अर्थात अब्दुर्रहमान भारतीय शास्त्रीय परंपरा का अनुशरण करते हैं।

संदेशरासक मसृणोद्धत गेय रूपक है। जिस प्रकार का आरंभ हमें संदेश रासक में दिखाई देता है, उसी प्रकार का आरंभ हमें पृथ्वीराज रासो में भी लक्षित होता है। प्रारंभ की आर्याएं तो बहुत अधिक मिलती हैं।

"जइ बदुलदुध्द संमीलिया य उल्ललइ तंदुला खीरी।

ता कणकुक्कस सहिआ रब्बडिया मा दडब्बडउ॥"[67]

अर्थात् पर्याप्त दूध मिलाकर चावल की खीर पकायी जाती है तो गरीब लोग कण-भूसी मिलाकर मट्ठे की रबड़ी न ढभकाएँ।

"पय सवकरी सुभ तौ एकत्रौ कनय राय योयंसी।

कर कंसी गुज्जरीय, रब्बरियां नैव जीवंति।।"[68]

अर्थात् दूध, शक्कर और भात मिलाकर बड़े घरों में लड़कियाँ राजयोग (तरह-तरह के व्यंजन) बनाती हैं तो गरीबी में गुजारा करने वाली कन्या कण-भूसी वाली रबड़ी से जीवन निर्वाह न करें।

इस प्रकार अब्दुर्रहमान के हृदय में साधारण जन के लिए किसी भी प्रकार का अह्म दिखाई नहीं पड़ता है। बेशक अब्दुर्रहमान की चिंता जन सामान्य के लिए थी।

हिंदी साहित्य आदिकाल से आधुनिक काल तक किसी न किसी रूप में संस्कृत और अपभ्रंश साहित्य से प्रभवित रहा है। बीसलदेव रासो, ढोला मारू रा दूहा, मैनासत, पद्मावत, उद्धवशतक आदि काव्यों पर संदेशरासक का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। जायसी के 'पद्मावत' और अन्य काव्यों की रचना शैली, वर्णन शैली और संदेशरासक की शैली में बहुत समानता है। वस्तुवर्णन शैली में भी जायसी और अब्दुर्रहमान एक-दूसरे के बहुत निकट हैं। जिस प्रकार अब्दुर्रहमान ने उद्यान वर्णन में अनेक प्रकार के पेड़-पौधों का वर्णन किया है, उसी प्रकार जायसी ने भी भोजन के विविध पकवानों, मिठाइयों आदि का वर्णन प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार की पुष्पगणना की प्रवृत्ति पुष्पदंत के 'जसहर चरिऊ' में भी पायी जाती है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी केवल भाषा के आधार पर ही अपभ्रंश साहित्य को हिंदी साहित्य का अंग नहीं मानते बल्कि उसके भीतर साहित्यिक परंपरा और आंतरिक भावधारा के निरंतर प्रवाह को अभिन्न मानते हैं। वे कहते हैं - "हिंदी साहित्य में प्रायः (अपभ्रंश की) पूरी परंपराएँ ज्यों सुरक्षित हैं। शायद ही किसी भारतीय साहित्य में ये सारी विशेषताएँ इतनी मात्रा में और इस रूप में सुरक्षित हो। यह सब देखकर यदि हिंदी को अपभ्रंश साहित्य से अभिन्न समझा जाता है तो इसे अनुचित नहीं कहा जा सकता। इन ऊपरी साहित्य रूपों को छोड़ भी दिया जाए तो इस साहित्य की प्राणधारा निरविच्छिन्नरूप से परवर्ती साहित्य में प्रवाहित होती रही है।"[69] कहने का आशय यह है कि आचार्य द्विवेदी परवर्ती हिंदी साहित्य के विकास में आदिकालीन रचनाओं के महत्वपूर्ण योगदान को स्वीकार करते हैं।

अब्दुर्रहमान के परवर्ती साहित्य में कलागत योगदान की बात की जाए तो छंद, अलंकार, व्याकरण, शब्द-रचना आदि का विशेष योगदान हमें लक्षित होता है। संदेशरासक की भाषा परिनिष्ठित अपभ्रंश और प्राकृत की भाषा की कड़ी है। किंतु इस कड़ी का संबंध परवर्ती हिंदी साहित्य से जुड़ा हुआ है। अपभ्रंश साहित्य का हिंदी साहित्य पर जो प्रभाव पड़ा है, उसमें छंदों का प्रधान महत्व है। संस्कृत काव्यों में वर्णवृत्तों का अधिकतर प्रयोग दृष्टिगोचर होता है। प्राकृत में वर्णवृत्तों के बंधन से मुक्त होकर मात्रिक छंदों का प्रयोग दिखाई देता है। प्राकृत का 'गाथा' छंद मात्रिक छंद ही है। अपभ्रंश के कवियों ने भी इस प्रवृत्ति को बनाए रखा। संदेशरासक में भी यही प्रवृत्ति दिखाई देती है तथा परवर्ती हिंदी साहित्य में भी यही प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। संदेशरासक एक विरह प्रधान संदेश काव्य है। इस छोटे से काव्य में कवि ने 22 प्रकार के छंदों का प्रयोग किया है। ये छंद आदिकाल, भक्तिकाल और रीतिकाल के कवियों द्वारा अपनाये गये हैं। दूहा और चउपइ अपभ्रंश के प्रिय छंद हैं और इनकी लोकप्रियता भक्तिकाल और रीतिकाल के कवियों द्वारा अपनाये जाने के कारण स्वः सिद्ध हो जाती है।

अपभ्रंश के छंदों की एक विशेषता यह भी है कि इनमें अन्त्यानुप्रास का प्रयोग दिखाई देता है। इस प्रवृत्ति का संस्कृत में प्रायः अभाव था और यह अभाव प्राकृत तक बना रहा। इस दिशा में अपभ्रंश के कवियों की यह मौलिक दृष्टि है जिसका प्रभाव हिंदी के कवियों में स्पष्ट दिखाई देता है। अब्दुर्रहमान के संदेशरासक से एक उदाहरण प्रस्तुत है-

"अणुराइय रइहरू कामियमणहरू,
मयण महप्पह दीवयरो।
विरहिणिमइरध्दउ सुहणु विषुध्दउ,
रसियह रससंजीवयरो।"[70]

इस प्रकार के अन्त्यानुप्रास के अनेक उदाहरण आदि, भक्ति और रीतिकालीन हिंदी साहित्य में देखे जा सकते हैं। अपभ्रंश के कवियों ने अनेक नवीन छंदों की सृष्टि की है। कहने का आशय यह है कि अपभ्रंश के कवियों द्वारा प्रयुक्त छंदों से हिंदी साहित्य बहुत अधिक प्रभावित रहा है जिसमें मुसलमान कवि अब्दुर्रहमान और अमीर खुसरो की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

अब्दुर्रहमान का भारतीय साहित्य में सबसे बड़ा योगदान रूप-वर्णन में नवीनता है। भारतीय साहित्य के आचार्यों ने अन्य क्षेत्रों की भांति रूप-वर्णन को

भी नियम-बद्ध कर दिया था। विशिष्ट अंगों की उपमा विशिष्ट वस्तुओं से देने की मर्यादा स्थापित कर दी गयी थी। मध्ययुगीन छोटे-बड़े प्राय: सभी कवियों ने इस परिपाटी का अनुसरण किया है। अब्दुर्रहमान ने भी यद्यपि रूप वर्णन के लिए अधिकांशत: परंपरागत उपमानों का ही आश्रय लिया है फिर भी उन्होंने अपने हृदय-रस से स्निग्ध करके उसे वास्तविक और हृदयस्पर्शी बना दिया है। कहीं-कहीं अब्दुर्रहमान ने स्वच्छंद कल्पनाशक्ति का भी परिचय दिया है जो उनके संवेदनशील कवित्व का परिचायक है।

"कुसुमसराउ रूवणिहि विहि णिम्मविय गरिट्ठ।

तं पिक्खेविणु पहिय णिहि गाहा भणिया अट्ठ॥"[71]

इस प्रकार से देखा जाय तो अब्दुर्रहमान को हिंदी साहित्य में महत्वपूर्ण योगदान के लिए अभिहित किया जा सकता है। उनकी रचना 'संदेशरासक' को देखकर विश्वनाथ त्रिपाठी आश्चर्यचकित हो उठते हैं और कहते हैं - "इस ग्रन्थ के प्रकाशन से यह उद्घाटित हुआ कि भारतीय साहित्य को मुसलमानों का सक्रिय सहयोग और पहले से प्राप्त है। भारतीय साहित्य परंपरा से अद्दहमाण का इतना प्रगाढ़ परिचय है कि आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है।"[72]

हिंदी साहित्येतिहास के अंतर्गत आदिकाल एक तरीके से कभी-कभी हाशिये का काल दिखाई देता है और उससे भी अधिक कहें तो अमीर खुसरो जैसे हिंदी के मुसलमान कवि की ओर बहुत कम ही विद्वानों ने अपनी दृष्टि दौड़ायी है और जिन कुछ विद्वानों ने अपनी दृष्टि दौड़ायी भी है, उन्होंने उनके साहित्यिक अवदानों के विस्तृत अध्ययन को कहीं नहीं उकेरा है। अपने साहित्यिक योगदान के कारण खुसरो एक अनोखे और श्रेष्ठ कवि के रूप में कभी भी अध्यायित नहीं हुए हैं बल्कि केवल पहेलियों और मुकरियों के बुझक्कड़ के रूप में भी पाठकों के बीच प्रस्तुत किये जाते रहे हैं। एक कवि और रचनाकार के रूप में लगभग सत्तर से भी अधिक कृत्तियों की रचना करने वाला व्यक्ति साहित्यिक पाठकों के बीच एक बुझक्कड़ बनकर रह गया है, साहित्य जगत् के लिए यह विडंबना नहीं तो और क्या है? अमीर खुसरो द्वारा रचित साहित्य के संक्षिप्त अध्ययन द्वारा उनके साहित्यिक योगदान पर चर्चा संगत प्रतीत होती है। इनके द्वारा रचित विशेष कृत्तियों के माध्यम से उनके साहित्यिक योगदान की जानकारी मिल सकेगी।

भाषा और साहित्य का संबंध अन्योन्याश्रित रहा है। किसी भी देश के साहित्य के अध्ययन में भाषा का योगदान सबसे महत्वपूर्ण होता है क्योंकि भाषा ही वह माध्यम है जिसके द्वारा उस विशेष प्रदेश के सामाजिक परिवेश, राजनीतिक परिवेश और उसकी सांस्कृतिक अस्मिता को गहरे अर्थ में समझा जा सकता है। अमीर खुसरो पहले ऐसे कवि हुए जिन्होंने आगे आने वाले कवियों अथवा रचनाकारों के लिए हिंदी का वास्तविक स्वरूप स्पष्ट किया और जो कहीं-न-कहीं हिंदवी से हिंदी होते हुए आज की मानक हिंदी के करीब की बोली (खड़ी बोली) के निकट परिलक्षित होती है। डॉ. श्यामसुन्दर दास ने खुसरो द्वारा रचित 'खालिकबारी' के संदर्भ में लिखा है - "खुसरो ने हिंदी और अरबी-फारसी शब्दों का प्रचार बढ़ाने तथा हिंदू-मुसलमान में परस्पर भाव-विनिमय में सहायता पहुँचाने के उद्देश्य से खालिकबारी नाम का कोश पद्य में बनाया था। कहते हैं कि इस कोश की लाखों प्रतियाँ लिखवाकर तथा ऊँटों पर लदवाकर सारे देश में बाँटी गयी थी।"[73] इसी तरह उन्होंने कविताएँ तो रची किंतु ऐसा माना जाता है कि वे अपनी कविता को अपने मित्रों के बीच बाँट दिया करते थे जिससे कि न केवल हिंदी अपितु फारसी मिश्रित हिंदी भी सामान्य जन के बीच प्रकट हो सके। कहीं-न-कहीं उनका यह प्रयास आज उनको प्रारंभिक हिंदी के कवि अथवा कह लीजिए कि हिंदी के प्रथम उल्लेखकर्ता के रूप में स्थापित करता है।

संदर्भ-ग्रन्थ सूची

1. संदेशरासक, संपादक-हजारी प्रसाद द्विवेदी, विश्वनाथ त्रिपाठी, द्वितीय प्रक्रम, पद संख्या - 25, पृष्ठ संख्या 8, हिंदी ग्रन्थ रत्नाकार (प्राइवेट) लिमिटेड, हीरा बाघ-बम्बई - 4
2. वही, छंद संख्या - 65 - पृष्ठ संख्या - 17
3. वही, छंद संख्या - 67, पृष्ठ संख्या - 18
4. वही, छंद संख्या - 3, पृष्ठ संख्या - 3
5. हिंदी-सूफी काव्य में हिंदू संस्कृति का चित्रण और निरूपण, डॉ. कन्हैया सिंह, पृष्ठ संख्या - 354
6. खड़ी बोली के आदि कवि अमीर खुसरो का कृतित्व, भाग - 2, संकलन खण्ड, पृष्ठ संख्या - 521

7. वही, पृष्ठ संख्या - 417
8. वही, पृष्ठ संख्या - 448
9. वही, पृष्ठ संख्या - 399
10. वही, पृष्ठ संख्या - 517
11. वही, पृष्ठ संख्या - 580
12. वही, पृष्ठ संख्या - 570
13. वही, पृष्ठ संख्या - 612
14. वही, पृष्ठ संख्या - 593
15. अमीर खुसरो भावात्मक एकता के अग्रदूत - सं. डॉ. मलिक मुहम्मद, पृष्ठ - 172
16. चिंतामणि भाग - 1, काव्य में प्राकृतिक दृश्य, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ संख्या - 21
17. संदेश रासक, छंद संख्या - 132, पृष्ठ संख्या - 33
18. वही, छंद संख्या - 144, पृष्ठ संख्या - 36
19. वही, छंद संख्या - 144, पृष्ठ संख्या - 37
20. वही, छंद संख्या - 145, पृष्ठ संख्या - 37
21. हिंदुस्तान खुसरो की नजर में, सबाहुद्दीन अब्दुर्रहमान, पृष्ठ संख्या - 34
22. अमीर खुसरो और उनका हिंदी साहित्य, भोलानाथ तिवारी, पृष्ठ संख्या - 62
23. वही, पृष्ठ संख्या - 64
24. वही, पृष्ठ संख्या - 89
25. वही, पृ. स. - 68
26. वही, पृष्ठ संख्या - 68
27. वही, पृष्ठ संख्या - 73

28. संदेशरासक, छंद संख्या - 13, पृष्ठ संख्या - 4
29. वही, छंद संख्या - 44, पृष्ठ संख्या. - 12
30. वही, छंद संख्या - 176, पृष्ठ संख्या - 43 - 44 4.
31. बोहल शोध मञजूषा, भाग - 12, अंक - 7(11) - अक्टूबर, 2020, पृष्ठ संख्या - 165
32. वही, पृष्ठ संख्या - 165
33. अमीर खुसरो भावात्मक एकता के अग्रदूत, सं. डॉ. मलिक मुहम्मद, पृष्ठ संख्या - 179
34. वही, पृष्ठ संख्या - 174
35. वही, पृष्ठ संख्या - 138
36. वही, पृष्ठ संख्या - 120
37. बोहल, शोध मञ्जूषा, भाग - 12, अंक - 7(11), अक्टूबर 2020, पृष्ठ संख्या - 165
38. अपभ्रंश साहित्य, डॉ. हरिवंश कोछड़, भारतीय साहित्य मंदिर, दिल्ली-6, पृष्ठ संख्या - 247
39. हिंदी साहित्यः उद्‌भव और विकास, हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - 51
40. अपभ्रंश साहित्य, डॉ. हरिवंश कोछड़, पृष्ठ संख्या - 250
41. संदेशरासक, सं. विश्वनाथ त्रिपाठी, भूमिका, पृष्ठ संख्या - 27
42. अपभ्रंश साहित्य, डॉ. हरिवंश कोछड़, पृष्ठ संख्या - 251
43. संदेशरासक, विश्वनाथ त्रिपाठी ,भूमिका, पृष्ठ संख्या - 28-29
44. अपभ्रंश साहित्य, डॉ. हरिवंश कोछड़, पृष्ठ संख्या - 255-256
45. संदेशरासक, स. विश्वनाथ त्रिपाठी, भूमिका, पृष्ठ संख्या - 64
46. अपभ्रंश साहित्य, डॉ. हरिवंश कोछड़, पृष्ठ संख्या - 257-258

47. हिंदी के विकास में अपभ्रंश का योग, डॉ. नामवर सिंह, पृष्ठ संख्या - 165
48. संदेशरासक, स. विश्वनाथ त्रिपाठी, भूमिका, पृष्ठ संख्या - 32
49. हिंदी साहित्य का आदिकाल, हजारी प्रसाद द्विवेदी, वाणी प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - 68
50. संदेशरासक, स. विश्वनाथ त्रिपाठी, भूमिका, पृष्ठ संख्या - 62
51. हिंदी साहित्यः उद्भव और विकास, हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ संख्या - 51
52. संदेशरासक, सं. विश्वनाथ त्रिपाठी, भूमिका, पृष्ठ संख्या - 84-85
53. हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृष्ठ संख्या - 134
54. हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृष्ठ संख्या - 25
55. वही, पृष्ठ संख्या - 25
56. अमीर खुसरो और उनका हिंदी साहित्य, भोलानाथ तिवारी (प्रभात प्रकाशन), पृष्ठ संख्या - 130
57. हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, बच्चन सिंह (राधाकृष्ण प्रकाशन) पृष्ठ संख्या - 65-66
58. अमीर खुसरो और उनका हिंदी साहित्य, भोलानाथ तिवारी, पृष्ठ संख्या - 34
59. हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, बच्चन सिंह, पृष्ठ संख्या - 66
60. हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ संख्या - 34
61. हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृष्ठ संख्या - 25-26
62. हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ संख्या - 35
63. हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृष्ठ संख्या - 26

64. संदेशरासक, सं. हजारीप्रसाद द्विवेदी, विश्वनाथ त्रिपाठी, छंद स. 1-5, पृष्ठ संख्या - 3
65. जायसी ग्रन्थावली, सं. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ संख्या - 30
66. रामचरितमानस, तुलसीदास, गीताप्रेस गोरखपुर, पृष्ठ संख्या - 3
67. संदेशरासक छंद स. - 16, पृष्ठ संख्या - 5
68. पृथ्वीराज रासो, स. हजारीप्रसाद द्विवेदी - पृष्ठ संख्या 120
69. हिंदी साहित्य : उद्‌भव और विकास, हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ संख्या - 15
70. संदेशरासक, छंद संख्या, 22, पृष्ठ संख्या - 6
71. संदेशरासक, छंद संख्या - 31, पृष्ठ संख्या - 10
72. वही, भूमिका, पृष्ठ संख्या - 84
73. हिंदी भाषा का विकास, श्यामसुंदर दास, पृष्ठ संख्या - 78

दूसरा अध्याय

हिंदी साहित्य का मध्यकाल और मुस्लिम रचनाकार

(कबीर, जायसी, रसखान, रहीम)

पृष्ठभूमि

मध्यकालीन हिंदी साहित्य की समृद्धि में भिन्न-भिन्न धर्म एवं संप्रदाय के लोगों ने अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। इसमें मुस्लिम कवियों का भी महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। इस काल में कबीर, जायसी, रसखान, रहिम जैसे कवियों की हिंदी साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान है। इस काल तक हिंदी भाषा लगभग सम्पूर्ण उत्तर भारत के भाव एवं विचारों को व्यक्त करने वाली प्रमुख भाषा बन चुकी थी। हिंदू एवं मुस्लिम दोनों संप्रदाय के कवियों ने अपने भाव एवं विचारों को व्यक्त करने के लिए इसी भाषा को अपनाया। प्रारंभ में अमीर खुसरो और बाद में अन्य सूफी कवियों में इसकी झलक दिखती हैं।

भारतीय साहित्यकारों ने समय-समय पर यह प्रयास किया है कि विभिन्न सम्प्रदायों के मध्य वैचारिक साम्यता बनी रहे। हिंदी भाषा और साहित्य ने एक लम्बी यात्रा तय की है। इस संबंध में शीरानी जी का विचार महत्त्वपूर्ण है, "मुसलमानों का हिंदी साहित्य से सम्बन्ध शुरू से रहा है। इसलिए भक्ति और रीतिकालीन साहित्य में मुस्लिम सूफी एवं मुस्लिम गैर-सूफी रचनाकारों ने प्रमुख भूमिका निभाई।"[1] मध्यकाल की परिधि में हिंदी साहित्य की भक्तिपरक और रीतियुक्त कविता आती है, जिसकी समय सीमा संवत् 1375 से संवत् 1900 है। इस काल में राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिवेश को लेकर विद्वानों ने अपनी अलग-अलग राय एवं विचार प्रकट किए हैं।

भक्तिकाल के प्रथम चरण में जहां अफगानों की हुकूमत थी वहीं द्वितीय चरण में मुगलों का शासनकाल था। भक्तिकाल की सीमा शाहजहां के शासनकाल

तक मानी जाती है। "भारत में मुसलमानों का साम्राज्य संवत् 1250 वि. से प्रारम्भ होता है तथापि कितने ही मुसलमान साधक और फकीर आक्रमणकारियों के पहले ही यहाँ आ चुके थे।"[2] उस समय समाज में वर्ण व्यवस्था व्याप्त थी। लोगों में छुआछूत, ऊंच-नीच, जाति-पाँति की भावना प्रबल थी। हिंदू और मुस्लिम दोनों धर्मों में प्रेम जैसी कोई भावना नहीं थी लेकिन इस ओर संतों एवं सूफियों ने ध्यान दिया तथा आपस में एक-दूसरे से सम्मिलन एवं सद्भाव के लिए प्रयास किया। भाषा के क्षेत्र में इनका सम्मिलन बहुत पहले हो चुका था। अमीर खुसरो ने इस एकता की नींव को मजबूत किया। हिंदी साहित्य के इतिहास को देखने पर यह ज्ञात होता है कि इस काल में हिंदी की उन्नति हुई और हिंदी के कवियों का आदर बढ़ा। इस संदर्भ में गंगाप्रसाद सिंह विशारद की टिप्पणी महत्त्वपूर्ण है, "मुसलमानी राजत्व में हिंदी की इस उन्नति का मूल कारण है मुसलमान सम्राटों का हिंदी के कवियों को आदर प्रदान करके हिंदी का वास्तविक सम्मान करना। हिंदी के इस नाते से मुसलमानों के प्रति हमारा प्रेम प्रगाढ़ हो जाता है। मुसलमानों को इस पर गर्व होना चाहिए।"[3] हिंदी के प्रति मुसलमान सम्राट अर्थात् हिंदी भाषा और कविता पर ये इस तरह मुग्ध थे कि अपनी मातृभाषा तुर्की या फारसी होने पर भी वे हिंदी कविता अच्छी तरह समझते भी थे और उनमें से अनेक ने स्वयं हिंदी में रचनाएं भी की हैं।

यह एक प्रामाणिक तथ्य है कि आदिकाल के समय से ही मुस्लिम रचनाकार अपनी लेखनी से हिंदी साहित्य को निरंतर समृद्ध करते रहे हैं। अद्दहमाण (अब्दुर्रहमान), अमीर खुसरो, मंझन, कबीर, कमाल, जायसी, रज्जब, रहीम, शेखसादी, रसखान, कुतुबन, आलम, मोहम्मद जलालुद्दीन, मुबारक, जमाल, कादिर बक्स, उसमान, रसलीन, नूर मोहम्मद, नेवाज, लतीफ, मुल्ला दाउद, इंशाअल्लाह खां आदि मुस्लिम रचनाकारों का हिंदी साहित्य में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। मुस्लिम कवियों के अलावा मुस्लिम कवयित्रियां भी थीं जिन्होंने साहित्य की सेवा की। इस संबंध में शेख, ताज, सुन्दरकली, मुश्तरी, रूपवती बेगम आदि का नाम लिया जा सकता है। प्रारम्भिक भारतीय मुस्लिम साहित्यकार वैचारिक दृष्टि से सूफी थे और पारस्परिक प्रेम तथा सौहार्द में विश्वास रखते थे। उनका जनता से सीधा सरोकार था।

भक्तिकाल में कबीर, जायसी, रहीम, रसखान प्रमुख मुस्लिम कवि हुए हैं। लेकिन बहुत से ऐसे कवि हैं, जिनसे पाठक वर्ग कम परिचित हैं। इसलिए इस

अध्याय के पृष्ठभूमि के तौर पर इन कवियों का परिचय देने के साथ-साथ उनकी कृतियों पर भी प्रकाश डाला जा रहा है।

1. शेख सादी (सन् 1172 - 1288 ई.)

शेख सादी 13वीं शताब्दी के प्रसिद्ध साहित्यकार माने जाते हैं। उनकी कविता के कुछ उदाहरण हैं-

"कहना उस पै जो करै कहना,
न करै कहना तो कहां कहना।
रहना उस पै जो लखे गुन को,
गुनको न लखे तो कहां रहना॥"[4]

2. अमीर खुसरो (सन् 1253 - 1325 ई.)

अबुल हसन यमीनुद्दीन अमीर खुसरो चौदहवीं सदी के लगभग दिल्ली के निकट रहने वाले एक प्रमुख कवि, शायर, गायक और संगीतकार थे। अमीर खुसरो को हिंदी का प्रसिद्ध मुस्लिम कवि माना जाता है। उन्हें खड़ी बोली के आविष्कार का श्रेय दिया जाता है तथा हिंद का तोता कहा जाता है। उनकी कविता बड़ी ही सरस और मनोमुग्ध करने वाली है। हिंदी में उनकी पहेलियां बहुत प्रसिद्ध हैं -

"इधर को आवे उधर को जावे। हर हर फेर काट कर खावे।
ठहर रहे जिस दम वह नारी। खुसरो कहे वरे को आरी/यारी॥"[5]

3. जमाल (सन् 1545 - 1605 ई.)

ये भारतीय काव्य परंपरा से पूर्ण परिचित सहृदय मुस्लिम कवि थे। इनके नीति और शृंगार के दोहे राजपूताने की ओर बहुत लोकप्रिय थे। इनका कोई ग्रंथ तो नहीं मिलता, लेकिन कुछ संग्रहीत दोहे मिलते हैं।

"पूनम चाँद, कुसूंभ रंग नदी तीर द्रम डाल।
रेत भीत, भुस लीपणो ए थिर नहीं जमाल॥"[6]

4. सैय्यद मुबारक (सन् 1583 - 1687 ई.)

सैय्यद मुबारक अली बिलग्रामी अरबी, फारसी और संस्कृत के विद्वान तथा

हिंदी के कवि थे। इनके सैकड़ों कविता और दोहे पुराने काव्य संग्रहों में मिलते हैं। इनका 'अलकशतक' और 'तिलशतक' ग्रंथ ही उपलब्ध हो सका है, जिसमें सौ दोहे नायिका की अलकों पर और सौ दोहे नायिका के मुखमंडल के तिल पर लिखे गए हैं।

कवित्त और सवैयों पर भी उनका उतना ही अधिकार दिखता है, जितना दोहे पर दिखता है। उनके 'अलकशतक' से एक उदाहरण है –

"अलक मुबारक तिय बदन लटकि परी यों साफ।
खुस नवीस मुनसी मदन लिख्यो काँच पर काफ।।"[7]

5. जैनुद्दीन मुहम्मद (सन् 1679 ई..)

जैनुद्दीन मुहम्मद के कविता का समय लगभग संवत 1736 वि. का माना जाता है। इनका एक पीठ का छन्द प्रख्यात है। इनके कवित्त से एक उदाहरण–

"अनरस रस में जौ जाकी ओर, होत कोऊ
वाही सो दुरावै कहौ वासो को कठोर है।
हाथ हूँ धरेंगे पुनि अंकहूं भरेंगे हमें
भावै सो करेंगे यामें तुमै क्या मरोर है।।''[8]

6. मुहम्मद (सन् 1702 – 1748 ई.)

मुहम्मद शाह का कविता काल संवत् 1735 वि. के आसपास माना जाता है। इन्होंने एक बारहमासा लिखा। इनकी कविता से कुछ पंक्तियां दृष्टव्य हैं –

"मन मुलुक खलक तहसील करन तन
परगन सुख अखत्यारी
बनी आदम आदि कुटुम्ब संग वै।
चलि तेरे फील सवारी।।"[9]

7. महबूब (सन् 1704 ई.)

महबूब के फुटकर छन्द बहुत मिलते हैं। इनकी कविता में अनुप्रास का प्रयोग खूब किया गया है, जिसकी प्रशंसा भी होती है। मिश्र बंधुओं ने इन्हें तोष की श्रेणी में रखा है। उनके कवित्त से कुछ पंक्तियां द्रष्टव्य है–

"जानै राग रागनी कवित्त रस दोहा छन्द
जप तप, तेज त्याग एक सी ग्रतन का।
'महबूब' उरझन देखि सकै मित्र की
विचित्र हरि भाति भै रिझैया नुकतन का।।"[10]

8. कादिर बक्स (सन् 1815 - 1873 ई.)

कादिर बख्श पिहानी जिला हरदोई के रहने वाले और सैय्यद इब्राहीम के शिष्य थे। इनके कविता का समय संवत् 1660 के आसपास समझा जाता है। इनके फुटकल कवित्त पाए जाते हैं। उनका यह कवित्त लोगों द्वारा बहुत सुना जाता था -

"गुन कौ न पूछैं कोऊ, औगुन की बात पूछै,
कहा भयो दर्द! कलिकाल यों खरानो है।"[11]

9. ख्वाजा अहमद (सन् 1830 - 1905 ई.)

ख्वाजा अहमद का जन्म 1830 ई. माना जाता है। उनकी मृत्यु 1905 ई. बताया जाता है।

''पता चलता है कि ख्वाजा अहमद ने अपनी 'नूरजहां' नामक रचना को अपनी मृत्यु से केवल दो मास पूर्व सन् 1905 ई. अर्थात् सं. 1962 वि. में समाप्त किया था। इस प्रकार लगभग 75 वर्ष की आयु पाकर मरे थे और इन्होंने इस बीच में कई अन्य फुटकर रचनाएं भी प्रस्तुत की।[12]

उपर्युक्त जितने भी कवियों के उदाहरण दिये गए हैं, उनसे अधिकतर अध्येता भली प्रकार से परिचित नहीं हैं। उपर्युक्त कवियों का गंभीरता से अध्ययन नहीं किया गया है। इन कवियों का न्यायसंगत अध्ययन एवं मूल्यांकन होना आवश्यक है। 'प्रेमाख्यानक काव्यों में विभिन्न आलोचकों ने रुचि अवश्य ली हैं, लेकिन उनकी दृष्टि कथानक के भारतीय और अभारतीय होने अर्थात् हिंदू या मुस्लिम संस्कारों की अभिव्यक्ति और इन्हें शृंगारपरक सिद्ध करने तक ही सीमित रही है।

अब्दुर्रहमान से लेकर मुल्ला असदुल्लाह वजही और उनके समकालीनों तक सभी मुस्लिम साहित्यकारों ने अपने रचना कर्म को महत्व दिया। वे इसे गतिशील बनाने के पक्षधर थे।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि कबीर, जायसी, रसखान और रहीम जैसे रचनाकारों के लिए पहले से पृष्ठभूमि तैयार हो चुकी थी। मुसलमानों का हिंदी साहित्य से सम्बन्ध शुरू से ही रहा है। हिंदी साहित्य के इतिहास को देखें-परखें तो ज्ञात होता है कि मुस्लिम साहित्यकारों का भी योगदान हिंदी साहित्य के विकास में रहा है। ऊपर बहुत से मुस्लिम रचनाकारों की चर्चा की गई है लेकिन इस अध्याय के अन्तर्गत मध्यकाल के प्रतिष्ठित मुस्लिम कवि कबीर, जायसी, रसखान, रहीम को आधार बनाकर उनके योगदान को रेखांकित किया गया है।

कबीर (सन् 1398 - 1518 ई.)

कबीर निर्गुण मत के प्रवर्तक कवि हैं। भक्तिकाल में निर्गुण भक्तों में कबीर को सर्वोच्च स्थान दिया गया है। भारत भूमि जो अनेक संत रूपी रत्नों की खान रही है उन्हीं रत्नों में से एक थे कबीरदास। हिंदी साहित्य के इतिहास में कबीर के योगदान को नकारा नहीं जा सकता। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी उनकी प्रतिभा को पहचाना है और हिंदी साहित्य के इतिहास में उल्लेख किया है, "प्रतिमा उनमें बड़ी प्रखर थी।"[13] कबीर सिकन्दर लोदी के समकालीन थे। उनके समय में देश संकट की घड़ी से गुजर रहा था। सामाजिक व्यवस्था पूरी तरह से डगमगाई हुई थी। उच्चवर्ग वैभव-विलासिता का जीवन जी रहा था, वहीं गरीब वर्ग का जीवन विपन्नता में लिप्त था। समाज में हर तरफ विद्रूपताएं, विसंगतियां ही नजर आ रही थीं। तत्कालीन समय में आमजन में भय था। बोलने से जहां परहेज हो रहा था, ऐसे में कबीर ने बिना डरे अपनी बात कहीं। उनकी वाणी में तत्कालीन समय की समस्याओं, जीवन मूल्यों के क्षरण, शोषण, पराधीनता और मनुष्यता के संकट के प्रति चिंता और प्रतिरोध का केन्द्रीय भाव रहा है। मनुष्य को सकारात्मक मार्ग पर ले जाने के लिए कबीर की वाणियों का हर युग में महत्त्व रहा है और रहेगा। मध्य युग के इस मस्तमौला और फक्कड़ संत कबीर ने धर्म, राजनीति और समाज आदि विभिन्न क्षेत्रों में सभी जागरूक व्यक्ति के लिए एक पूर्व भूमिका प्रस्तुत कर दी थी। कबीर का जन्म, धर्म, विवाह आदि को लेकर बड़ा मतभेद है। कबीर पर आधारित जीवनी में इस संबंध में भिन्न-भिन्न मत हैं।

सामाजिक रुढ़ियां

कबीर दास बाल्यकाल से बड़े धर्मपरायण और उपदेश निरत थे। जब उनको

कुछ सुध-बुध हुई तो वे तिलक लगाकर राम-नाम जपने लगे। एक दिन किसी ने उनसे कहा कि "तुम निगरे हो, इसलिए जब तक तुम कोई गुरु न कर लोगे, उस समय तक तिलक मुद्रा देने अथवा राम नाम जपने से पूरे फल की प्राप्ति न होगी।''[14] उस समय काशी में स्वामी रामानंद की बड़ी प्रसिद्धि थी। कबीर उनके पास शिष्य बनने की इच्छा को लेकर गए, लेकिन उन्होंने स्वीकार नहीं किया। बाद में स्वामी रामानंद ने कबीर को अपना शिष्य स्वीकार कर लिया, इसको लेकर कई प्रसंगों का उल्लेख मिलता है। कबीर ने अपने को जुलाहा कहा है। वे लिखते हैं, 'तू बाम्हन मैं काशी का जुलाहा' (आदि ग्रंथ), "इससे अब उनके जाति निर्णय में कोई संदेह नहीं रह जाता।"[15]

कबीर ने अपनी वाणी के द्वारा मानव की मानसिकता एवं अंतर्द्वंद्व को प्रस्तुत किया है। उनकी अभिव्यक्तियों में लोक-पक्ष स्वत: ही उभरकर सामने आ जाया करता है। आम जन भी कबीर वाणियों से परिचित हैं। कबीर का काव्य समाज सापेक्ष है। उन्होंने समाज में व्याप्त कुरीतियों एवं विसंगतियों को सिर्फ देखा ही नहीं था, बल्कि उसको सहन भी किया था। कबीर ने सामाजिक सुधार का नारा बुलंद किया और समाज में व्याप्त अनेक प्रकार के आचरिक और मानसिक विकारों को निर्मूल करके आदर्श समाज, आदर्श मानव की संकल्पना की। इसी कामना की पूर्ति के लिए उन्होंने सामाजिक विसंगतियों पर बड़े तीव्र और तीखे प्रहार किए। उनकी वाणियों में उन तमाम चीजों पर व्यंग्य मिलता है, जो मानवता के खिलाफ हो, चाहे वह धर्म हो, जाति हो, व्यवसाय हो या फिर और कुछ। कहने का तात्पर्य यह है कि कबीर अपनी रचनाओं में रूढ़िवाद, धर्म के नाम पर दिखावापन का विरोध करते हैं।

कबीर का मकसद किसी समुदाय विशेष को अपमानित नहीं करना था, बल्कि वह सभी समुदाय के लिए यह संदेश देते हैं कि दिखावे की प्रवृत्ति ठीक नहीं है। सच को समझो, उसे स्वीकार करो, उसी राह पर चलो।

वह कहते हैं -

"कहै कबीरा दास फकीरा, अपनी राह चलि भाई
हिंदू तुरक का करता एकै ता गति लाखि न जाई।।"[16]

ऐसा नहीं है कि इस तरह का संदेश केवल कबीर के यहाँ है। अन्य संतों का भी स्वर कबीर की ही तरह रहा है। रैदास, नानक, दादू, तुकाराम आदि संतों

के यहाँ भी जाति-पाति, छुआ छूत, मूर्तिपूजा, पाखंड, बाह्य आडंबरों का विरोध मिलता है।

इस प्रकार उस समय के सभी संतों का दृष्टिकोण पूर्णतः समन्वयवादी था। इस काल के काव्य के सृष्टा संत भले ही शिक्षित और शास्त्रों के ज्ञाता न हो, लेकिन अपने युग के संयत एवं विवेकशील दृष्टा थे। उनका विश्वास कागज लेखि पर आधारित न होकर आँखों देखि पर था। तत्कालीन समय की कविता की पृष्ठभूमि के रूप में अनेक विचारधाराओं का योगदान रहा है।

चेतनशील पक्ष

वर्तमान युग में कबीर के उपदेश हमें याद रखने होंगे। कबीर की दूर दृष्टि इस युग तक आ पहुँची। वह संत होने के साथ-साथ समाज सुधारक भी रहे हैं। कबीर का धर्म मानव धर्म का समर्थक है, जो देश-काल और व्यक्ति की सभी प्रकार की सीमाओं से ऊपर है। कबीर ने सर्व-धर्म समन्वय की भावना को उजागर लिया -

"जो तोको काँटा बुवै ताहि बोव तू फूल।

तोहिं फूल को फूल है वाको है तिरसूल॥"[17]

आज व्यक्ति से लेकर राष्ट्रीय स्तर पर मानवता की उदात्त भावना को जागृत करके मानव को सुखी बनाने की बात की जाती है। लेकिन जिस तरह का परिदृश्य है उससे सम्पूर्ण देश में मानव जाति किसी न किसी कारण भयभीत है। सत्ता का बदलता स्वरूप, यांत्रिक शक्ति का विकास, धार्मिक उन्माद आदि कारणों से भय है। यही भय हम कबीर के समय भी देखते हैं। स्वरूप तब की तरह नहीं है अब लेकिन मानव जाति अब भी भयभीत है। कबीर मानव और ईश्वर, मानव और मानव में प्रेम भाव देखना चाहते थे। उन्होंने प्रेम को सर्वोपरि मानते हुए लिखा-

"पोथी पढ़ी-पढ़ी जग मुआ, पंडित भया न कोय।

ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय॥"[18]

कबीर मानवता के प्रति प्रेम की बात करते हैं। उनके स्वभाव में स्पष्टतः योगियों-सी सुदृढ़ता व भक्तों-सी करुणा देखी जा सकती हैं। "कबीरदास ने ये

अक्खड़ता योगियों से विरासत में पाई थी। संसार में भटकते हुए जीवों को देखकर करुणा के अश्रु से वे कातर नहीं हो जाते थे बल्कि और भी कठोर होकर फटकार लगाते थे। वे प्रह्लाद की भाँति सर्व जगत के पाप को अपने ऊपर ले लेने की इच्छा से विचलित नहीं पड़ते थे बल्कि और भी शुष्क होकर सूरत और निरत का उपदेश देते थे।"[19] कबीर अपने समय एवं समाज के कटु आलोचक ही नहीं समाज को लेकर वह चिंतित भी थे। कबीर का अपने समाज के प्रति दृष्टिकोण मानवतावादी अर्थात् समानता को कायम करने की थी।

राजनीतिक सत्ता के प्रति रूख

राजनीतिक दृष्टि से कबीर का युग अस्थिरता और अशांति का युग था। बादशाह, सामंत, राजकीय कर्मचारी वर्ग सत्ता का प्रयोग अपनी ऐशो आराम और जनता को तकलीफ देने के लिए करते थे। यह युग शासक और शासितों, पोषक और पोषितों, धनी व निर्धन के बीच बंटा हुआ था। कबीर ने इस असमानता एवं शोषण का खुलकर विरोध किया जिसके कारण उनको कई बार सत्ता का विरोध भी झेलना पड़ा। कबीर के अनुसार तत्कालीन राजनीतिक व्यवस्था के लिए भक्ति एक विकल्प और एक तकनीक थी। भक्ति इससे बचने का एक मार्ग भी था। कबीर के लिए भक्ति का अर्थ केवल ईश्वर की उपासना नहीं है बल्कि कबीर के लिए भक्ति का अर्थ है सामूहिक भागीदारी और साझेदारी जो प्रचलित सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था के बदलाव एवं पुनर्निर्माण के लिए आवश्यक है। कबीर जनता को आगाह करते हैं कि सत्ताधारी धर्म के नाम पर समाज में विभाजन एवं शोषण की कोशिश करते हैं। उनकी चेतावनी उनके लिए भी है। वह कहते हैं -

"दुर्बल को न सताइए जाकी मोटी हाय।
बिना जीव को स्वाँस ले लोह भसम ह्वे जाय।।"[20]

कबीर अपनी वाणी के जरिए उस पर लगातार आक्रमण करते हैं। निश्चित रूप से कबीर का क्षेत्र राजनीति नहीं था। फिर भी आसपास के वातावरण में जो कुछ घट रहा था कबीर उससे चिंतित एवं परेशान अवश्य थे और अपने चिंतन के द्वारा लगातार तत्कालीन राजनीतिक सत्ता की आलोचना करते रहते थे। उनका राजनीतिक चिंतन लोक कल्याण की भावना पर आधारित था, वह भ्रटाचार-मुक्त, समानता पर आधारित, न्यायपूर्ण एवं स्वतंत्र समाज की स्थापना करना चाहते थे

जिसकी रूपरेखा उन्होंने बेगमपुरा की अवधारणा में प्रस्तुत की। कबीर भारत की एकता के जबरदस्त समर्थक थे।

आलोचनात्मक मूल्यांकन

अतीत से वर्तमान तक कबीर की छवि में बहुत परिवर्तन आया है और यह परिवर्तन पाठकों एवं आलोचकों की अपनी दृष्टि से निर्मित हुई है। हिंदी साहित्य में हजारी प्रसाद द्विवेदी ऐसे पहले विद्वान एवं आलोचक रहे हैं जिन्होंने यह घोषणा करने का साहस किया कि, "हिंदी साहित्य के हजारों वर्षों के इतिहास में कबीर जैसा व्यक्तित्व लेकर कोई लेखक उत्पन्न नहीं हुआ। महिमा में यह व्यक्तित्व केवल एक ही प्रतिद्वन्दी जानता है; तुलसीदास। मस्ती फक्कड़ाना स्वभाव और सब-कुछ को झाड़-फटकार कर चल देने वाले तेज ने कबीर को हिंदी-साहित्य का अद्वितीय व्यक्ति बना दिया है।"[21]

कबीर को मानने वाले दो तरह के लोग हैं, पहला - कबीरपंथी (कबीर के पदों का गायन कर, परम्पराओं से मान्यताओं को मानने वाले) दूसरा - हिंदी साहित्य के आलोचक और सुधी जन। कबीर की हिंदी आलोचना में विविध छवियाँ हैं, जैसे कि संत, महात्मा, ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रतिनिधि, भक्त कवि, तात्विक एवं रहस्यवादी साधक, समाज सुधारक एवं चिन्तक, पाखण्डों के विरोधी, प्रगतिशील एवं क्रांतिकारी कवि, निर्गुण पंथ के अग्रदूत आदि। कुछ साहित्यकार एवं आलोचक कबीर को वर्गीय चेतना के आधार पर भी देखते हैं। हिंदी साहित्येतिहास में जार्ज ग्रियर्सन और मिश्रबंधु के बाद के साहित्यकारों और आलोचकों ने कबीर की विराट सत्ता को स्वीकार किया और स्थापित किया। प्रसिद्ध साहित्यकार अयोध्यासिंह उपाध्याय ने 1916 में 'कबीर रचनावली' नाम से पुस्तक लिखा और डॉ. श्यामसुन्दरदास ने 'कबीर ग्रंथावली' के नाम से कबीर के पदों का संकलन किया। गंगा प्रसाद सिंह विशारद द्वारा संग्रहित 'हिंदी के मुसलमान कवि' पुस्तक में भी कबीर पर विस्तार से लिखा गया है। देखा जाए तो कबीर पर आधारित सैकड़ों महत्वपूर्ण पुस्तकें उपलब्ध हैं। कबीर को समझने के लिए डॉ. शमामसुन्दर दास की 'कबीर ग्रंथावली' की 40 पृष्ठ की भूमिका महत्वपूर्ण है। हजारी प्रसाद द्विवेदी की पुस्तक 'कबीर' हमें कबीर को समझने में एक दृष्टि प्रदान करती है, जिससे हम कबीर को समझ सकें। आचार्य रामचंद्र शुक्ल आदि कबीर की धर्म साधना, प्रेम, भक्ति स्वरूप की सराहना करते हैं, अर्थात् भाव के स्तर पर कबीर की प्रशंसा करते हैं, क्योंकि कबीर से पहले

नाथपंथियों की ऐसी साधना विकसित हो रही थी, जिसे हठयोग कहते हैं। इसमें शरीर को विभिन्न प्रकार से पीड़ा दी जाती है, तब साधना की जाती थी। कबीर ने इस परंपरा अर्थात् हठयोग को तोड़ा और प्रेम, भक्ति जैसी सहज धार्मिक भावना पर जोर दिया।

आचार्य शुक्ल ने बहुत कुछ वैसा ही कहा है जैसा कि डॉ. श्यामसुंदर दास पहले ही कबीर के बारे में कह चुके थे। शुक्ल जी ने कहा है कि, "संस्कृत बुद्धि, संस्कृत हृदय और संस्कृत वाणी का वह विकास इस शाखा में नहीं पाया जाता, जो शिक्षित समाज को अपनी ओर आकर्षित करता, परंतु निम्न श्रेणी और अशिक्षित जनता पर इन संत महात्माओं का बड़ा भारी उपकार उच्च विषयों का अभाव देकर, आचरण की शुद्धता पर जोर देकर, आडम्बरों का तिरस्कार करके, आत्मगौरव का भाव उत्पन्न करके, इन्होंने इसे ऊपर उठने का स्तुप्त प्रयत्न किया।"[22] जहां शुक्ल जी, कबीर की भाषा को शिक्षित जनता की भाषा नहीं मानते हैं, उनकी भाषा को पंचमेल खिचड़ी कहा है। वहीं आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी कबीर को भाषा का अर्थात् वाणी का डिक्टेटर कहते हैं, "भाषा पर कबीर का जबरदस्त अधिकार था। वे वाणी के डिक्टेटर थे। जिस बात को उन्होंने जिस रूप में प्रकट करना चाहा है उसे उसी रूप में भाषा से कहलवा लिया – बन गया है तो सीधे-सीधे, नहीं तो दरेरा देकर।"[23]

आचार्य शुक्ल और आचार्य द्विवेदी की धारणा कबीर को लेकर क्या थी? नामवर सिंह का लेख 'अस्वीकार का साहस' में देखा जा सकता है। हजारी प्रसाद द्विवेदी का नाम कबीर के साथ उसी तरह जुड़ा है जैसे तुलसीदास के साथ रामचंद्र शुक्ल का। दरअसल इन सभी विशेषताओं का मूल स्रोत है कबीर का असाधारण व्यक्तित्व जिस व्यक्तित्व का ठीक-ठीक उद्‌घाटन ही आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की कोशिश रही द्विवेदी जी कबीर को एक व्यंग्यकार के रूप प्रतिष्ठित करते हैं, "आज तक हिंदी में ऐसा जबरदस्त व्यंग्य लेखक पैदा ही नहीं हुआ। उनकी साफ चोट करने वाली भाषा, बिना कहे भी सब कुछ कह देने वाली शैली और अत्यंत सादी किंतु अत्यंत तेज प्रकाशन भंगी अत्यंत साधारण है। हमने देखा है कि बाह्याचार पर आक्रमण करने वाले संतों और योगियों की कमी नहीं है, पर इस कदर सहज और सरल ढंग से चकनाचूर कर देनेवाली भाषा कबीर के पहले बहुत कम दिखाई दी है। व्यंग्य वह है, जहां कहने वाला अध रोष्ठों में हँस रहा हो और सुनने वाला तिलमिला उठा हो और फिर भी कहने वाले को जवाब देना अपने को और भी उपहासास्पद बना लेना हो जाता हो।"[24]

उपर्युक्त स्थापनाओं में से प्रत्येक के लिए द्विवेदी जी के 'कबीर' पुस्तक से ढेरों उदाहरण दिए जा सकते हैं, जो कबीर का हिंदी साहित्य में योगदान को भी दर्शाता है। हिंदी आलोचना ने अपने विकास के साथ-साथ अपनी परंपरा और कविता का बार-बार मूल्यांकन किया है। साहित्य को केन्द्र में रखने के लिए आलोचना की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। कबीर बड़े लेखक हैं और कबीर पर लिखना मुश्किल काम है। कबीर की कविता अपने समय की अर्थात तत्कालीन परिस्थितियों का दस्तावेज है। इस अर्थ में उसे महज शब्दार्थ वाली पद्धति से समझने में दिक्कत आती है। कबीर और उनके समकालीनों के यहां आत्मगत भावों की अभिव्यक्ति के साथ-साथ उनका आत्मविश्वास, दृढ़ निश्चय भी दिखता है। कबीर की महान चेतना में बाह्य और आन्तरिक अनेक छवियाँ अन्तर्निहित है। कबीर की विद्रोही भावना स्वयं उनकी सामाजिक स्थिति की स्वाभाविक उपज थी। उनकी सबसे बड़ी विशेषता एकत्व की भावना का समर्थन है। कबीर को प्रगतिशील कहने में हमें कोई संकोच नहीं है। कबीर ने जीवन के सभी पहलुओं में झांका है। कबीर स्वयं एक गृहस्थ थे, इसलिए वे गृहस्थ व वैरागी दोनों का समान आदर देते थे,

"वैरागी विरक्त भला, गिरही चित्त उदार।

दूंह चुका रीता पड़े, ताकूं बार न पार॥''[25]

कबीर की साखियों का सीधा अर्थ आत्म ज्ञान के विचार को पहचान देना है। भक्ति ने कबीर को इतना महिमामंडित बना दिया कि वे जन-जन के कण्ठहार बन गए। ऐसी भक्ति न कर्मकाण्डी पंण्डितों के पास थी और न काजियों के पास। कबीर ने अपनी पूर्ण चेतना में न केवल अपना युग जिया, बल्कि अपना अतीत और आगत दोनों को जिया है।

कबीर के युग में भिन्न-भिन्न मतों, संप्रदायों के लोगों ने अपने-अपने संप्रदायों को श्रेष्ठ बताने का प्रयास किया। सभी संप्रदायों के मध्य जब ऐसी भावना पनपने लगी तो पारस्परिक कलह उत्पन्न होना स्वाभाविक था। कबीर इस पारस्परिक कलह को दूर करने के लिए आपस में साम्प्रदायिक सद्भाव बनाने के लिए सदैव सचेष्ट बने रहे। कबीर की दृष्टि में जो लोग साम्प्रदायिक जैसी संकीर्ण विचारधारा रखते हैं और किसी संप्रदाय विशेष को ही अन्म संप्रदायों से श्रेयस्कर मानते हैं, ऐसे मानने वाले को वह उचित नहीं ठहराते हैं। आज के संदर्भ में भी

कबीर के उसी मानवतावाद की जरूरत है जो उन्होंने वर्षों पूर्व स्थापित किया था। आज प्रत्येक क्षेत्र में चाहे नगरीय हो या ग्रामीण सर्वत्र मानवीय मूल्यों का पतन होते देखा जा सकता है। परिणामस्वरूप अब फिर से कबीर को याद किया जाता है। डॉ. गोविंद लाल हावड़ा का कथन बिल्कुल ठीक है, "अतीत को झकझोर कर देखें तो आज चार सौ वर्ष पहले का कवि जिसे पढ़ने-पढ़ाने वाली दुनिया कबीर के नाम से जानती है, आज भी आधुनिक है, उसके स्वप्नों का भारत आज भी अपूर्ण है, उनका मानवता का संदेश आज भी रिक्तता की पूर्ति कर रहा है। इतने बड़े अन्तराल के बाद भी आज कबीर के दोहे पुराने नहीं लगते। ऐसा लगता है जैसे उनकी रचना आज की स्थिति को सामने रखकर की गई हो।"[26]

आज का समय कबीर के समय से बहुत बदल गया है लेकिन मनुष्य अब भी अवसाद, आतंक से ग्रस्त है। युगद्रष्टा और युग स्रष्टा ये दो पदवी हैं जो हर साहित्यकार को प्राप्त नहीं होती लेकिन कबीर को ये दोनों पदवी प्राप्त हैं। कबीर ने वस्तुतः एक ऐसे युग का नेतृत्व किया है जो सर्वदा समीचीन एवं प्रासंगिक रहेगा। कबीर पर जितना कहा जाए जितना लिखा जाए कम है। अन्ततः मैं अपनी बात हजारी प्रसाद द्विवेदी की इस पंक्तियों से पूरा करूंगा, 'कबीरदास के अपने गुण ने सैकड़ों वर्ष से उन्हें साधारण जनता का नेता और साथी बना दिया है। वे केवल श्रद्धा और भक्ति के पात्र ही नहीं, प्रेम और विश्वास के आस्वाद भी बन गये हैं। सच पूछा जाए तो जनता कबीरदास पर श्रद्धा करने की अपेक्षा उनसे प्रेम अधिक करती है। इसलिए उनके सन्त-रूप के साथ ही उनका कवि-रूप बराबर चलता रहता है। वे केवल नेता और गुरु नहीं हैं, साथी और मित्र भी हैं।' सद् साहित्य किसी विरले कवि या साहित्यकार का होता है जो लोगों को शिक्षित कर उन्हें सत्य-मार्ग पर लाने की चेष्टा करता है। कबीर का काव्य (साहित्य) इस दृष्टि से पूर्ण सक्षम है और साहित्य में उनके योगदान को हमेशा याद रखा जाएगा।

जायसी (सन् 1492-1542 ई.)

जायसी सूफी प्रेममार्गी शाखा (भक्तिकाल) के सर्वश्रेष्ठ कवि माने जाते हैं और उनका पद्मावत प्रेमाख्यान परंपरा का सर्वश्रेष्ठ प्रबंधकाव्य है। पूर्व मध्यकाल के प्रेमपरक साहित्य के पुरोधा सूफी संत कवियों में मलिक मुहम्मद जायसी अपने 'पद्मावत' जैसे प्रेमपरक रचनाकार के रूप में प्रख्यात हैं। जायसी का वास्तविक नाम 'मुहम्मद' था 'मलिक' इनकी उपाधि थी। जायस में (जिला

रायबरेली, उत्तर प्रदेश) रहने के कारण लोग इन्हें जायसी कहते थे। उन्होंने इस संबंध में स्वयं कहा है -

"जायस नगर परम अस्थानू।

तहां आई कवि कीन्ह वारसान।"[27]

जायसी अत्यंत सरल और उदार सूफी महात्मा थे। भक्तिकाल की निर्गुण धारा के अंतर्गत सन्तकाव्य एवं सूफी काव्य नामक दो शाखाएँ हैं। सूफी मत के अनुयायी महाकवि मलिक मुहम्मद जायसी ऐसे कवि हुए हैं जिन्होंने इस्लाम धर्म में आस्था रखने के बाद भी पूरे मनोयोग से 'हिंदू धर्म' के देवी-देवताओं का श्रद्धापूर्वक स्मरण और उल्लेख किया है। भारतीय दर्शन और संस्कृति को अपने काव्य में चित्रित किया है। जायसी को 'इस्लाम धर्म' के साथ-साथ 'हिंदू धर्म' की भी जानकारी थी। जायसी के काव्य में दर्शन तत्व सूफी विचारधारा के अनुरूप है। हिंदी सूफी काव्य में दर्शन की इस्लामपरक मान्यताओं के अतिरिक्त हिंदू दर्शन का प्रभाव भी दिखता है। सूफीमत के लक्ष्य हैं - परमात्मा संबंधी सत्य ज्ञान, सदाचार, धर्म समन्वय, मानवता, प्रेम साधना आदि के जरिए ईश्वरीय शक्ति को पहचानना व उसमें लीन होना। सूफीमत इस्लाम धर्म का एक अंग है। इसमें इस्लाम की कट्टरता का अभाव है। इसके मूल में प्रेम तत्व है। उसमें इश्क हकीकी एवं इश्क मजाजी की भावना निहित है।

सूफी काव्य में उपलब्ध प्रेम भावना भारतीय प्रेम से कुछ अलग है। इनके यहां स्वच्छंद प्रेम है। यह मर्यादावादी दाम्पत्य प्रेम से थोड़ा-सा हटकर है। सूफियों ने लौकिक प्रेम के माध्यम से अलौकिक प्रेम को प्राप्त करने की चेष्टा की। सूफियों के अनुसार मानव, सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ प्राणी है। ये आंतरिक शुद्धि पर अधिक बल देते हैं। उनका कहना है कि धार्मिक सिद्धांतों का सत्य के साथ सामंजस्य होना चाहिए।

जायसी मलिक वंश के थे। उनके पिता का नाम मलिक राजे अशरफ माना जाता है, जो रायबरेली (उत्तर प्रदेश) के पास जायस के निवासी थे और खेती करते थे। जीविका निर्वाह के लिए जायसी का खेती करना भी प्रसिद्ध है। जायसी के सात पुत्र थे। सातों पुत्रों की मृत्यु घर की छत गिरने के कारण हुई थी। इस दुर्घटना से जायसी विचलित हो गए और उन्होंने घर छोड़कर वैराग्य ले लिया। पास के जंगल में रहने लगे, जहां बाद में उनकी मृत्यु हो जाती है। अमेठी के

पास रामनगर से लगभग 3 किलोमीटर की दूरी पर जायसी का मकबरा है। यह स्थान भी जायस के पास ही है। जायसी कुरूप व काने थे। माना जाता है कि शीतला रोग के कारण उनका शरीर विकृत हो गया था लेकिन वे संवेदनशून्य या चेतनाशून्य नहीं थे। जायसी जब शेरशाह के दरबार में गए तो शेरशाह ने उनके कुरूपता का हंसी उड़ाया। तब उन्होंने बड़ी शालीनता एवं शांत स्वर में कहा – "मोहि का हससि कि कोहरहि"[28] (मतलब, मुझ पर हंसे या मुझे बनाने वाले कुम्हार ईश्वर पर)। कहा जाता है कि शेरशाह को गलती का एहसास होता है और जायसी से वह क्षमा मांगता है।

सामाजिक रुढ़ियां

जायसी ने अपनी रचनाओं में गुरु परंपरा का उल्लेख किया है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने उनके गुरु के बारे में बताया – "ये प्रसिद्ध सूफी फकीर शेख मोहिदी (मुहीउद्दीन) के शिष्य थे।"[29] डॉ. ग्रियर्सन ने भी शेख मोहिदी को उनका दीक्षा गुरु माना है। 'पद्मावत' एवं 'अखरावट' में अपने गुरुओं का जायसी ने उल्लेख किया है।

"सैयद अशरफ पीर पियारा।
जेइ मोहि पंथ दन्हि उजियारा।।
गुरु मोहिदी सेवक मैं सेवा।
चलै उताइल जेहि कर खेवा।।

x x x

कही सरीअत चिस्ती पीरू।
उधरी असरफ और जहां गीरू।।
पा पाए एउं गुरु मोहिदी मीठा।
मिला पंथ सो दरसन दीठा।।"[30]

सैयद अशरफ, शेख मोहिदी के अलावा जायसी अपने कुछ और गुरुओं के बारे में बताते हैं, जैसे हाजी शेख, शेख मुबारक, शेख कमाल, अलहदाद सैयद अहमद, दानियाल, सैयद राजे इत्यादि। जायसी को सूफी होने के अलावा महदवी संप्रदाय में दीक्षित भी माना जाता है। जायसी कवि हैं, इस बात का उल्लेख उनके काव्य में भी हुआ है –

"मुहम्मद कवि जो प्रेम का

ना तन रकत न मांसु।

जेइं मुंख देखा तेइं हंसा

सुना तौ आए आसुं।"[31]

जायसी की पच्चीस रचनाओं का उल्लेख किया जाता है, लेकिन केवल सात रचनाएं ही उपलब्ध हैं - पद्मावत, आखिरी कलाम, अखरावट, चित्ररेखा, कहरानामा, मसलानामा और कान्हावत। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने सूर तथा तुलसी के साथ अपनी त्रिवेणी में इन्हें स्थान देकर कालजयी रचनाकार की संज्ञा दी है। जायसी की प्रसिद्धि का आधार 'पद्मावत' ग्रंथ ही है। इस ग्रंथ में पद्मिनी की प्रेम-कथा का रोचक वर्णन है। कथावस्तु दो भागों में बंटा हुआ है - पूर्वार्द्ध में रत्नसेन और पद्मावती के विवाह तक की कथा है, जबकि उत्तरार्द्ध में अलाउद्दीन की चित्तौड़ पर चढ़ाई की कथा है।

'अखरावट' में एक-एक अक्षर के आधार पर रचनाएं की गई हैं। इस पुस्तक में ईश्वर, जीव, ईश्वर प्रेम आदि के संबंध में विचार प्रकट किए गए हैं। 'आखिरी कलाम' में कयामत का वर्णन है। 'चित्ररेखा' का आधार अवध-भोजपुर जनपद में प्रचलित लोक-कथा है। इसमें भी जायसी की लगभग सभी विशेषताएं आ गई हैं। चित्ररेखा कृति से पाठक वर्ग का एक बड़ा भाग अपरिचित है। 'चित्ररेखा' पद्मावत से कुछ हद तक अलग है। यह एक ऐसी कथा-रचना है, जिसमें आध्यात्मिक संकेत बीच-बीच में मिलते हैं। बेमेल-विवाह, आयु वृद्धि का वरदान, बिछड़ गए प्रेमियों का मिलन आदि का प्रसंग है। 'कहारनामा' का मूल स्रोत उत्तर प्रदेश की लोक-संस्कृति कहरवा या कहार जाति से निःसृत है। इसमें भौतिक संसार से डोली जाने का मर्मस्पर्शी प्रसंग है। बिटिया को विवाहोपरांत अपने घर जाना है। आत्मा का अंतिम गंतव्य 'यह संसार' न होकर 'वह लोक' है, अध्यात्म का, परम सत्ता का लोक। स्वाभाविक है कि जायसी के काव्य में लौकिक और अलौकिक तत्वों का समावेश हुआ है।

चेतनशील पक्ष

मलिक मुहम्मद जायसी मध्यकालीन भारत के ऐसे समय में थे, जिसे हिंदी साहित्य में 'भक्तिकाल' कहा जाता है। वह ऐसा युग था जब भारत विशेषकर उत्तर भारत में धार्मिक अथवा साम्प्रदायिक संघर्ष उजागर हो रहे थे। ऐसे में

जायसी और उनके समकालीन कवियों ने सद्‌भाव और एकता की भावना को स्वर दिया, जो सराहनीय है। यह भी उल्लेखनीय है कि जायसी उसी प्रेममार्गी काव्यधारा के कवि हैं, जिसके सभी रचनाकार उदारवादी मुसलमान हैं। इन सभी ने अपनी रचनाओं के कथानक भारत के हिंदू परिवारों में प्रचलित लोक कथाओं से लिया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि इन कवियों ने सामाजिक समन्वय पर अत्यधिक बल दिया। इस संदर्भ में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी कहा है – "इन्होंने मुसलमान होकर हिंदुओं की कहानियों को ही बोली में पूरी सहृदयता से कहकर अपने जीवन की मर्मस्पर्शी अवस्थाओं के साथ अपने उदार हृदय का पूर्ण सामंजस्य दिखा दिया।"[32]

जायसी ने तत्कालीन नाथ संप्रदाय के द्वारा निरूपित योग में अपने इस्लाम की कथा का भी उल्लेख किया है। समाज के प्रति कर्तव्य–पालन के साथ–साथ जायसी मानव–धर्म के सच्चे अनुयायी थे। अपनी उदारता, मनुष्य के प्रति सहानुभूति और प्रेम की उदात्त भावना के लिए वे प्रसिद्ध रहे हैं। जायसी का समस्त साहित्य अपने युग के सांस्कृतिक समन्वय का आख्यान है। वे एक चिंतनशील विचारक के रूप में दिखते हैं। प्रेम उनके जीवन तथा काव्य का प्राणतत्व है। उनकी हर कृति में यह प्रेम तत्व अनिर्वचनीय रूप में विद्यमान है। उनका मानना था कि मानव प्रेम ही ईश्वरीय प्रेम है। जायसी की कृति 'पद्‌मावत' एक प्रेमकाव्य है। प्रेम की महत्ता को इस कृति में स्वीकार किया गया है–

"तीन लोक चौदह खंड

सबै परै मोहिं सूझि।

प्रेम छांड़ि नहिं लोन किछु

जो देखा मन बूझि।।"[33]

जायसी ने प्रेम को सभी धर्मों से सर्वोपरि माना है। उन्हें हिंदू व मुसलमान सभी जनों का समान आदर और प्रेम मिला। जायसी जहां एक ओर काव्य, संस्कृति, कला और भारतीय संत–परंपरा के प्रसिद्ध कवि हैं, वहीं दूसरी तरफ उन्होंने दो भिन्न संस्कृतियों और धार्मिक परंपराओं को पूर्ण आस्था और विश्वास के साथ अपनाते हुए एक समन्वयकारी कवि होने का भी परिचय दिया है। जायसी के इसी व्यक्तित्व की सराहना डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल ने भी किया है' – "पद्‌मावत काव्य का अनुशीलन करते हुए जिस बात की गहरी छाप मन

पर पड़ती है, वह यह कि इससे कवि ने भारत भूमि की मिट्टी के साथ अपने को कितना मिला दिया था। जायसी सच्चे पृथ्वी-पुत्र थे। वे भारतीय जन-मानस के कितने सन्निकट थे, इसकी पूरी कल्पना करना कठिन है। गांव में रहने वाली जनता का जो मानसिक धरातल है, उसके ज्ञान की जो उपकरण सामग्री है, उसके परिचय का जो क्षितिज है, उसकी सीमा के भीतर हर्षित स्वर में कवि ने मान का स्वर ऊंचा किया है। जनता की उक्तियां, भावनाएं और मान्यताएं मानो स्वयं छंद में बंधकर उनके काव्य में गुंथ गई।"[34] जायसी की सबसे बड़ी खूबी यह है कि उन्होंने प्रत्येक धर्म, संप्रदाय, पंथ के फकीरों और पंडितों के साथ सत्संग किया। जायसी की काव्य कृतियों में हिंदू-मुस्लिम संस्कृति और विचारधारा को परस्पर समन्वित रूप देकर दोनों में एकता और सामाजिक सौहार्द की एक बेमिसाल प्रयास हैं। उनकी कृति में कहीं भी ऐसा नहीं लगता कि धार्मिक कट्टरता है, बल्कि सर्वत्र वे सहिष्णुता और समन्वय की भावना को लेकर चलते दिख रहे हैं।

जायसी का चिंतन क्षेत्र निश्चय ही अत्यंत व्यापक और उदार रहा है। उन्होंने अपने महाकाव्य 'पद्मावत' में चारों वेदों का उल्लेख करते हुए उनकी महत्ता को रूपायित किया है।

जायसी भले ही सूफी मत के अनुयायी थे, लेकिन भारतीय दर्शन और हिंदू धर्म के प्रति उनका उदार दृष्टिकोण उनकी कृतियों में रेखांकित होता है।

राजनीतिक सत्ता के प्रति रूख

रचना एवं रचनाकार काल-परिवेश तथा सामयिक राजनीतिक, धार्मिक और प्रशासनिक बंधनों से मुक्त न रहा है न ही रह सकता है। यह सिद्धांत शाश्वत रहा है। जायसी इस निषक पर खरे उतरते हैं। अपने अन्य समकालीनों की तरह रचनाकार जायसी भी समय की उपज कहे जा सकते हैं। जायसी भारतीय राजनीति और संस्कृति में अनेक उतार-चढ़ाव के साक्षी रहे हैं। जायसी ने बाबर के समय से पहले पद्मावत कृति की शुरुआत कर शेरशाह सूरी के शासनकाल में इसको पूरा किया था। जायसी ने मसनवी शैली की रूढ़ि का पालन करते हुए अपनी रचना प्रेमाख्यान 'पद्मावत' में बादशाह बाबर की और 'आखिरी कलाम' में शासक शेरशाह सूरी की प्रशंसा की है। इससे स्पष्ट होता है कि जायसी की रचनात्मकता मुगलकाल के प्रारंभिक दशकों के दौरान सामने आई। बीच में शेरशाह सूरी अफगान शासक हुए जिन्होंने हुमायूं को अपदस्थ कर कुछ समय

के लिए शासन किया था। जनकल्याणकारी कार्यों के लिए उन्हें याद किया जाता है। इस समय कई संघर्ष दिखाई पड़ते हैं। यह भारतीय इतिहास की सोलहवीं शती थी। राजनीतिक दृष्टि से मुहम्मद गोरी के दिल्ली सुल्तानों की तीन शताब्दियों के बाद शेरशाह सूरी अंतिम अफगान सुल्तान था। भारतीय धर्म और भारत के लिए अपेक्षाकृत नए धर्म के बीच सामाजिक और राजनीतिक संघर्षों के कारण तरह-तरह की दृष्टियां टकरा रही थी। इसी बीच भक्ति एक आंदोलन का रूप धारण कर रही थी। धार्मिक दृष्टि से इस समय नाथ संप्रदाय का था। बारहवीं शताब्दी के अंत में सूफी संतों का आगमन भारत में होने लगा था। सूफी दरवेश नाथपंथियों के सम्पर्क में आए। सूफी साधना और साहित्य पर इनका विशेष प्रभाव पड़ा।

जायसी के समय तक आते-आते यह हुआ कि धार्मिक विचारों का अंतर साहित्यक क्षेत्र में मिट-सा गया। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इस अंतर को व्याख्यायित करते हुए इस प्रकार लिखा है - "कुतुबन, जायसी आदि इन प्रेम कहानी के कवियों ने प्रेम का शुद्ध मार्ग दिखाते हुए उन सामान्म जीवन दशाओं को सामने रखा जिनका मनुष्य मात्र के हृदय पर एक-सा प्रभाव दिखाई पड़ता है। हिंदू हृदय और मुसलमान हृदय आमने-सामने करके अजनबीपन मिटाने वालों में इन्हीं का नाम लेना पड़ेगा।"[35] प्रत्यक्ष जीवन की एकता का दृश्य सामने रखने की आवश्यकता बनी थी, यह जायसी ने पूरी की। वैसे तो हिंदी के सभी सूफी कवियों ने अपने साहित्य के द्वारा इसी संवेदना का विस्तार किया है, लेकिन जायसी का स्थान उनमें सर्वोपरि है।

आलोचनात्मक मूल्यांकन

प्रेम तत्वदर्शी जायसी अपने प्रेम चित्रण में अत्यधिक सफल रहे हैं। ऐसा संयोग-वियोग श्रृंगार, अद्‌भुत नख-शिख वर्णन, षड्ऋतु और बारहमासा वर्णन, कथानक का सूफी संयोजन, भाषा लालित्य अन्यत्र दुर्लभ है। 'पद्मावत' हिंदी साहित्य जगत की उत्कृष्ट रचना है। इस कृति ने जायसी को महाकवि के कोटि में लाकर खड़ा कर दिया है। कल्पना और यथार्थ का अद्‌भुत संयोजन करके कवि ने कृति को अमर बना दिया और स्वयं भी अमर हो गया। अपने युग के अन्म प्रमुख कवियों में जायसी की यह रचना-दृष्टि धर्म और मूल्य की अवधारा के संबंध में विशिष्ट है और अधिक रचनात्मक भी। जायसी ने अपनी ओर से किसी मूल्य की भूमिका प्रस्तुत नहीं की, न ही नैतिक आदर्शों की अभिव्यक्ति

की है। जीवन के अनुभवों को मार्मिक रूप से अभिव्यक्त किया है। प्रेम उनकी कृति एवं जीवन का प्राण तत्व है। उनके अनुसार जीवन की सार्थकता का सार मनुष्य मात्र के प्रति प्रेम तथा सद्‌भावना में निहित है।

अपने युग और परिवेश के सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक जीवन को जायसी ने अपने साहित्य में उच्चस्तरीय मूल्यबोध के रूप में अभिव्यक्त किया है। अपने समय की सांस्कृतिक टकराहट के बावजूद उन्होंने मानवीयता को अपनी रचना का आधार बनाया। प्रेम को मानवता का सच्चा धर्म बताया और मुसलमान के साथ-साथ हिंदूओं के दिलों में भी अपनी जगह बनाई। लोक प्रचलित कथानकों का आश्रम ले अपनी बात जनता तक पहुंचाई। उनकी रचनाओं को पढ़कर ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने भारतीय संस्कृति जैसे तीज-त्योहारों को भी आत्मसात् कर किया था।

जायसी की भाषा ठेठ ग्रामीण अवधि है। उनमें पंडिताउपन नहीं है। उनकी रचनाओं को पढ़कर ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने न केवल भारतीय भाषा एवं छंदों को अपनाया बल्कि भारतीय संस्कृति को भी अपनाया। उनके सबसे लोकप्रिय प्रेमाख्यान 'पद्मावत' के नायक-नायिका मुसलमान न होकर हिंदू घराने के राजकुमार तथा राजकुमारी हैं। जहां एक ओर उन्होंने इनके प्रेम को इहलौकिकता से पारलौकिकता, व्यक्तिकता से समष्टिगत की पराकाष्ठा तक पहुंचाया वहीं दूसरी ओर वे लोक जीवन के विभिन्न व्यवहारों को भी शामिल किया है। हिंदी भाषा के प्रबंध काव्यों में जायसी का 'पद्मावत' शब्द और अर्थ दोनों दृष्टियों से अनूठा काव्य है। भाषा की विलक्षण शक्ति, जीवन के गंभीर एवं सशक्त दार्शानिक चिंतन इस काव्य की विशेषता है। जायसी आज भी बेहद प्रासंगिक हैं। जायसी के विषय में विजयदेव नारायण शाही का एक मत उल्लेख करना चाहूंगा, "जायसी ने लिखा चाहे सोलहवीं शताब्दी में हो, लेकिन उन्हें वस्तुत: आविष्कृत इस बीसवीं शताब्दी में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने किया। इस अर्थ में भी वे बीसवीं शताब्दी के ही कवि हैं, लेकिन उनकी सृजनशीलता एक गहरे अर्थ में आधुनिक हैं।"[36] जायसी महाकवि थे, सूफी भक्त भी लेकिन उनकी रचनाओं में सूफी एवं भारतीय संस्कृति के सामंजस्य की प्रवृत्ति मिलती है।

रसखान (सन् 1533-1628 ई.)

सैयद इब्राहिम रसखान जिन्हें गुलाम मुहम्मद रसखान के नाम से भी जाना जाता है। रसखान का जन्म संभवत: 1533 ई. को उत्तर प्रदेश के जिला हरदोई

के गांव पिहानी में हुआ था। लेकिन कुछ विद्वान इनका जन्म सन् 1558 ई. को भी मानते हैं। वास्तव में रसखान की जन्मतिथि और जीवन-वृत्त संदेहास्पद है। बावजूद इसके उनके अस्तित्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने रसखान के संबंध में लिखा है, ''दिल्ली के एक पठान सरदार थे। इन्होंने 'प्रेमवाटिका' में अपने को शाही वंश का कहा है। संभव है पठान बादशाहों की कुल परंपरा से इनका संबंध रहा हो। ये बड़े भारी कृष्ण भक्त और गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के बड़े कृपापात्र शिष्य थे। इनका रचनाकाल सं. 1640 के उपरांत ही माना जा सकता है क्योंकि गोसाईं विट्ठनाथ जी का गोलोकवास सं. 1643 में हुआ था। 'प्रेमवाटिका' का रचनाकाल सं. 1671 है।''[37]

सामाजिक रुढ़ियां

रसखान मुसलमान थे। मध्यकालीन हिंदी काव्य रचनाकारों में रसखान का विशिष्ट स्थान है। हिंदी कृष्ण काव्यधारा में उनका योगदान महत्वपूर्ण है। मुस्लिम कवि और अपने सांस्कृतिक परिवेश से भिन्न होते हुए भी हिंदी साहित्य की अद्वितीय सेवा करके इन्होंने इसके गौरव को बढ़ाया है। हिंदी साहित्य के उत्थान में जिस प्रकार सूरदास, तुलसीदास, बिहारी, निराला इत्यादि अनेक हिंदू कवियों का योगदान है उसी प्रकार कबीर, जायसी, रहीम, रसखान आदि मुसलमान कवियों का भी योगदान है। तत्कालीन समय में सभी धर्मों की अपनी-अपनी महती भूमिका थी, जिसमें मुसलमान कवियों ने भी भारत की भावनात्मक एकता को बनाए रखने में पूरे मन से सहयोग दिया है।

रसखान ने हिंदी में काव्य रस की जो धारा प्रवाहित की वह काव्यत्व की दृष्टि से इतनी महत्वपूर्ण है कि भारतेन्दु को कहना पड़ा कि ''इन मुसलमान हरिजनन पर कोटिक हिंदू वारियै।'' रसखान फारसी, हिंदी और संस्कृत के ज्ञाता थे। 'दो सौ बावन वैष्णवन' की वार्ता में लिखा है कि ''युवावस्था में रसखान एक बनिए के लड़के पर आसक्त थे। वे हमेशा उसी लड़के के साथ घूमा करते थे। एक पल के लिए भी उसका साथ नहीं छोड़ते थे, यहां तक कि उसका जूठन भी खाया करते थे। इससे जाति बिरादरी में इनकी बड़ी हंसी उड़ती थी पर ये उसकी लेश मात्र भी परवाह नहीं करते थे। एक बार चार वैष्णवों ने आपस में बातचीत करते-करते कहा कि ईश्वर में ऐसा ध्यान लगावै जैसा रसखान ने साहूकार के लड़के में लगाया है। रसखान ने इसे सुन लिया और वे तत्काल वैष्णवों से मिले। वैष्णवों ने इनके सामने कृष्ण की महिमा और लीलाओं का

वर्णन किया तथा श्रीनाथ जी का चित्र दिखाया तभी से इनका चित्त लड़के की ओर से उलट कर विष्णु भगवान में जा लगा।''[38]

कहा जाता है कि उनके जीवन का प्रारंभिक भाग भौतिक प्रेममय था। उनकी प्रेमाशक्ति के विषय में दो कथाएं प्रसिद्ध हैं। एक तो बनिए के लड़के से प्रेम की कथा और दूसरे एक मानवती स्त्री से प्रेम संबंध की कथा। जनश्रुति है कि रसखान के हृदय में भगवद्-विषयक रति का आविर्भाव 'भागवत' के फारसी अनुवाद को पढ़ने से हुआ। अपनी भक्ति और निष्ठा के कारण ये गोसाईं जी के प्रधान शिष्यों में हो गए। रसखान प्रेम की महिमा को भलि-भांति समझते थे। इनकी कविता में प्रेम की प्रधानता है। भक्त और प्रेमी होकर इन्होंने शृंगार रस में बड़ी ललित कविता की है। उनके कवित्त सवैयों को सुनकर प्रेमीजन रसमग्न हो जाया करते थे। कहा जाता है कि रसखान के कवित्त सवैयों का प्रचलन उनके समय में ही होने लगा था। रसखान के कवित्त सवैये अपनी सरसता के कारण इतने प्रसिद्ध हुए कि उनका नाम रसखानि पड़ गया। रसखान का अर्थ है रसों का खान। रसखान की रचनाओं को सर्वप्रथम प्रकाशित करने का प्रयास गोस्वामी किशोरीलाल ने किया। उन्होंने रसखान के कवित्त सवैयों का संग्रह करके 'रसखान शतक' नाम से खड़्ग विलास प्रेस बालीपुर से प्रकाशित कराया। फिर इस संग्रह के पदों की संख्या में वृद्धि करके उन्होंने 'सुजान रसखान' के नाम से भारत जीवन प्रेस काशी से सन् 1919 में छपवाया और उसमें कुल कवित्त, सवैये, दोहे एवं सोरठे मिलाकर 133 छंदों को संग्रहीत किया। गोस्वामी जी ने इससे पहले सन् 1907 ई. में वहीं के 'हित-चिंतक' यंत्रालय से 'प्रेमवाटिका' का भी प्रकाशन कराया था।''[39] गोस्वामी किशोरीलाल ने कानपुर के पंडित प्रतापनारायण मिश्रा से भी 105 छंदों को संपादित कराकर प्रकाशित कराया। गोस्वामी किशोरीलाल का संग्रह हिंदी जगत में प्रथम होने के कारण बहुत महत्वपूर्ण है। 'रसखान पदावली' नामक एक संग्रह सं. 1986 में हिंदी प्रेस, प्रयाग से प्रभुदत्त ब्रह्मचारी ने प्रकाशित कराया। इन संग्रह में 'प्रेमवाटिका' भी शामिल है।

राजनीतिक सत्ता के प्रति रूख

रसखान मुगल बादशाह अकबर के समकालीन थे। वे अपने को पठान सरदार के वंश से जोड़ते हैं। उनकी प्रसिद्ध रचना 'प्रेमवाटिका' में इस बात का उल्लेख मिलता है, लेकिन रसखान मूलतः प्रेम के कवि हैं। राजसत्ता का इनके जीवन

से कोई सरोकार नहीं है। उन्होंने प्रेम का स्पष्ट रूप से चित्रण किया है। उनकी प्रेममयी तन्मयता उच्चकोटि का है। उन्होंने प्रेम को ही अपने जीवन का सार माना है। इसी कारण उन्होंने किसी प्रकार के बंधन को स्वीकार नहीं किया। उनके काव्य में सांस्कृतिक ताना-बाना अपनी मौलिकता में संपूर्णता से नज़र आता है। उनकी प्रेम की उपासना का यही सामाजिक निहितार्थ है। प्रेम की परिभाषा, पहचान, प्रेम का प्रभाव, प्रेम प्राप्ति के साधन एवं प्रेम की पराकाष्ठा प्रेम वाटिका में दिखाई पड़ती है। रसखान द्वारा प्रतिपादित प्रेम लौकिक प्रेम से बहुत ऊपर की चीज है-

''प्रेम प्रेम सब कोउ कहत, प्रेम न जानत कोय।
जो जन जानै प्रेम तो मरै जगत क्यों रोय।''[40]

रसखान के यहां भक्ति की विभिन्न प्रवृत्तियां दृष्टिगोचर होती हैं। इनके यहां भक्ति परम प्रेमरूपा को प्राप्त करने के लिए ग्यारह आसक्तियां बताई गई हैं। वे आसक्तियां हैं- गुणमाहात्मकयासक्ति, रूपासक्ति, पूजासक्ति, स्मरणसक्ति, दास्याहसक्ति, कान्तोसक्ति, वात्सहल्यायसक्ति, आत्म निवेदनासक्ति, तन्मयतासक्ति, परमविरहासक्ति। रसखान ने भ्रमरगीत-संबंधी लगभग आठ पद लिखे हैं। रसखान ने कृष्ण के साथ-साथ अन्य देवताओं की चर्चा भी की है। शिव की स्तुति में भी एक पद लिखा है। शिव की सहज, कृपालुता की ओर संकेत करते हुए कहते हैं कि उनकी कृपा दृष्टि संपूर्ण दु:खों का नाश करने वाली है-

''यह देखि घतूरे के पात चबात और गात सों धूलि लगावत हैं।
चहुं ओर जटा अंटकै लटकै फनि सों कफनी पहरावत हैं।
रसखानि जेई चितवैं चित दै तिनके दुखदुंद भजावत हैं
गजखाल कपाल की माल विशाल सो गाल बजावत आवत हैं।।''[41]

चेतनशील पक्ष

समन्वयवादी दृष्टि से हरि और हर को एक कोटि का समझा कर रसखान ने समान आदर प्रदान किया है। रसखान के भक्ति में कभी भी मजहब, संप्रदाय बाधा नहीं बने। रसखान स्वच्छंद कवि थे। उनकी अनुरक्ति केवल कृष्ण के प्रति ही नहीं बल्कि कृष्णभूमि के प्रति भी थी। इन्होंने अपने काव्य में कृष्ण की रूप-माधुरी, ब्रज-महिमा, राधा-कृष्ण की प्रेम लीलाओं का मनोहारी चित्रण

किया है। राधा-कृष्ण के प्रति उनका अनन्य प्रेम था। वे प्रकृति में भी अपने प्रभु के दर्शन करते थे। रसखान को कृष्ण के मानवीय स्वरूप ने अधिक आकर्षित किया लेकिन वे उनके ब्रह्मत्व को न भूला सके। रसखान ने कृष्ण के बाल-लीला, गोचरण लीला, चीरहरण लीला, कुंजलीला, रासलीला, पनघट लीला, दानलीला का चित्रण किया है। कृष्ण के बाल लीला संबंधी उन्होंने कुछ ही पदों की रचना की, वह भी पद भक्तजनों के कंठहार बने हुए हैं। वे प्राय: गाया करते हैं-

''काग के भाग बड़े सजनी हरि हाथ सौ लै गयो माखन रोटी।''[42]

रसखान के बाललीला संबंधी पद बहुत ही सुंदर हैं। उन्होंने गौचारण लीला को बहुत सुंदर ढंग से रेखांकित किया है-

''गाइ दुहाई न या पै कहूं, न कहूं यह मेरी गरी निकरयौ है।
धीर समीर कलिंदी के तीर खरयो रहै आजु की डीठि परयौ है।
जा रसखानि विलोकत ही सहसा ढरि रांग सो आंग ढरयो है।
गाइन घेरत हेरत सो पट फेरत टेरत आनि अरयो है।''[43]

चीरहरण लीला के अध्यात्म-पक्ष में आत्मा का नग्न होकर माया के आवरणों व सांसारिक संस्कारों से पृथक होकर प्रभु से मिलना है। जिसमें अपना कुछ नहीं रहता, सबकुछ प्रभु का हो जाता है।

कृष्णभक्ति शाखा में भगवान कृष्ण के सौन्दर्य-पक्ष की ही प्रधानता रही है। कृष्ण का चरित्र विलक्षण है। उनका ध्यान कृष्ण के मधुर रूप और लीला माधुरी पर ही केन्द्रित रहा। मुख्य विषय गोपी-कृष्ण का प्रेम है। रसखान ने नख-शिख निरूपण की परिपाटी को लेकर नायिका चित्रण नहीं किया। गोपियों के आंतरिक भावों की अभिव्यक्ति की ओर वे अधिक आकर्षित हुए हैं। कृष्ण के रूप को देखकर गोपियों की क्या दशा होती है, उसका सफल अभिव्यंजना रसखान ने की है-

''लोक की लाज तज्यौं तबहीं
जब देख्यौ सखी ब्रजचंद सलोनो।
खंजन मीन सरोजन की छवि
गंजन नैन लला दिन होनो।।

रसखान निहारि सकें जु सम्हारि
कै लो तिय है वह रूप सुठोनो।
भौंह कमान सों (जोहान) को सब
बेधन प्रानिन नंद को छौनों॥''[44]

डॉ. माजदा अरुद के शब्दों में, ''पुरुष सौंदर्य चित्रण की यह परंपरा रसखान की हिंदी-साहित्य को अवेक्षणीय देन है।''[45]

आलोचनात्मक मूल्यांकन

रसखान पर इस्लाम का प्रभाव बहुत था। सूफी प्रेम-पद्धति का प्रभाव भी स्पष्ट रूप से मिलता है। लेकिन वे किसी मतवाद में नहीं फंसे। जो अच्छा लगा, उन्होंने बिना लाग-लपेट के कह दिया। उनकी कविता में भारतीय भक्ति-पद्धति और सूफी इश्क-हकीकी का सम्मिश्रण मिलता है। उनकी भक्ति का ढांचा भारतीय है लेकिन आत्मा इस्लामी एवं तसव्वुफ से रंजित है।

रसखान की भाषा सरल ब्रज भाषा है। उनकी भाषा में सामान्य काव्यभाषा का जो स्वरूप रखा गया है उसमें विदेशी भाषाओं से लेकर हिंदी के भिन्न-भिन्न देशी भाषाओं और बोलियों तक के शब्दों को ग्रहण किया है।

रसखान की भाषा प्रवाहपूर्ण है और उन्होंने शब्द-योजना इतनी कुशलता से की है कि भाषा में स्वाभाविक ही प्रवाह आ गया है। साथ ही सवैये की भाषा में संगीत का तारतम्य भी पाया जाता है।

रसखान ने रासलीला का वर्णन कई पदों में किया है। इनका रास वर्णन परंपरागत रास वर्णन से भिन्न है। रसखान ने रास को वह महत्व नहीं दिया जिसकी प्रतिष्ठा वैष्णव कवियों ने की। राधा कृष्ण की पूरक शक्ति मानी गई है और रास में सर्वदा कृष्ण के साथ रहती है, लेकिन रसखान ने राधा का चित्रण इस रूप में नहीं किया, न उनके रास वर्णन में मुरली को वही प्रतिष्ठा प्राप्त है जो सूरदास आदि के इस निरुपण में है।

रसखान ने 'प्रेमवाटिका' में प्रेम की जो विशेषताएं बताई हैं वे लौकिक प्रेम और पारलौकिक प्रेम पर समान रूप से लागू होती हैं। रसखान की रचनाओं का यदि अनुशीलन करे तो यह निष्कर्ष निकलता है कि वे अधिकांश में भक्तिपरक न होकर श्रृंगारपरक हैं। जनता का संवेदन जनता की भाषा में लिखने वाले रसखान

प्रेम और भक्ति को समर्पित सरस गायक के रूप में प्रसिद्ध हैं। रसखान हिंदू-मुस्लिम ऐक्स के साक्षात् प्रतीक हैं। इस्लाम धर्मावलंबी होने के बावजूद वह सतत कृष्ण की रट ही निकालते रहते हैं। साथ ही वह पांचों वक्त की नमाज भी पढ़ते थे। एक आस्थावान मुस्लिम की तमाम जिंदगी जीते हुए भी कृष्ण के प्रति अप्रतिम भक्ति, श्रद्धा, सहज आसक्ति, आत्मीयता और उत्सर्ग की जो भावना रसखान में है वह सबमें नहीं दिखता। आज भी कृष्णभक्त कवि उनके द्वारा रचित काव्य मुक्त कंठ से गाते हैं।

रहीम (सन् 1556-1627 ई.)

अकबरी दरबार के हिंदी कवि रहीम हिंदी साहित्य के इतिहास के भक्तिकाल में आते हैं। रहीम युग में यद्यपि भक्ति-आंदोलन अपनी चरम सीमा पर था लेकिन साथ ही यह युग रीतिकाल की संधि का युग भी था। रहीम का साहित्य धर्म, राजशाही व उच्च वर्ग के समाज से अलग हटकर आम जन का केन्द्र बिंदु है। मुगल शासन के दौर में उन्होंने कृष्ण को आराध्य माना और नीतिपरक दोहों की रचना कर हिंदू-मुस्लिम एकता की मिशाल कायम की। रहीम का व्यक्तित्व बहुमुखी प्रतिभा संपन्न तथा प्रभावशाली था। वह मुसलमान होकर भी कृष्ण भक्त थे। अपने में इस्लाम का संस्कार होते हुए भी उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से हिंदू धर्म, संस्कृति, दर्शन, समाज, और देवी - देवताओं का भरपूर सम्मान और श्रद्धा के साथ चित्रण किया है।

सामाजिक रुढ़ियां

मध्ययुगीन प्रतिनिधि हिंदी कवियों में अब्दुर्रहीम खानखाना रहीम के नाम से प्रसिद्ध हैं। रहीम का नाम अब्दुर्रहीम है। 'खानखाना' उनकी उपाधि है। मुगल बादशाह हुमायूं अपने 13 वर्षीय पुत्र अकबर को जिनके संरक्षण में छोड़ मृत्यु के आगोश में चले गए थे और जिन्होंने अकबर की छोटी-सी उम्र में ताजपोशी कर मुगल साम्राज्य के विस्तार की नींव रखी उसी बैरम खां के यहां अब्दुर्रहीम का जन्म 17 सितम्बर सन् 1556 को लाहौर में हुआ।

रहीम की माता सुल्ताना बेगम हुमायूं की पत्नी की छोटी बहन और मेवाती मुस्लिम राजपूत जमाल खां की पुत्री थी। रहीम की उम्र जब चार वर्ष की थी तो उनके पिता बैरम खां की हत्या कर दी गई। उसके बाद सम्राट अकबर ने रहीम की परवरिश अपने धर्मपुत्र की तरह किया। उन्हें राजकुमारों को दी जाने

वाली उपाधि-मिर्जा खां से सम्मानित किया। रहीम ने मुल्ला अमीन की देख-रेख में अरबी, फारसी, तुर्की, छंद रचना, गणित, तर्कशास्त्र और व्याकरण का ज्ञान प्राप्त किया था। रहीम बचपन से ही होनहार थे। वीरता, दानशीलता, दूरदर्शिता, साहित्यक अभिरुचि तथा सक्षम प्रशासक के गुण उन्हें आनुवंशिक रूप में सहज ही प्राप्त थे। पिता शिया और माता सुन्नी होने से मजहबी कट्टरता भी उन पर प्रभाव नहीं डाल सकी।

अकबर के प्रिय व नवरत्नों में से एक अब्दुर्रहीम खानखाना भिन्न-भिन्न भाषाओं के ज्ञाता थे। उन्होंने फारसी में अनेक कविताएँ लिखीं। वे अरबी, फारसी और संस्कृत के बहुत बड़े विद्वान थे। हिंदी के विख्यात कवि के रूप में ये अकबर के दरबार की शोभा थे। अकबरी दरबार के प्रमुख कवि गंग के साथ रहीम के संबंध दोस्ताना थे। रहीम ने ग्यारह वर्ष की आयु में ही रचना आंरभ कर दी थी।

राजनीतिक सत्ता के प्रति रूख

अकबर रहीम से बहुत प्रभावित थे और उनको अधिकांश समय अपने साथ रखते थे। रहीम को ऐसे उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य सौंपे जाते थे जो किसी नए सीखने वाले को नहीं दिए जा सकते थे। उम्मीद के अनुसार उन कामों में रहीम सफल भी होते थे। अकबर ने अपने 'नवरत्नों' में स्थान देकर उन्हें सम्मानित किया था। जब रहीम सत्रह वर्ष की आयु के थे तब वे सन् 1573 ईसवीं में अकबर के साथ 'गुजरात के बागियों' से लोहा लेने वाली मुगल फौज के 'मध्यभाग' की कमान संभाल कर विजय पाई थी। इस विजय से प्रभावित होकर अकबर ने रहीम को गुजरात प्रांत की 'सूबेदारी' सौंप दी थी। अकबर के विश्वासपात्र योद्धा के रूप में अब्दुर्रहीम खानखाना ने 'हल्दीघाटी' की ऐतिहासिक लड़ाई में भी अत्यंत महत्वपूर्ण दायित्व निभाया और विजय प्राप्त होने के बाद वह दो वर्ष वहीं रहे थे। रहीम की वफादारी के साथ-साथ अकबर को उनकी प्रतिभा और बुद्धिमत्ता को लेकर भी अटूट विश्वास था। इसका उदाहरण इतिहास में आज भी दर्ज है। अकबर के दरबार में एक पद 'मीर अर्ज' का होता था, जिसे पाकर कोई भी व्यक्ति लोकप्रिय होने के साथ-साथ रातोरात धनी हो जाता था, क्योंकि 'मीर अर्ज' के पद पर रहने वाले व्यक्ति के माध्यम से ही जनता की फरियाद सम्राट तक पहुँचती थी और सम्राट द्वारा लिए फैसले भी इस पद पर आसीन व्यक्ति के द्वारा ही जनता तक पहुँचते थे। इस अत्यंत महत्वपूर्ण पद पर सम्राट हर दो

या तीन दिनों में परिवर्तन करके नए-नए व्यक्तियों को नियुक्त किया करते थे, क्योंकि 'मीर अर्ज' के पद पर बैठा व्यक्ति जनता से धोखाधड़ी या दगाबाजी न कर सके। रहीम एकमात्र ऐसे व्यक्ति रहे हैं, जिनको अकबर ने इस पद पर स्थाई रूप से नियुक्त कर दिया था। इससे पूरा दरबार सन्न रह गया।

अकबर और बाद में जहांगीर के शासन में रहीम ने अनेक युद्धों का नेतृत्व किया था। पत्नी का असामयिक निधन, पुत्रों की असामयिक मृत्यु या हत्या, बेटियों का युवावस्था का वैधव्य एक व्यक्ति को पूरी तरफ प्रभावित कर सकता है, लेकिन ऐसी विपरीत परिस्थितियों में भी रहीम ने धैर्य बनाए रखा।

चेतनशील पक्ष

रहीम भक्त कवि थे। इन्होंने अपनी सभी प्रकार के छंदों से भक्ति भावना का समुचित परिचय दिया है। राम, कृष्ण, शिव आदि देवों की भक्ति तो रहीम के काव्य में है, सूर्य, गणेश, सरस्वती आदि की वंदना भी रहीम ने की है। रहीम के सृजनात्मक व्यक्तित्व ने हिंदी साहित्य जगत में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उन्होंने अनेक प्रसिद्ध रचनाओं का सृजन किया है। इनकी रचनाओं में- 'रहीम दोहावली' या 'सतसई', 'बरवै नायिका भेद', 'श्रृंगार', 'सोरठा', 'मदनाष्टक', 'रास-पंचाध्यायी', 'नगर शोभा', 'फुटकर बरवै', 'फुटकर छंद तथा पद', 'फुटकर कवित्त', 'सवैये', 'संस्कृत काव्य' आदि प्रसिद्ध हैं। उनके दोहों में भक्ति, नीति, प्रेम, लोक व्यवहार आदि का बड़ा सजीव चित्रण हुआ है। इनके तीन ग्रंथ बहुत प्रसिद्ध हैं- 'दोहावली', 'बरवै नायिका भेद' और 'नगर शोभा'। 'दोहावली' की कुछ पंक्तियां द्रष्टव्य है-

''तरुवर फल नहिं खात हैं,

सरवर पियहिं न पान।

कहि रहीम पर काज हित,

संपत्ति रांचहि सुजान''[46]

'नगर शोभा' से कुछ पंक्तियां-

''आदि रूप की परम दुति,

घट-घट रहा समाए।

लघु मति से मो मन रसन,

अस्तुति कहि न जाइ।''[47]

इनका संस्कृत, फारसी और हिंदी मिश्रित भाषा में 'खेट कौतुकग जातक' नामक एक ज्योषित ग्रंथ भी मिलता है। उन्होंने 'वाके आत बाबरी' नाम से बाबर द्वारा लिखित आत्मचरित का तुर्की से फारसी में भी अनुवाद किया था।

रहीम के व्यक्तित्व में हिंदू-मुस्लिम एकता एवं सम्मान का जो स्वरूप उभरा, उसके संबंध में राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर का कथन है, ''अकबर ने दीन-ए-इलाही में हिंदुत्व को जो स्थान दिया होगा, रहीम ने कविताओं में उसे, उससे भी बड़ा स्थान दिया। प्रत्युत यह समझना अधिक उपयुक्त है कि रहीम ऐसे मुसलमान हुए हैं, जो धर्म से मुसलमान और संस्कृति से शुद्ध भारतीय थे।''[48]

रहीम अनुपम दानवीर थे। उनकी दानवीरता के अनेकानेक प्रसंग कवियों ने वर्णित किए तथा जन-जन की जुबान पर भी छाए रहे। रहीम की दानवीरता, कवियों, कलाकारों को सम्मान-पुरस्कार तथा आश्रय प्रदान करने के किस्से रहीम रत्नावली (पं. मायाशंकर याज्ञित), खानखाना नामा (मुंशी देवी प्रसाद), अब्दुर्रहीम खानखाना (डॉ. समरबहादुर सिंह) जैसे ग्रंथों में मिलता है। रहीम बिना मांगे ही गुणियों, साधुओं, सैनिकों और विशिष्ट याचकों को दान-दक्षिणा देते थे। रहीम दान करते समय मुट्ठी में जितना आता उतना आगंतुक को दे दिया करते। दान देते समय आंख उठाकर ऊपर देखना रहीम के सिद्धांत के विरुद्ध था। दान किसको दे रहे हैं, कौन ले जा रहा है, यह जानने का प्रयत्न रहीम नहीं करते थे। इसी संदर्भ में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है, ''इनकी दानशीलता हृदय की सच्ची प्रेरणा के रूप में थी। कीर्ति की कामना से उनका कोई संपर्क नहीं था।''[49] रहीम कवियों, कलाकारों की भी भरपूर सहायता करते थे।

आलोचनात्मक मूल्यांकन

रहीम के काव्य पर अब तक अनेक शोध-प्रबंध तथा समीक्षा ग्रंथ लिखे जा चुके हैं और निरंतर लिखे जा रहे हैं, पत्र-पत्रिकाओं में रहीम पर केन्द्रित विशेषांक प्रकाशित होते रहते हैं। रहीम के काव्य ने रहीम के समग्र व्यक्तित्व को अमर कर दिया है। उनके काव्य में नीति, शृंगार तथा भक्ति के तीन रंग स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं। रहीम की रचनाओं के संबंध में विद्वानों की अपनी-अपनी राय तथा विचार-विमर्श होते रहे हैं। उनकी रचनाओं की प्रामाणिकता की भी निरंतर

चर्चा हुई है। उनकी रचनाओं के एक दर्जन से भी अधिक संग्रह समय-समय पर प्रकाशित हुए हैं, जिनमें से 'रहिमन शतक' शीर्षक से ही पं. सूर्यनारायण दीक्षित, पं. नवनीत चतुर्वेदी व लाला भगवानदीन के शारदा प्रेस, ज्ञान भास्कर प्रेस, बाराबंकी आदि से कई संग्रह प्रकाशित हुए हैं। इसके अलावा बाबू ब्रजरत्न का 'रहिमन विलास', पं. मायाशंकर याज्ञिक की 'रहीम ग्रंथावली', पं. विद्यानिवास मिश्र की 'रहीम ग्रंथावली', डॉ. सत्यप्रकाश मिश्र की 'रहीम रचनावली' उल्लेखनीय हैं। डॉ. समरबहादुर सिंह द्वारा रचित 'अब्दुर्रहीम खानखाना' तथा डॉ. बालकृष्ण 'अकिंचन' द्वारा संकलित 'रहिमन शतकत्रप', की सुदीर्घ भूमिका भी रहीम काव्य एवं व्यक्तित्व पर विशेष प्रकाश डालती है। शोधार्थियों के लिए भी यह महत्वपूर्ण है। रहीम का पूरा साहित्य आज भी उपलब्ध नहीं है।

रहीम ने संयोग श्रृंगार के अंतर्गत नायिका भेद, नायिकाओं की विभिन्न क्रियाएं-कटाक्ष, संभाषण, अधर दान, अंगों तथा नख-शिख की शोभा तथा वियोग श्रृंगार के अंतर्गत विरहाग्नियों के दारुण वियोग, विभिन्न ॠतुओं, विशेषकर वर्षा, बसंत आदि में विरहाग्नि के उद्दीप्त हो जाने का मर्मस्पर्शी वर्णन किया है। विप्रलंभ श्रृंगार के चारों भेद-पूर्वानुराग, मान, प्रवास तथा करुणा, विरह की दस दशाएं- अभिलाषा, चिंता, स्मरण, गुणकथन, उन्माद, व्याधि, जड़ता, उन्वेग, प्रलाप, मरण, अनुभव के चारों भेद- कायिक, मानसिक, आहार्य तथा सात्विक आदि का सांगोपांग वर्णन रहीम के श्रृंगार काव्य में विद्यमान है।

उनकी नीतिकाव्य में जीवन जीने की पद्धति, उचित-अनुचित का विवेक, सामाजिक मर्यादाएं, धार्मिक नीतियां आदि का विश्लेषण-विवेचन किया गया है।

रहीम का भक्ति भाव मुख्यत: श्री राम एवं श्री कृष्ण के प्रति व्यक्त हुआ है। उनके काव्य में रामायण, महाभारत, पुराण तथा गीता जैसे ग्रंथों के कथानकों को उदाहरण के लिए चुना गया है और लौकिक जीवन के व्यवहार पक्ष को उसके द्वारा समझाने का प्रयास किया गया है, जो भारतीय संस्कृति की झलक को प्रस्तुत करता है।

रहीम ने अधिकतर काव्य रचनाएं मुक्त शैली में की है। उन्होंने ब्रज भाषा, पूर्वी अवधि और खड़ी बोली को अपनी काव्य का भाषा बनाया, किन्तु ब्रज भाषा उनकी मुख्य शैली थी।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि रहीम मध्यकालीन

हिंदी साहित्य में योद्धा, दानवीर तथा कवि व्यक्तित्व अर्थात् शृंगार, भक्ति, नीति काव्य के रचयिता साहित्यकार के रूप में अपना अनुपम, अद्वितीय स्थान रखते हैं।

संदर्भ-ग्रन्थ सूची

1. महमूद शीरानी, पंजाब में उर्दू, पृष्ठ - 27
2. गंगा प्रसाद सिंह विशारद, हिंदी के मुसलमान कवि, पृष्ठ - 18
3. गंगा प्रसाद सिंह विशारद, हिंदी के मुसलमान कवि, पृष्ठ - 30
4. गंगा प्रसाद सिंह विशारद, हिंदी के मुसलमान कवि, पृष्ठ - 88
5. गंगा प्रसाद सिंह विशारद, हिंदी के मुसलमान कवि, पृष्ठ - 4
6. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ - 175
7. गंगा प्रसाद सिंह विशारद, हिंदी के मुसलमान कवि, पृष्ठ - 127
8. वही, पृष्ठ - 176
9. गंगा प्रसाद सिंह विशारद, हिंदी के मुसलमान कवि, पृष्ठ - 175
10. वही, पृष्ठ - 194
11. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ - 186
12. परशुराम चतुर्वेदी, सूफी काव्य - संग्रह, पृष्ठ - 185
13. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ -66
14. गंगा प्रसाद सिंह विशारद, हिंदी के मुसलमान कवि, पृष्ठ - 15
15. गंगा प्रसाद सिंह विशारद, हिंदी के मुसलमान कवि, पृष्ठ - 14
16. संपादक : श्यामसुंदर दास, कबीर ग्रंथावली, पद संख्या 39
17. संपादक : अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध, कबीर रचनावली, पद 101
18. संपादक : श्यामसुन्दरदास, कबीर ग्रंथावली, पृष्ठ - 39
19. डॉ. रमेशचंद्र मिश्रा, कबीर : वाणी और विचार, पृष्ठ - 16

20. गंगा प्रसाद सिंह विशारद, हिंदी के मुसलमान कवि, पृष्ठ - 28
21. हजारी प्रसाद द्विवेदी - कबीर, पृष्ठ - 222
22. रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ - 46
23. हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर पृष्ठ - 127
24 हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, पृष्ठ - 164
25. डॉ. पारस नाथ तिवारी, कबीर वाणी संग्रह, पृष्ठ - 179
26. संपादक : डॉ. श्यामसुंदर दास, कबीर ग्रंथावली, पृष्ठ - 161
27. संपादक : आचार्य रामचंद्र शुक्ल, जायसी ग्रंथावली, पृष्ठ - 8
28. वही, पृष्ठ - 8
29. आचार्य रामचंद शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ - 91
30. संपादक : आचार्य रामचंद्र शुक्ल, जायसी ग्रंथावली, पृष्ठ - 12
31. वासुदेव शरण अग्रवाल, पद्मावत, पृष्ठ - 23
32. रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ - 93
33. रामचंद्र शुक्ल, जायसी ग्रंथावली, पृष्ठ - 12
34. वासुदेव शरण अग्रवाल, पद्मावत, पृष्ठ - ....
35. रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ - 93
36. विजयदेव नारायण शाही, जायसी, पृष्ठ - 106
37. रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ - 176
38. गंगा प्रसाद सिंह विशारद, हिन्दी के मुसलमान कवि, पृष्ठ - 86
39. परशुराम चतुर्वेद, मध्यकालीन प्रेम साधना, पृष्ठ - 154
40. गंगा प्रसाद सिंह विशारद, हिंदी के मुसलमान कवि, पृष्ठ - 90
41. वही, पृष्ठ - 55
42. वही, पृष्ठ - 41

43. वही, पृष्ठ - 42
44. वही, पृष्ठ - 69
45. वही, पृष्ठ - 69
46. संपादकः विद्यानिवास मिश्र, रहीम ग्रंथावली, पृष्ठ - 86
47. वही, पृष्ठ - 109
48. रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, पृष्ठ - 359
49. रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ - 208

अध्याय तीन

आधुनिक हिंदी साहित्य की विविधता और मुस्लिम रचनाकारों की उपस्थिति

(राही मासूम रजा, शानी, मेहरून्निसा परवेज, शकील सिद्दीकी, असगर वजाहत, अब्दुल बिस्मिल्लाह, अनवर सुहैल, नासिरा शर्मा, मंजूर एहतेशाम व अन्य)

पृष्ठभूमि

हिंदी साहित्य के इतिहास में 'आधुनिक काल' हिंदी भाषा और साहित्य के विकास की दृष्टि से सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं उल्लेखनीय काल है। इससे पूर्व के कालों आदिकाल (वीरगाथा काल), पूर्व मध्य काल (भक्तिकाल) तथा उत्तर मध्यकाल (रीतिकाल) में जहां हिंदी साहित्य का विकास क्षेत्रीय भाषाओं के माध्यम से होता है, वहीं आधुनिक काल में गद्य-पद्य दोनों का समान विकास हुआ, वह भी हिंदी भाषा के सर्वमान्य रूप खड़ी बोली के माध्यम से। आधुनिक काल का साहित्य प्रत्येक दृष्टि से नवीनता का वाहक बनकर नवोन्मेष के कारण हमारा ध्यान सर्वाधिक आकृष्ट करता है।

हिंदी साहित्य का आधुनिक काल भारत के इतिहास के बदलते स्वरूप से प्रभावित है। स्वतंत्रता संग्राम और राष्ट्रीयता की भावना का प्रभाव साहित्य में भी आया। भारत में औद्योगीकरण का प्रारंभ होने लगा था। आवागमन के साधनों का विकास हुआ। अंग्रेजी और पाश्चात्य शिक्षा का प्रभाव बढ़ा और जीवन में बदलाव आने लगा। पद्य के संग गद्य का भी विकास हुआ। आधुनिक हिंदी साहित्य का विकास केवल हिंदी भाषी क्षेत्रों तक ही सीमित नहीं रहा बल्कि पूरे भारत में और हर प्रदेश में हिंदी की लोकप्रियता फैली। अगर समय की बात की जाए तो आधुनिक हिंदी साहित्य 1850 के बाद विकास के पथ पर अग्रसर होता है। भारतेन्दु हरिश्चंद्र आधुनिक हिंदी साहित्य के अग्रदूत हैं। भारतेन्दु ने कविता, नाटक, उपन्यास, यात्रा वर्णन, जीवनी आदि सभी क्षेत्रों में अपनी लेखनी चलाई।

भारतेन्दु के साथ भारतेन्दु मंडल के लेखकों का भी आधुनिक साहित्य को आगे बढ़ाने में योगदान है।

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ के साथ आधुनिक हिंदी साहित्य उपन्यास, कहानी, नाटक, एकांकी आदि विधाओं के साथ आगे बढ़ता है जो द्विवेदी युग, प्रेमचंद युग, छायावाद युग के रूप में हमारे सामने आता है। इसके बाद और स्वतंत्रता से पहले हिंदी गद्य की अन्य विधाएँ रिपोर्ताज, आत्मकथा, पत्र साहित्य, संस्मरण, डायरी, जीवनी आदि का पूर्ण विकास हुआ और बहुत से लेखकों ने इसको आगे बढ़ाने में अपना योगदान दिया। हिंदी साहित्य के इतिहास में आदिकाल से लेकर, भक्तिकाल, रीतिकाल तथा आधुनिक काल तक सभी कालों में मुस्लिम साहित्यकारों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

बीसवीं शताब्दी में हिंदी साहित्य में गद्य विधाओं का बोलबाला हो गया था। उपन्यास, कहानी, नाटक आदि में हिंदी साहित्य लगातार समृद्ध हो रहा था। उसी कड़ी में स्वतंत्रता से पूर्व तथा स्वतंत्रता के पश्चात मुस्लिम लेखकों ने हिंदी साहित्य को अपनी लेखनी से समृद्ध करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। मुस्लिम लेखक शानी अपने उपन्यास 'काला जल' में कहते हैं, "एक समाज की संरचना का निर्धारण व्यक्ति विशेष की विचारधारा से नहीं वरन सामूहिक दायित्व के प्रति समर्पण भाव में छिपा होता है।"[1] अर्थात् किसी भी देश, समाज या साहित्य के विकास में वहां के लोगों का बहुत बड़ा योगदान होता है। हमारा देश विविध संस्कृतियों का संगम है। विश्व में शायद ही ऐसा कोई देश होगा जहां की संस्कृति में इतनी विविधता होगी। इतिहास के पटल पर अगर देखा जाए तो हमारे देश की संस्कृति बहुत प्राचीन है। इस देश पर समय-समय पर कई विदेशी ताकतों ने आक्रमण किया। इन ताकतों ने लंबे समय तक इस देश पर शासन भी किया। इस कड़ी में देश पर मुगलों ने लंबे समय तक न केवल शासन किया बल्कि अकबर, शाहजहां जैसे मुस्लिम शासकों ने इस देश को स्थापत्य की दृष्टि से समृद्ध किया। उसी प्रकार मुस्लिम रचनाकारों ने भी अपनी लेखनी से भारतीय संस्कृति, समाज, त्योहार आदि के निरूपण के साथ यहाँ के समाज के भीतर उतरने का प्रयास किया।

1947 में देश स्वतंत्र हुआ, लेकिन देश के दो टुकड़े हो गये। विभाजन ने धर्म के नाम पर हिंदू-मुस्लिम को बांट दिया। लेकिन साहित्य की धारा कहां रुकती

है। सामाजिक समस्याओं से रू-ब-रू कराना ही साहित्य का लक्ष्य होता है। एक निष्पक्ष समावेशिक दृष्टि ही साहित्य का प्राण तत्व है। विभाजन के पश्चात् बहुत से मुस्लिम रचनाकार पाकिस्तान छोड़कर भारत आ गए। उन्होंने इस देश को अपनी कर्मभूमि और बाद में उनकी आने वाली पीढ़ी ने अपनी जन्मभूमि के रूप में अपनाया। समय-समय पर इन रचनाकारों ने इस देश की स्थिति पर अपनी लेखनी चलाई और समाज के लोगों को सजग किया।

यदि हम आदि और मध्यकाल के साहित्यकारों की बात करें तो अब्दुल रहमान, दादू, रज्जब, रसखान, रहीम, आलम, कुतुबन, जायसी, शेख नबी, नूर मोहम्मद जैसे रचनाकार हैं। वहीं आधुनिक युग में डॉ. राही मासूम रजा, अब्दुल बिस्मिल्लाह, मेहरून्निसा परवेज, असगर वजाहत, शानी, नासिरा शर्मा, मंजूर एहतेशाम जैसे न जाने कितने रचनाकार हैं। इन सभी रचनाकारों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से समाज में फैले हिंदू-मुस्लिम के बीच के विद्वेष को दूर करने का प्रयास करते हुए दोनों संस्कृतियों को समावेशित करने का प्रयास किया। इन रचनाकारों ने वर्तमान समाज में अल्पसंख्यकों की जो स्थिति है उस पर खूब लिखा। इतना ही नहीं उन साहित्यकारों ने एक ऐसे भारत को प्रस्तुत किया जिसे अभी तक हमने केवल सुना था देखा नहीं था। नासिरा शर्मा ने देश विभाजन की पीड़ा को अपने उपन्यास में इस प्रकार लिखा है, - "यह बँटवारा हमने नहीं कराया था। मैं तो उन करोड़ों इन्सानों में से एक हूँ जो न बिहार में रह सका, न पूर्वी पाकिस्तान में न पश्चिम पाकिस्तान में। दरअसल तुम्हें वहां के बिहारी मुसलमानों से की गई नफरत का अंदाजा नहीं है।"[2] इन रचनाकारों ने जहां एक ओर मुसलमानों की स्थिति, उनकी पीड़ा, उनके सामाजिक स्तर आदि को वर्णित किया तो वहीं दूसरी ओर साम्प्रदायिक सौहार्द्र की भी बात की। इसी कारण हिंदी साहित्य के लेखन में मुस्लिम लेखकों ने न केवल प्रवेश किया बल्कि उसे जिया भी और आदमी को आदमी से जोड़ने का प्रयास किया। इन लेखकों ने यह भी प्रयास किया है कि भारत के हृदय के जो दो टुकड़े हुए हैं उसे जोड़ सके।

काव्य लेखन की स्थिति

कविता साहित्य की प्रथम पीठिका है। शायद ही कोई बड़ा साहित्यकार हुआ हो, जिसने कविता से अपना लेखन न शुरू किया हो। भारतेन्दु हरिश्चंद्र, रामचंद्र शुक्ल, हजारी प्रसाद द्विवेदी इसके सशक्त प्रमाण हैं, जो निबंधकार, नाटककार, आलोचक भी रहे हैं और कवि भी। डॉ. राही मासूम रजा भी इसी कड़ी में आते

हैं। राही का कृतित्व विविधताओं से भरा रहा है। एक और लेखक का नाम मुस्लिम हिंदी साहित्यकारों में आता है जिन्होंने अपना लेखन कविता से प्रारंभ किया है, वो अब्दुल बिस्मिल्लाह जी हैं। ये बात वे स्वयं अपनी कविता की पुस्तक – ''वली मुहम्मद और करीमन बी की कविताएँ' में स्वीकार कर चुके हैं कि मंगलेश डबराल उन्हें मूलत: कथाकार मानते हैं तो त्रिलोचन जी उन्हें मूलत: कवि मानते थे।''[3]

अब हम हिंदी साहित्य में इन दोनों लेखकों की काव्य लेखन पर बारी–बारी से नज़र डालेंगे कि कैसे इन्होंने हिंदी काव्य साहित्य को शोभित किया है।

डॉ. राही मासूम रजा का जन्म 1 सितंबर 1927 को एक सम्पन्न परिवार में हुआ। उनके पिता गाजीपुर की जिला कचहरी में वकालत करते थे। राही की प्रारम्भिक शिक्षा गाजीपुर में हुई और उच्च शिक्षा के लिये वे अलीगढ़ भेज दिये गए जहां उन्होंने 1960 में एम. ए. की उपाधि विशेष सम्मान के साथ प्राप्त की। 1964 में उन्होंने अपने शोधप्रबंध 'तिलिस्म–ए–होशरुबा' में चित्रित भारतीय जीवन का अध्ययन विषय पर पी–एचडी. की उपाधि प्राप्त की। तत्पश्चात उन्होंने चार वर्षों तक अलीगढ़ विश्वविद्यालय में अध्यापन का कार्य भी किया। अलीगढ़ में रहते हुए राही ने अपने भीतर साम्यवादी दृष्टिकोण का विकास कर लिया था और भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य भी हो गए थे। अपने व्यक्तित्व के इस निर्माण काल में वे बड़े ही उत्साह से साम्यवादी सिद्धान्तों के अनुसार समाज के पिछड़ेपन को दूर करना चाहते थे और इसके लिए सक्रिय प्रयत्न भी कर रहे थे। राही ने 1946 से लिखना आरंभ किया। उनकी कविता 'नया साल', 'मौजे गुल : मौजे सबा' उर्दू में सर्वप्रथम 1954 में प्रकाशित हुई। उनकी कविताओं का प्रथम संग्रह 'रक्से–मय' (1964) उर्दू में प्रकाशित हुआ। हिंदी में राही मासूम रजा की काव्य कृतियाँ निम्न हैं – 'मैं एक फेरी वाला' (1976), शीशे का मकां वाले, गरीब शहर क्रांति कथा (काव्य संगह)। किसी भी समाज का साहित्य उसके अतीत और वर्तमान की महत्वपूर्ण उपलब्धियों को स्पष्ट करता है। अतीत और वर्तमान ही उस समाज की भावी गति और विकास की मूलधारा का निर्धारण करते हैं। कम शब्दों में कहा जाये तो साहित्य वह विधा है जो संपूर्ण मानव जीवन को उसकी पूर्णता में अभिव्यक्त करने का प्रयास करती है। राही भी ऐसे ही साहित्यकार हैं। रचनात्मकता के क्षेत्र में राही ने अनेक मुद्दों को उठाया है। उनकी रचनाओं ने उनके समय का समाज और राजनीति से संबंधित सभी

विषयों को रेखांकित किया है। अपनी कविताओं में भी उन्होंने इसी मुद्दे को उठाया है। देश और अपने परिवेश में घटने वाली घटनाओं पर उन्होंने बेखौफ अपनी कलम चलाई।

राही ने उर्दू और हिंदी दोनों भाषाओं में समान रूप से लिखा। उन्होंने उर्दू को अस्वाभाविक बनाने वाले इस्लामिक प्रतीकों को परित्याग किया। कविता में उन्होंने अपने आदर्श नायक के रूप में चुना हिमालय की ऊँचाइयों पर भटकने वाले योगी शंकर को। उनकी प्रेम से संबंधित कविताओं की आलम्बन बनी राधा।

"राधा भी राधा के ख्वाबों की तरह बेजबां है।"[4]

उनकी 'थकन' कविता में एक उदासी, एक बेचैनी दिखाई देती है। यह बेचैनी केवल राही की नहीं पूरे समाज की है, पूरे देश की है –

"पर ये सुनसान बयाबां तो न मंजिल है न घर
इस जगह मेरे सिवा कोई नहीं
ख़िरद है न जुनूं
अपनी रूदादे सफ़र किससे कहूं
न कहीं धूप न कहीं छांव
किसी दलदल में फँसे जाते हैं आवाज के पाँव
दूर होता ही चला जाता है वह नींद का गांव
जिसके सपने से मुहल्ले में बड़ी धूम से रात आई है
चाँदनी ले के बारात आई है।"[5]

राही धर्म, संप्रदाय, क्षेत्र, भाषा, संस्कृति और राष्ट्रीयता के सवाल पर बड़ी शिद्दत से लिखते हैं। राही भारतीय संस्कृति को एकांगी नहीं मानते हैं। उनका कहना है कि भारतीय संस्कृति का चरित्र बहु–आयामी है। उसमें कई रंग और खुशबुएँ हैं। फिर भी वह गंगा की तरह व्यापक है। गंगा बड़ी हैं किसी एक धर्म की कैद में नहीं। राही के लिए धर्मनिरपेक्षता का अर्थ बहुत व्यापक है। डॉ. नमिता सिंह जी उनके लेखक के विषय में लिखती हैं, "उनके लेखन की विशेषता यह थी कि वह लेखन कोरा नहीं था। वे सदैव ज्वलंत सामाजिक प्रश्नों

से जूझते रहे। हर प्रकार की सांप्रदायिकता का विरोध, समाज को बांटने वाली हर ताकत, हर संकीर्ण विचार का विरोध उनके लेखन और जीवन का एक मात्र उद्देश्य था। उनकी वाणी और कलम का ओज दुर्लभ है। वे अपने लेखन में विचारों की अभिव्यक्ति में बेहद बेबाक और निर्भीक थे। खतरे उठाना लेकिन सफाई से अपनी बात कहना उनका धर्म था।"[6]

उनकी कविता 'मैं एक फेरी वाला' उपर्युक्त कथन को चरितार्थ करता है–

''मेरा नाम मुसलमानों जैसा है
मुझको कत्ल करो और मेरे घर में आग लगा दो
मेरे उस कमरे को लूटो
जिसमें मेरी बयाजे जाग रही हैं
और मैं जिस में तुलसी की रामायण से सरगोशी करके
कालिदास के मेघदूत से ये कहता हूँ
मेरा भी एक सन्देशा है।
मेरा नाम मुसलमानों जैसा है
मुझ को कत्ल करो और मेरे घर में आग लगा दो
लेकिन मेरी रग रग में गंगा का पानी दौड़ रहा है
मेरे लहु से चुल्लु भर कर
महादेव के मुंह पर फेंको
और उस जोगी से ये कह दो
महादेव! अपनी इस गंगा को वापस ले लो
ये हम जलील तुर्कों के बदन में
गाढ़ा, गर्म लहु बन बन के दोड़ रही है।''[7]

राही मासूम रजा जैसे लेखक कभी भुलाये नहीं जा सकते। उनकी रचनाएँ हमारी उस गंगा–जमनी संस्कृति की प्रतीक है जो वास्तविक हिंदुस्तान की परिचायक है।

लोकसंपृक्ति के साथ आम जनजीवन एवं जीवन की विषम परिस्थितियों की व्यापक और गहरी समझ रखने वाले अब्दुल बिस्मिल्लाह समकालीन समय के प्रख्यात कथाकार होने के साथ-साथ एक महत्वपूर्ण कवि भी हैं। अब्दुल बिस्मिल्लाह जी ने गुज़री सदी के सातवें दशक में बड़ी विस्फोटक कविताओं से अपना लेखन, अपने गृहनगर इलाहाबाद और वाराणसी से शुरू किया था। इनके प्रमुख काव्य संग्रह निम्न हैं - 'मुझे बोलने दो' (1977), 'छोटे बुतों का बयान' (1982), 'वली मुहम्मद और करीमन बी की कविताएँ' (1988), 'किसके हाथ गुलेल' (1990)। बिस्मिल्लाह जी की कविताएँ अपने समय के सच को बयान करती हैं। 'मेरा खजहा ऊँट', 'सिविल लाइन्स की पर्दानशील सड़क पर', 'नंगा निकल आया है' और 'मक्खियों से गमछा माँग रहा है' ये सभी कविताएँ 'मुझे बोलने दो' काव्य संग्रह में आयी हैं। इन कविताओं में इनके गृहजनपद इलाहाबाद की झलक मिलती है। अब्दुल बिस्मिल्लाह के अन्दर जो कुंठा, घुटन, संत्रास, विद्रोह था उनके काव्य में स्पष्ट रूप में झलकता है।

"वैसे सोचना कोई बुरी बात नहीं
पर देश के बारे में सोचना एक बुरी बात है
क्योंकि जब से यहाँ गुस्से का जन्म हुआ है
देश के बारे में सोचना
विद्रोह माना जाने लगा है
हो सकता है
राष्ट्रीयता को त्योहार के रूप में मानने वाले
और गुसइयाँ के चूहे के
पुत्र जन्म के अवसर पर
सोहर गाने वाले
मनुष्यों की समझ में
मैं भी न आऊँ
और मुझसे निपटने के लिए

पूरे देश को हिलना पड़े
पर मैं भी नहीं चाहूँगा कि
मेरे प्यारे देश को कष्ट उठाना पड़े
एक कवि के लिए
एक देशभक्त गुण्डा काफी है।''[8]

आज हमारे देश की जो हालत है उससे सब वाकिफ हैं। अपने देश की खस्ता हालत पर कवि का हृदय बहुत बेचैन है। वो इस बेचैनी को अपनी इस कविता में व्यक्त करते हैं –

"यहाँ की सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि
हर आदमी देश से प्यार करता है
हर आदमी देश की सेवा करना चाहता है
और हर आदमी सच बोलता है
इसलिए आदमी ऊपर जा रहा है
देश नीचे जा रहा है
और जो आदमी है न देश है
वह इस रस्साकशी में रस्सा बनकर रह गया है।"[9]

उनकी एक और कविता 'इज्जत विक्रेता' में देश की वर्तमान स्थिति तथा हमारे समाज के पतनोन्मुख स्थिति का बहुत मार्मिक वर्णन मिलता है –

''वह अपनी इज्जत बेच रहा था
इज्जत बेचना इसलिए जरूरी था
और किराए के मकान में रहता था
और वह बाप था लेकिन
तभी कुछ दूसरे युवक भी वहां आ गये
मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ
कि एक युवक के साथ
दो युवकों ने इस तरह का व्यवहार किया

तभी किसी ने इज्जत बेचने वाले की कातर में

पीछे से ढेर सारी लाल-लाल चींटियाँ डाल दी

उसका जिस्म चींटियाँ से भर गया

वह छटपटाने लगा

लोगों को मौका मिला

जिससे जितना हो सका इज्जत लेकर भाग चला"[10]

आज मनुष्य विलासिता में डूब चुका है। वह अपने आप को भूल चुका है। वह मानता है कि वह सर्वज्ञानी है। अगर मनुष्य के पास सुख-सुविधाएँ हैं तो उसे सब मिल गया है। जिस समय में हम रह रहे हैं वहां मनुष्यता नहीं बची है। कोई सम्मान नहीं बचा है। बस सब जीए जा रहे हैं। उनकी इस कविता में यही कथन प्रदर्शित हुआ है –

"हम गोश्त के नाम पर

लाश खा रहे हैं

फिर भी कोई गम नहीं है

इस हिजड़े जमाने में

हम पुरुष की तरह जी रहे हैं

यह कम नहीं है।"[11]

अब्दुल बिस्मिल्लाह जी अपनी कविताओं में गरीबों और दरिद्रों की आवाज उठाते हैं। उनका प्रयास यह रहता है कि कैसे समाज से यह अमीर-गरीब का अंतर मिट जाये। वह पूँजीवाद पर कठोर चोट करते हैं –

"कपास के सारे पौधे

टोपियों के लिए चुन लिये

और वे

लंगोटियों का ख्वाब देखते रहे।"[12]

अब्दुल बिस्मिल्लाह की कविताओं में जबरदस्त बोधक क्षमता है। वो सीधे पाठकों के हृदय पर प्रभाव डालती हैं। 'छोटे बुतों का बयान' उनकी ऐसी ही कविता हैं –

"कुछ तो नहीं बदला है इब्राहीम
न कबीला
न सरदार
न बड़ा बुत
न छोटा बुत
तुम लौट आओ इब्राहीम
हमारे बयान को सुनो
और उस बड़े बुत के खिलाफ लड़ो
जिसके कंधों पर मुद्दतों से कुल्हाड़ी रखी है।"[13]

'वली मुहम्मद और करीमन बी' की कविता में वो बताते हैं कि हमारे देश के लोगों को ईमानदार नेता नहीं चाहिए। इस देश में ईमानदारी को छोड़ना पड़ेगा। अगर ईमानदार रहना है तो अपनी जान गंवानी पड़ेगी।

"इस देश के तमाम बूढ़े जो मर चुके हैं
उनमें से एक का नाम था महात्मा गाँधी
और दूसरे का वली मुहम्मद
जिसका नाम महात्मा गाँधी था
पूरे देश का पिता था
जिसका नाम वली मुहम्मद था
वह सिर्फ एक कवि का पिता था।"[14]

अब्दुल बिस्मिल्लाह जी ने अपने काव्य हेतु को स्वयं अपने काव्य में स्पष्ट कर दिया है –

"कवि ने वह सब कुछ लिखा
जिसकी माँग थी जमाने में
कवि ने वह नहीं लिखा
जिसकी जरूरत थी जमाने को"[15]

बिस्मिल्लाह जी ने अपनी कविताओं में सरल भाषा का प्रयोग किया है। कहीं पर भी बोझिल शब्दों का प्रयोग नहीं मिलता है। उन्होंने आक्रोश, प्रतिरोध के होते हुए चेतना को विस्तार दिया है। यही उनके काव्य की मुख्य विशेषता भी है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि काव्य के क्षेत्र में मुस्लिम साहित्यकारों ने सशक्त होकर अपनी लेखनी चलाई। इन लेखकों ने कथा साहित्य में प्रवीण होने के बावजूद काव्य में भी अपना लोहा मनवाया। राही मासूम रजा और उनके पश्चात् अब्दुल बिस्मिल्लाह के काव्य में अपने समय के घुटन और संत्रास को समझा और महसूस किया जा सकता है।

कथा साहित्य में योगदान

साहित्य का मूल दायित्व मानवीय मूल्यों और सामाजिक चेतना को उजागर करना है। साहित्यकार एक तरफ सामाजिक विसंगतियों का चित्रण करते हुए उसके प्रति आक्रोश व्यक्त करता है तो दूसरी ओर अपने साहित्य के माध्यम से एक सुखी समाज की स्थापना करने का प्रयास करता है। मानव एवं समाज की अवहेलना करने वाला साहित्य चिरकाल तक टिका नहीं रह सकता। सचेत साहित्यकार के संबंध में यह बात और भी सच है कि वह जीवन की सच्चाइयों को चुनौतियाँ के रूप में स्वीकार करता है और उसके साथ जूझने का निर्णय लेता है। जिस साहित्य में जनता के हित की जितनी शक्ति होती है वह उतना ही उपयोगी और मूल्यवान होता है। प्रेमचंद ने भी कहा है, "साहित्यकार का लक्ष्य महफिल सजाना और मनोरंजन का सामान जुटाना नहीं है, वह देशभक्ति और राजनीति के पीछे चलने वाली सच्चाई भी नहीं है, बल्कि उनके आगे मशाल दिखाती हुई चलने वाली सच्चाई है।[16] अत: एक सचेत और सजग साहित्यकार की दृष्टि से मुस्लिम साहित्यकारों ने हिंदी साहित्य को विशेष योगदान दिया है। राही मासूम रजा, शानी, मेहरून्निसा परवेज, शकील सिद्दिकी, असगर वजाहत, अब्दुल बिस्मिल्लाह, नासिरा शर्मा, मंजूर एहतेशाम, अनवर सुहैल आदि कथाकारों की रचनाएँ समाज की सच्चाई को बड़ी बेबाकी से उद्घाटित करती है। इन मुस्लिम साहित्यकारों ने अपने कथा साहित्य में केवल मुस्लिम समाज, जीवन तथा परिवेश को ही अपनी रचनाओं का आधार नहीं बनाया बल्कि प्रत्येक ध र्म, सम्प्रदाय और वर्ग के सामाजिक विसंगतियों, भय, हिंसा, शोषण, अत्याचार, स्वार्थपरता जैसी प्रवृत्तियों को उघाड़ने का प्रयास किया है। हम मुस्लिम साहित्यकारों के कथा साहित्य का विश्लेषण इन्हीं संदर्भों में करेंगे।

राही मासूम रजा एक मुसलमान लेखक थे, फिर भी उनमें एक सच्चे हिंदुस्तानी की आवाज थी। उनके कर्म का मूल उद्देश्य अपने देश की उन्नति करना रहा है। जो संस्था या व्यक्ति इस देश की एकता, अखंडता और खुशियों को विभाजित करती है वह चाहे जितना भी बड़ा संस्था या व्यक्ति क्यों न हो वे उसके विरोध में खड़े हो जाते हैं। राही स्पष्टतावादी व्यक्ति थे और अपने धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रीय दृष्टिकोण के कारण अत्यंत लोकप्रिय थे। आधा गांव (1966), हिम्मत जौनपुरी (1969), टोपी शुक्ला (1969), ओस की बूंद (1970), दिल एक सादा कागज (1973), सीनः 75 (1977), कटरा बी आर्जू (1978) तथा असन्तोष के दिन (1986) उनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं। सारिका पत्रिका में राही की अनेक कहानियाँ भी प्रकाशित हुई हैं। जैसे एम.एल. ए. साहब (1975), चम्मच भर चीनी (1976), खलीफ अहमद बुआ (1978), सपनों की रोटी (1980) आदि।

राही मासूम रजा का सम्पूर्ण साहित्य साम्प्रदायिकता के विरुद्ध है। उनके साहित्य में हिंदुस्तानी संस्कृति और देश की साझी विरासत की झलक मिलती है। राही हिंदी में प्रेमचंद, यशपाल, भीष्म साहनी तथा मुक्तिबोध की परम्परा में हैं जो एक बड़े रचनाकार होने के साथ-साथ चिन्तक भी हैं। इनके साहित्य का प्रमुख उद्देश्य देश की अखंडता, एकता तथा साझी विरासत की रक्षा करना है। वर्तमान समाज देश के एक बड़े तबके को शक व नफरत की नजर से देख रहा है, इसलिए इनके दिलों को साफ करने का कार्य हिंदी साहित्य के रचनाकारों का भी है। इसी कारण राही उन शक्तियों एवं प्रवृत्तियों का विरोध करते हैं जिसमें भारत की एकता को तोड़नेवाले तत्व निहित हों। धर्म, संप्रदाय, जातिवाद, भाषा के आधार पर भारतीय जनता को बांटना आदि का विरोध राही के साहित्य में दृष्टिगोचर होता है। साझी संस्कृति की विरासत की झलक इनके साहित्य में दिखाई देती है। 'आधा गांव' उपन्यास में अलीगढ़ से आया एक मुस्लिम युवक नए राष्ट्र पाकिस्तान के लिए वोट मांग रहा है तब उसका सामना गांव में कम्मो से हो जाता है। वैचारिक मतभेद बढ़ जाने के बाद युवक गुस्से में कम्मो से कहता है- "ठीक है लेकिन जब हिंदू आपकी माँ-बहन को निकाल ले जाए तो फर्याद न कीजियेगा।"[17] तभी कम्मो उस युवक पर आग बबूला हो जाता है। वह यह जानता है कि गंगौली गांव में हिंदू-मुस्लिम समाज सदियों से एक साथ रह रहे हैं और उस युवक की बात को गलत साबित करने के लिए वह राह चलते

हुए एक चमार से कहता है कि "ई लोग अलीगढ़ से हम्में ई बताये आये हैं कि हिंदुस्तान आजाद हो जइहे, त तूं लोग हमरे की माँ-बहिन को निकाल ले जइहो।. ... अरे राम-राम चमार बिल्कुल घबरा गया। वह अलीगढ़ वालों की तरफ मुड़ा, आप लोग त लिक्खन-पढ़ल बुझाताड़ी। तनीं सोचीं कि हमनी के जीयत कोउ मियां लोगन की बहन-मतारी की तरफ देख सकेला?... आप लोगन से आच्छा त हमरा चमरते है। कम्मो ने कहा जो माँ-बहिन के निकाल लिये जाने की बात सुनके राम-राम करे लगा।"[18] राही मासूम रज़ा ने जिस गंगौली गांव का चित्रण किया है वह गांव समन्वय का प्रतीक है क्योंकि इस गांव में हिंदू-मुस्लिम दोनों मिलकर एक साथ प्रत्येक त्योहार का आनंद लेते हुए दिखाई देते हैं।

इसी प्रकार से 'टोपी शुक्ला' में सांप्रदायिक दंगों के बीच व्यक्ति के खो जाने की बात करते हैं। समाज की संकीर्णताओं से लड़ने वाले व्यक्ति की, समाज में स्वयं को ढाल न पाने की, हम सब की व्यथाओं को व्यक्त करते हैं। इस आन्तरिक द्वंद्व के कारण लेखक बेचैन हैं। साम्प्रदायिकता ने इन्सान से इन्सानियत को निचोड़कर फेंक दिया है। आम इन्सान आदमखोर बन गया है। सांप्रदायिक दंगों में मारे जाने पर लेखक की एक अत्यंत मार्मिक व्यंग्योक्ति है। "महेश मनुष्य था उसे आदमियों ने मार डाला।"[19] इस रचना के माध्यम से राही ने भारतीय विश्वविद्यालयों में व्यापक रूप से व्याप्त जाति प्रथा, धार्मिक विभेद, साम्प्रदायिकता की भावनाओं के फैले जहर के असर को दार्शाया है। एक धर्म के लोग अन्य धर्मावलम्बियों पर लगातार छोटी-मोटी बातों के लिए दोषारोपण कर सिलसिलेवार शिकायतों का पुलिन्दा लिए लड़ते-झगड़ते रहते हैं। टोपी की मुसलमानों से सबसे बड़ी शिकायत यह रहती है कि अधिकांश मुसलमान यहाँ पर रहते हुए भी यहाँ के नहीं हैं। वे पाकिस्तान की ओर देखते रहते हैं। उनकी नज़र में 'अलीगढ़ यूनिवर्सिटी' पाकिस्तानी कारखाना है। टोपी अध्यापन के लिए कई शिक्षण संस्थाओं में आवेदन करता है, वहां उससे तरह-तरह के बेतुके सवाल पूछे जाते हैं। उसे कहीं हिंदू होने के कारण और कहीं मुस्लिम यूनिवर्सिटी में पढ़ने के कारण नौकरी नहीं मिलती है। राही ने 'टोपी' की आत्महत्या को कुछ हद तक उसके अकेलापन को माना है। इसी कारण उसमें मानसिक दुर्बलता बनी और उसने इस धरा को अपने योग्य ही नहीं समझा और आत्महत्या कर ली।

'ओस की बूँद' का कथानक हिंदू-मुस्लिम साम्प्रदायिकता पर आधारित है। राही लिखते हैं कि इस नई पीढ़ी को विरासत में कुछ भी नहीं मिला। इसके

लिए राही पुरानी पीढ़ी को दोषी ठहराते हैं। यह पुरानी पीढ़ी का फर्ज है कि नई पीढ़ी को संस्कारों का, धर्म विषयक महत्वपूर्ण मुद्दों का सही मार्गदर्शन दे, इस पर वे सचेत रहें। अन्यथा परंपरागत वैमनस्य पीढ़ी दर पीढ़ी आगे बढ़ता रहेगा। शहला इस प्रयास की एक मजबूत कड़ी है। नहीं तो वह तमाम मुस्लिम वकीलों को छोड़कर 'शिवनारायण' के पास अपना मुकदमा लेकर क्यों जाती? आज का युवा वर्ग दो धर्मों के मध्य की इस खाई को पाटने का भरसक प्रयास कर रहा है।

विभाजन से उपजी त्रासदी का जीता जागता चित्रण राही ने 'दिल एक सादा कागज' में किया है। रफ्फन का दुख इसी विभाजन के कारण है। परिवार के सारे लोग पाकिस्तान चले जाते हैं। जुदाई का यह दर्द बड़ा जानलेवा होता है। रफ्फन शायरी भी करता है।

इस उपन्यास के रचना काल तक सांप्रदायिक दंगे कम हो चुके थे। पाकिस्तान के अस्तित्व को स्वीकार कर लिया गया था और भारत के हिंदू तथा मुसलमान शान्तिपूर्वक जीवन बिताने लगे थे। इसलिए राही ने अपने उपन्यास का आधार बदल दिया। अब वे राजनीतिक समस्या प्रधान उपन्यासों को छोड़कर मूलत: सामाजिक विषयों की ओर उन्मुख हुए। सन् 1978 में प्रकाशित राही मासूम रजा के सातवें उपन्यास 'कटरा की आर्जू' का आधार फिर से राजनीतिक समस्या हो गया। इस उपन्यास में लेखक ने इमरजेंसी के समय सरकारी अधिकारियों के द्वारा जनता के शोषण का मार्मिक चित्रण किया है।

राही की कलम अत्यंत सशक्त थी। वह अन्याय, विद्‌वेष और असंस्कारी प्रवृत्तियों पर जमकर प्रहार करती थी। राही धर्म, संप्रदाय, भाषा, संस्कृति और राष्ट्रीयता के सवालों पर बड़ी शिद्‌दत से लिखते हैं। राही भारतीय संस्कृति को एकांगी नहीं मानते हैं। उनका कहना है कि भारतीय संस्कृति का चरित्र बहुआयामी है। उसमें कई रंग और खुशबुएँ हैं। फिर भी गंगा की तरह व्यापक और पवित्र है। गंगा बड़ी है वह किसी एक धर्म में कैद नहीं। डॉ. नमिता सिंह उनके लेखन के विषय में लिखती हैं, "उनके लेखन की विशेषता यह थी कि वह लेखन कोरा नहीं था। वे सदैव ज्वलंत सामाजिक प्रश्नों से जूझते रहे। हर प्रकार की सांप्रदायिकता के विरोध, समाज को बांटने वाली हर ताकत, हर संकीर्ण विचार का विरोध उनके लेखन और जीवन का एक मात्र उद्देश्य था। उनकी वाणी और कलम का ओज दुर्लभ है। वे अपने लेखन में, विचारों की

अभिव्यक्ति में बेहद बेबाक और निर्भीक थे। खतरे उठाना लेकिन सफाई से अपनी बात कहना उनका धर्म था।"[20]

शानी आधुनिक खड़ी बोली के पहले बड़े मुस्लिम साहित्यकार माने जाते हैं।[21] राही मासूम रजा शानी से उम्र में बड़े थे किन्तु राही पहले उर्दू में लिख रहे थे। जबकि शानी प्रारम्भ से ही सिर्फ हिंदी के लेखक थे। हिंदी साहित्य के इतिहास में शानी का निश्चय ही ऐतिहासिक महत्व है, क्योंकि शानी के बाद हिंदी में लिखने वाले प्रतिभाशाली मुसलमान लेखकों की एक अच्छी खासी परंपरा बनी है। इस परंपरा में मेहरून्निसा परवेज, असगर वजाहत, अब्दुल बिस्मिल्लाह और मंजूर एहतेशाम जैसे साहित्यकारों ने हिंदी साहित्य में अपनी जगह बनाई है।

स्वातन्त्र्योत्तर कहानी-लेखकों में शानी का महत्वपूर्ण स्थान है। शानी ने भोगी हुई जिंदगी का सही खाका अपनी कहानियों में प्रस्तुत किया है। अपने परिवेश और प्रवृत्ति में पूर्ण समन्वय स्थापित करते हुए शानी ने स्वातन्त्र्योत्तर भारतीय मुस्लिम जीवन की अभिव्यक्ति को ही अपनी कहानियों का प्रमुख उद्देश्य बनाया। उन्होंने स्वयं भी ये कहा है, "यह सिर्फ संयोग नहीं है कि 'इमारत गिराने वाले' को छोड़कर ये सारी कहानियाँ विभाजन के बाद भारतीय मुस्लिम समाज के भय, अंतर्विरोधों, तकलीफों, आंतरिक यातना और विसंगतियों की कहानियाँ हैं..... भावभूमि की दृष्टि से आज मैं जहां खड़ा हूँ वह मूलत: वही है जिसकी यात्रा मैंने 'जली हुई रस्सी' से अनजाने में आरंभ कर दी थी। आज मैं ज्यादा गहरे विश्वास के साथ काम कर रहा हूं और करते रहना चाहता हूं कि सच्ची रचनाकारिता के लिए कथानक ज्यादातर अपने आस-पास और अपने ही वर्ग में देखे जाने चाहिए। वैसे भी इस बात की जरूरत आज पहले से कहीं ज्यादा है कि ऊपर-ऊपर से लिए हुए भोले विश्वास पर संदेह करने वाली यह छानबीन जातीय संवेदनाओं और वर्गगत संस्कारों तक गहराई से की जाए। व्यक्तिगत रूप से जहां तक मैं समझता हूँ - अपने सारे आधुनिकीकरण के बावजूद हममें बहुत कुछ ऐसा बचा रह जाता है जो घर, समाज, धर्म और इतिहास हमें विरासत में सौंपकर चुपचाप आगे बढ़ जाते हैं और जलन की जड़ों की गिराई का कई बार हमें ही पता नहीं होता।"[22]

शानी के उपर्युक्त कथन से यह बात साफ जाहिर होती है कि शानी की कहानियाँ उनके अपने परिवेश, उनके वर्ग की आसपास की भोगी हुई जिंदगी

की कहानियाँ हैं। और यह परिवेश और आसपास का वर्ग या समाज अधिकतर मुस्लिम समाज है। इसी मुस्लिम समाज की विसंगतियों, इनकी समस्याओं, संशयों, विषमताओं और संवेदनाओं को उन्होंने अपनी अधिकांश कहानियों में चित्रित किया है। 'जली हुई रस्सी' शीर्षक कहानी से उन्होंने यह भावभूमि अपनायी थी और लगभग उसी भावभूमि पर जमकर खड़े हुए मिलते हैं। एक और अहम बात यह है कि अपनी इस यात्रा में उन्हें वर्गगत, रुढ़ियों और संस्कारों का आधुनिक प्रवृत्तियों से टकराव महसूस हुआ है और उन्हीं के शब्दों में जद्दोजहद करनी पड़ी।

'जली हुई रस्सी' से शानी ने अपनी कहानी यात्रा प्रारंभ की थी। इस कहानी में शानी ने मुस्लिम जीवन की एक ऐसी झाँकी प्रस्तुत की है जो वेदना और टीस की एक कचोट हृदय पर छोड़ जाती है। इस कहानी में वाहिद के रूप में शानी ने एक अभावग्रस्त निम्नमध्य वर्ग के मुस्लिम युवक का चित्रण किया है, जो अपने अभावों को पाटने और अपनी शान जमाने के लिए रिश्वत आदि बुराइयों का सहाना लेने में संकोच करता है। वाहिद की पत्नी अभावों से जर्जर हो जाती है। उसके तन पर एक भी गहना नहीं रहता। पड़ोस के पुलाव की सौंधी खुशबू से वह जी मसोस कर रह जाती है। दूसरी ओर मुनीर साहब हैं जो गल्ले के व्यापार में हजारों के मालिक बन जाते हैं। दावत रचाते हैं। न जाने कितने मन का पुलाव, कितना जर्दा और कितने बकरे कटते हैं। मुनीर साहब की बीवी कहती हैं : "मीलाद, तीजा और किसी धार्मिक काम में चाहे वे लोग न आयें, पर खाने की दावत हो, तो एक बुलाओ, तो चार आयेंगे।"[23] लेखक ने दिखाया है कि अभाव की स्थिति में भी युवक अपनी खुद्दारी बनाये रखता है। रस्सी भले ही जल गयी हो, पर उसका जल क्या इतनी जल्दी निकल जायेगा। वाहिद मुनीर साहब के घर तो जाता है, पर बिना दावत खाये ही वापस लौट आता है। वहां बैठने-बिठाने अथवा पूछने के लिए किसी की आवश्यकता नहीं थी। लोग उसका स्वागत नहीं करते, तो वह ऐसे ही बिना खाए वापस लौट आता है। वापस आकर अपनी खीज सफिया पर उतारता है : "मैं ऐसी दावतों में नहीं जाता, यह जानकर भी तुम ऐसे सवाल करती हो? हमने क्या पुलाव नहीं खाया? जिसने न देखा हो, वह इन सालों के यहाँ जाये।"[24] इस प्रकार जीवन की विषम परिस्थितियों का लेखक ने अच्छा चित्रण किया है। मुनीर साहब उच्च वर्ग के यहाँ दावत की थालियाँ भेजते हैं, पर अधिक विषमता के कारण वाहिद जैसों

की उपेक्षा करते हैं। इसी बात की फांस वाहिद के हृदय में है। अभावों ने वाहिद को झकझोड़ दिया था। जो वाहिद पहले जुमे के अलावा कभी भी मस्जिद की ओर रूख नहीं करता था, वही वाहिद पांचों वक्त की नमाज पढ़ने लगा।

स्पष्ट है कि शानी ने अपनी कहानियों में मुस्लिम जीवन के विभिन्न पहलुओं को बखूबी चित्रित किया है। उन्होंने अपनी कहानियों में उन मुस्लिम परिवारों का चित्रण किया है जो नवाबी ठाठ-बाट की बू को तो नहीं त्यागते पर वे परिस्थिति वश लाचारी का जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

हमारे देश का संविधान धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रीयता का द्योतक है और इसमें सांप्रदायिक भेदभाव को जड़मूल से उखाड़ फेंकने की भरसक कोशिश की गई है फिर भी कहीं-कहीं यह भेदभाव नजर आ ही जाता है। जिस देश में धर्म और जाति के नाम पर स्कूल-कॉलेज अलग-अलग खोले जा सकते हैं, वहां छात्र-प्रवेश तथा नियुक्तियों के मामले में भेदभाव क्यों नहीं होगा। स्वातंत्र्योत्तर भारत में मुसलमानों को भी कहीं-कहीं इस भेदभाव का शिकार होना पड़ रहा है। कुछ इसी प्रकार की मानसिक कचोट एहसान महसूस करता है शानी की 'एक कमरे का घर' कहानी में। वह सोचता है : सब आगे निकल गये.... ब्रज भूषण और बाल कृष्ण जैसे गधे, रमेश और सेठी जैसे खिलंदरे और यहाँ तक कि लक्ष्मीनारायण जैसे अहमक भी, सिर्फ वही इस दौड़ में पीछे छूट गया है – कहीं बहुत पीछे... बहुत।''[25] अब जब कुरैशी उसे इसका कारण बताता हुआ कहता है, "असल में इसकी जड़ कहीं और है.... सिर्फ संविधान में मिलकर ही तो आप किसी मुल्क को सेक्युलर नहीं बना सकते। उस मनोवृत्ति का आप क्या करेंगे कि आपका एम होना ही सबसे बड़ी अयोग्यता मान लिया जाये...?[26] तो एहसान एकदम से चौक उठता है। सहसा उसे लगा कि कुरैशी ने झूठ नहीं कहा और अपने आप ही उसका विश्वास जमने लगा कि आगे नहीं बढ़ पाया, उसका कारण यही है कि एम है वरना....।"[27]

शानी हिंदी के ऐसे पहले लेखक हैं जिन्होंने विभाजन के शिकार भारतीय मुसलमानों की त्रासदी को अपनी कहानियों और उपन्यासों के माध्यम से व्यक्त किया है। दूसरी ओर उनकी रचनाओं में मुस्लिम समाज का चित्रण प्रमुखता से हुआ है। शानी ने इस प्रकार के अनेक उपन्यासों की रचना की है, जिसमें 'कस्तूरी' (1960), 'पत्थरों में बंद आवाज' (1964), 'काला जल' (1965), 'नदी और सीपियाँ' (1970), 'एक लड़की की डायरी' (1980), 'फूल

तोड़ना मना है' (1980), 'साँप और सीढ़ी' (1983) प्रमुख हैं। इन सबमें मुख्य रूप से 'काला जल' शानी का अब तक सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपन्यास है, साथ ही वह स्वातंत्र्योत्तर काल के हिंदी के महत्वपूर्ण उपन्यासों में से एक है। यह उपन्यास बस्तर के दो मुस्लिम परिवारों की तीन पीढ़ियों की कहानी कहता है। इन दो परिवारों में से एक केंद्रीय परिवार मिर्ज़ा करामतबेग का है, वाचक का परिवार गौण है। इन दोनों परिवारों का प्रारंभ खुशहाली से होता है, किंतु परिणति बदहाली में होती है। दोनों परिवार क्रमशः टूटते जाते हैं, दयनीय हो जाते हैं। दोनों परिवारों में घुटन क्रमशः सघनतर होती जाती है। 'काला जल' का प्रतीक एक स्तर पर इस टूटन-घुटन और सड़न को व्यक्त करता है।

मिर्ज़ा करामतबेग के परिवार का निवास जगदपुर में मोती तालाब के किनारे है। मोती तालाब का वर्णन करते हुए उपन्यासकार ने लिखा है, "मोती तालाब के सिवार-ढके काले जल से भीगकर आती वह बिसायध-भरी हवा और अमराई-पार के नल से जल का गगरा लेकर लौटती वही प्रौढ़ा, जवान या अधेड़ औरतों की राह चलती ठिठोलिया..."[28] मोती तालाब के इस विचरण में एक विरोधात्मक स्थिति है। तालाब का नाम मोती है और उसका पानी काला है। मिर्ज़ा करामत बेग का परिवार भी ऐसी ही विरोधी स्थिति में है। शानी ने दो भिन्न जातियाँ जो पहले एक होकर रहना चाहती थी वही देश के बँटवारे के साथ दो देशों की सीमा रेखा में बँट गई थी, उसके इस दर्द को अपने रचना में साकार करते हुए शानी ने भारतीय समाज को अपने विषय में सोचने के लिए विवश किया। शानी का उपन्यास 'काला जल' इसी विभीषिका को प्रस्तुत करता है। डॉ. रमाकान्त लिखते हैं : "काला जल को स्वाधीनता प्राप्ति के बाद लिखे गए कतिपय चुनिन्दा उपन्यासों में परिगणित किया जाता है। मुस्लिम जीवन का प्रामाणिक दस्तावेज कहा जाने वाला यह उपन्यास इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि इसमें पहली बार हिंदी में मुसलमान जीवन की व्यथा-कथा लिखी गई और इस कदर प्रामाणिक की समस्त विद्रूपताएँ उभर आएँ।"

मेहरून्निसा परवेज आधुनिक हिंदी साहित्य की लेखिकाओं में बहुचर्चित नाम है। सुसंस्कृत, व्यक्तित्व-संपन्न, प्रगतिशील विचारधारा की 'मुस्लिम स्त्री', इस नाते उनका अलग एवं विशेष स्थान है। हिंदी साहित्य में मुस्लिम मध्यवर्गीय चेतना की लेखिका के रूप में मेहरून्निसा परवेज की एक अलग पहचान है। उन्होंने बड़ी सरलता और ईमानदारी से जीवन की विविध समस्याओं का

यथार्थवादी चित्रण किया है। साथ ही रागात्मकता और भावुकता को भी अपने लेखन का अनिवार्य तत्व मानकर ग्रहण किया है। लेखिका ने अपने साहित्य में मुस्लिम समाज में व्याप्त अनाचार, दिनोंदिन टूटते जीवन-मूल्य और आर्थिक विपन्नता का सजीव चित्रण किया है। नारी के पीड़ा भरे जीवन के प्रति लेखिका को गहरी सहानुभूति है। अपने साहित्य में उन्होंने नारी की व्यथा-कथा को अनेक दृष्टियों से देखा और प्रस्तुत किया है। उन्होंने जो भी लिखा है, वह स्वयं भोगा, देखा और जाना है। मेहरून्निसा परवेज ने अपने निजी जीवन में जिस ज़हर की कडुवाहट का अनुभव किया उसकी झलक उनकी रचनाओं में परिव्याप्त हुए बिना न रही। उनका लेखन जीवन की समग्रता का प्रस्तुतीकरण लेकर सामने आता है।

मेहरून्निसा ने सन् 1962 से लिखना आरंभ किया। सन् 1963 में पहली कहानी 'पांचवीं कब्र' 'नई कहानियाँ' पत्रिका में छपी थी। मेहरून्निसा का साहित्य सहेतु प्रयास का पुल है। उन्होंने जो कुछ भी लिखा है वह सप्रयोजन लिखा साहित्य है। उनका यह वक्तव्य इसका प्रमाण है - "छोटे-छोटे सुख को जी लेना, छोटे-छोटे दुख में रो लेना और फिर धुले हुए चेहरे लेकर नयी सुबह को आँख खोलना ही शायद जिंदगी है। मुझे तो कभी वक्तव्य देना नहीं आया। मेरी कहानियाँ यदि अपना परिचय खुद न दे पायी तो समझूँगी, मैंने जो जिया, जो पाया सब झूठ के सिवा कुछ भी नहीं।"[29]

मेहरून्निसा परवेज की महत्वपूर्ण कृतियाँ निम्नलिखित हैं : आदम और हव्वा (1972), टहनियों पर धूप (1977), गलत पुरुष (1978), फाल्गुनी (1978), अंतिम चढ़ाई (1982), ढहता कुतुबमीनार (1983), आदि इसके प्रमुख कहानी संग्रह हैं। प्रमुख उपन्यासों में आँखों की दहलीज (1968), उसका घर (1972), कोरजा (1977), अकेला पलाश (1981), पत्थर वाली गली (1978) हैं।

मेहरून्निसा परवेज़ की समस्त कहानियों का कथा बीज पारिवारिक सम्बंध और परिवार आदि हैं। 'आदम और हव्वा' कहानी संग्रह में संग्रहित कहानियों के आधार पर स्पष्ट होता है कि लेखिका ने कथाओं का मूलाधार पारिवारिक सम्बंधों का विश्वेषण माना है। 'शनाख्त' कहानी में माँ-बेटी के अभाव ग्रस्त जीवन का चित्रण है। माँ-बेटी की विडम्बना यह भी है कि सेक्स का भूखा बाप बेटी को वासना का शिकार बनाना चाहता है। पारिवारिक विघटन की घोर विडम्बना को यह कहानी चित्रित करती है। 'सिर्फ एक आदमी' कहानी में पिता

के कारण बेटी प्रेमी से विवाह नहीं कर सकती थी, अतः बेटी पिता की मृत्यु की कामना करती है। 'उसका घर' कहानी में यही समस्या है, अंतर सिर्फ इतना है कि पुत्री माँ की मृत्यु का इंतजार करती है। दाम्पत्य जीवन की समस्याओं के साथ अंधविश्वास, महानगरीय समस्या, विधवा समस्या, दहेज की समस्या का अंकन इनकी कहानियों में बारीकी से हुआ है।

'हत्या एक दोपहर की', 'खामोशी की आवाज', टहनियों पर धूप', नंगी आँखों वाला रेगिस्तान' कहानियाँ नारी हृदय का आक्रंदन है जो अपने पति द्वारा छली गयी है, जिन्हें स्नेह के बदले हमेशा पति की हिकारत ही मिली, चाहे पति हो या प्रेमी, जिन्होंने उन्हें समझने में गलती की हैं। 'टोना' 'अंधश्रद्धा' का चित्रण करने वाली कहानी है। 'बिके हुए क्षण', 'सलाखों फँसा आकाश' कहानी में बताया गया है कि अपने कहने वाले रिश्ते भी खुदगर्जी में अंधे होकर धोखा देते हैं, माँ भी अपनी बेटी के हिस्से का सुख भी लेने में गैर नहीं मानती। 'आकाशनील', 'रावण', 'बौना मौन' आदि कहानियाँ स्त्री के अलग-अलग दु:खों का दस्तावेज है। नारी के दुख के अनेक पहलू हैं जिसे केवल स्त्री ही समझ सकती है। इन कहानियों के संबंध में लेखिका का यह वक्तव्य ही इनकी पहचान कराता है, "मेरी कहानियाँ हादसों का जमघट है जो कण-कण जमकर पहाड़ हो गया है। उम्र का वह उतार-चढ़ाव है, हादसों की वह धूप-छांव है जो उम्र के साथ घटती-बढ़ती है। जिंदगी के बेतरतीब दिन, जिन्हें मेरी कलम ने हमेशा सही करना चाहा, पर जिन्दगी की यह पुस्तक कभी सही नहीं हुई क्योंकि उसके कई-कई पृष्ठ गुम हो गये, नष्ट हो गये।"[30]

'आँखों की दहलीज' मेहरून्निसा का पहला उपन्यास है। इसमें नारी जीवन के विविध चरित्रों को उभारा गया है। नारी जीवन की सार्थकता उसके स्त्रीत्व में नहीं, मातृत्व में है, यही लेखिका की इस उपन्यास में मान्यता है। यह उपन्यास नारी जीवन के अधूरेपन को लेकर चलता है, जिसमें नारी जीवन के अंतरमंथन को, उसके जीवन की निराशा, छटपटाहट को लेखिक ने सच्चाई के साथ चित्रित किया है। तालिया माँ न बन सकने की कसक तथा जावेद के साथ शारीरिक संबंधों का तनाव लिए एक अधूरी नारी है। और अंत में वह अपनी निराशाजनक पराजय, अपने जीवन की असार्थकता को स्वीकार करते हुए जमीला एवं शमीम को जोड़कर किसी अनभिज्ञ दिशा में बढ़ जाती है।

'उसका घर' मेहरून्निसा परवेज का एक मध्यमवर्गीय ईसाई परिवार की

आंतरिक टूटन पर आधारित उपन्यास है। यह उपन्यास वर्तमान खोखली पारिवारिक व्यवस्था तथा भ्रष्ट समाज से जुड़ी एक दुखद सच्चाई का दस्तावेज है। डॉ. रामदरश मिश्र ने इस उपन्यास के सम्बंध में लिखा है कि – "यह उपन्यास न तो नारी की यातना को बहुत गहराई से उभारकर हमें उद्विग्न कर पाता है और न बौद्धिक धरातल पर कोई समकालीन गहरा प्रश्न उभारता है। कारण यह है कि उपन्यास के केंद्र में स्थित एलमा बहुत ही सीधी, समर्पणमयी और इकहरे व्यक्तित्व की नारी है। वह सब कुछ चुपचाप सह लेती है। इसलिए उसके भीतर प्रश्न में से प्रश्न, या यातना में से यातना या चोट में से विद्रोह फूटता ही नहीं। वह चुपचाप तलाक सह लेती हैं, चुपचाप आहुजा की अंकशायिनी बनना स्वीकार कर लेती हैं। और पाठक को लगता है कि ऐसे पात्रों की नियति यही हो सकती है।"[31]

'कोरजा' लेखिका का श्रेष्ठ उपन्यास है जिसमें मुस्लिम संस्कृति और जीवन का व्यापक चित्रण है। कोरजा का आशय अनाज की उन बालियों से हैं जो खेत कट जाने के बाद वहां पड़ी रहती हैं और जिन्हें गरीब लोग बटोरकर ले जाते हैं। इस उपन्यास के पात्र मध्यवर्गीय मुस्लिम परिवार से लिए गए हैं। बस्तर और जगदलपुर के नाम छोड़ दिए जायें तो इन्हें देश के किसी भी भाग के विभिन्न मुस्लिम वर्ग का माना जा सकता है। पति-पत्नी के मध्य तनाव, रात-दिन की अशांति, मुस्लिम समाज की जड़ रुढ़ियाँ उपन्यास में चित्रित हैं। सेक्स कुंठा का एक नया रूप भी यहां वर्णित है। कहीं बाप की जवान बेटी पर नज़र है, तो कहीं माँ-बेटी दोनों एक ही पुरुष से जुड़ी हैं। जिंदगी के विविध रंग-रूप और समस्याएँ उपन्यास में चित्रित हैं। यहां लेखिका की कला का उन्नयन दृष्टिगोचर होता है।

मेहरून्निसा जी के कृतित्व के विवेचन विश्लेषण से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उनका कृतित्व उनके व्यक्तित्व से अलग नहीं है। उन्होंने अपने जीवन का अनुभव अपनी रचनाओं में व्यक्त किया है। भले ही कथा-साहित्य में विषय की पुनरावृत्ति से नीरसता का अनुभव होता है लेकिन ये विषय समसामयिक हैं जो आज के मुस्लिम समाज को नई दिशा प्रदान कर सकते हैं।

मुस्लिम हिंदी साहित्यकारों की श्रेणी में अब जिस साहित्यकार का नाम आता है वह नाम असगर वजाहत जी का है। मुस्लिम हिंदी साहित्यकारों में असगर वजाहत विशिष्ट स्थान रखते हैं। उन्होंने अपनी साहित्यिक प्रतिभा का परिचय

नाटक, उपन्यास, कहानी, लघुकथा, यात्रावृत्तांत, पटकथा-लेखन, आलोचनात्मक ग्रंथों एवं अनुदित रचनाओं के माध्यम से दिया है। इसके साथ-साथ वह पत्रकार, प्राध्यापक एवं चित्रकार भी हैं। विभिन्न क्षेत्रों में कार्य करने के कारण सांस्कृतिक सम्मान, सांप्रदायिक सद्भाव पुरस्कार एवं साहित्य से जुड़े कई पुरस्कार और सम्मान उन्हें प्राप्त हो चुके हैं। वजाहत कुशल रंगकर्मी भी हैं।

21वीं सदी के इस दौर में जहां साम्प्रदायिकता, धर्मांधता, शोषण, भ्रष्टाचार आदि अपनी चरम सीमा पर है वहां वजाहत का साहित्य इन समस्याओं से अवगत तो कराता है साथ ही समाधान भी प्रस्तुत करता है। अमन-चैन पर विश्वास करने वाले वजाहत एक खुशहाल समाज का निर्माण करना चाहते हैं। वह ऐसा समाज चाहते हैं - "जहां गरीबी नहीं होगी, अत्याचार नहीं होंगे, शोषण नहीं होगा, हर आदमी को शिक्षा मिलेगी, न्याय मिलेगा, सम्मान मिलेगा।"[32] अपने इस सपने को पूरा करने के लिए वजाहत आज भी प्रयासरत हैं।

असगर वजाहत मूलतः कथाकार हैं। उनके प्रमुख कहानी संग्रह निम्नलिखित हैं - 'अंधेरे से' (पंकज बिष्ट के सहयोग में) (1977), 'दिल्ली पहुंचना है' (1981), 'स्विमिंग पूल' (1990), 'सब कहाँ कुछ' (1991), 'मैं हिंदू हूँ' (2006), इसके अतिरिक्त उन्होंने उपन्यास लेखन में भी अपनी लेखनी चलाई। 'रात में जागने वाले' (कथादेश) (1983), पहर दोपहर (इंडिया टुडे) (1996), 'सात आसमान' (1996), 'कैसी आग लगाई' (2004) उनके प्रमुख उपन्यास हैं।

असगर वजाहत ने अपने आकृष्ट कथा साहित्य के माध्यम से समाज में फैली साम्प्रदायिक ताकतों, क्रूर राजनेताओं, धार्मिक अंधविश्वासों, सामाजिक विद्रूपताओं को जड़ से समाप्त करने का प्रयास किया। स्त्री जीवन से जुड़ी समस्याएं हों या आदिवासी जीवन से, विभाजन की पीड़ा हो या विस्थापन का दंश सब उनके साहित्य के ज्वलंत मुद्दे रहे हैं। वजाहत ऐसे लेखक हैं जिन्होंने देश के उन सीमांत वर्गों को अपनी लेखनी का आधार बनाया जो हाशिए पर ढकेले गए हैं। उस ढकेले गए समाज में एक समाज स्त्री भी है। वजाहत के अनुसार स्त्री की बदहालत की जिम्मेदार केवल भ्रष्ट व्यवस्था नहीं बल्कि उसके प्रति मौजूद पुरानी रुढ़िगत मान्यताएं भी हैं। 'लड़कियाँ', 'अपनी-अपनी पत्नियों का सांस्कृतिक विकास', 'ड्रेन में रहने वाली लड़कियाँ' कहानी इस संदर्भ में उल्लेखनीय है। 'लड़कियाँ' कहानी दहेज प्रथा से प्रताड़ित स्त्री की शोक कथा

है, जिसमें एक स्त्री दहेज के लालच में बुरी तरह जला दी जाती है। उसका अस्तित्व मिटा दिया जाता है। समाज भी उसके मरने पर शोक प्रकट करने की बजाय उसकी अवहेलना करता है। लोगों की प्रतिक्रिया देखिए – "तो फिर लड़की पैदा ही क्यों की? इससे अच्छा था, एक मारूति पैदा कर देता।"[33] 21वीं सदी के इस दौर में भी हम स्त्री संबंधी कुछ प्रश्नों के हल नहीं निकाल पाए हैं। आज के बदलते वैज्ञानिक युग ने हमारे जीने के तौर तरीकों को बदला है। समाज में परिवर्तित होते वैज्ञानिक संघर्षों तथा मुद्दों ने लोगों की विचारधारा को प्रभावित किया है। किंतु स्त्री जीवन से संबंधित गंभीर मुद्दे आज भी चिंतन से गायब हैं। स्त्री के प्रति समाज की मानसिकता में अभी भी बड़ा बदलाव अपेक्षित है।

वजाहत साहब ने मौजूदा समाज में दहशत भरे सांप्रदायिकता के मसले को कहानियों में उभारा है। भले ही उन्होंने अपनी कहानियों में बाबरी मस्जिद, गोधरा कांड के प्रसंग को प्रत्यक्ष रूप में नहीं उठाया किंतु 'शाह आलम कैम्प की रुहें', 'मुश्किल काम', 'जख्म' आदि कहानियाँ बाबरी मस्जिद और गोधरा कांड के परिणामस्वरूप होने वाली त्रासदी को बयान करती हैं। ये कहानियाँ आजादी के बाद के सबसे बड़े सांप्रदायिक दंगों के दौरान जख्मी हुए पीड़ितों के दर्द को दर्ज करती हैं। दंगो में कितने बेकसूरों को जला दिया गया। कितने लोग तलवार की धार के शिकार हुए। कितनी स्त्रियों की अस्मत लूटी गई। इन सब घटनाओं के पीछे राजनेता और पूँजीपति वर्ग के लोगों का हाथ रहता है। जिसका उद्देश्य आपस में दंगा कराकर जनता का ध्यान मूल मुद्दों से भटकाना है। वजाहत ने नेताओं पर व्यंग्य करते हुए लिखा है, "अगर तुम्हारे दो पड़ोसी आपस में लड़ रहे हैं, एक-दूसरे के पक्के दुश्मन हैं तो तुम्हें उन दोनों से कोई खतरा नहीं हो सकता। उसी तरह हिंदू और मुसलमान आपस में लड़ते रहे तो सरकार से क्या लड़ेंगे।"[34] सत्ता में कभी एक व्यक्ति रहता है तो कभी दूसरा अर्थात् नेताओं का आना-जाना लगा रहता है, किंतु थोड़े समय में नेता लोग स्वार्थपूर्ति हेतु घृणा और द्वेष फैला देते हैं। वजाहत का साहित्य हिंसा-प्रतिहिंसा, धर्म-सांप्रदायिकता का चित्र प्रस्तुत करता है। उनका साहित्य इंसानियत की तलाश करने की प्रेरणा देता है जो आज न के बराबर है। चंद रुपयों के लिए आज का युवक कुछ भी करने को तैयार हो जाता है। उसके लिए किसी मंदिर या मस्जिद में पत्थर फेंकना और हिंसा भड़काने के लिए अफवाहों को फैलाना चंद लम्हों का काम है। किंतु इसके

परिणामस्वरूप होने वाली त्रासदी और हजारों बेकसूरों की हत्या के बारे में वह कतई नहीं सोचता। वजाहत सांमती ताकतों की बर्बरता तथा हीन मानसिकता से स्वयं परिचित हैं और समाज को भी परिचित कराना चाहते हैं। वजाहत एक ऐसे रचनाकार हैं जो परंपराओं और रुढ़ियों से लगातार संघर्ष करके नई मान्यताओं और प्रतिमानों की सृष्टि करते हैं जोकि मानव कल्याण के लिए आवश्यक है।

समकालीन उपन्यासकार अब्दुल बिस्मिल्लाह जी राही मासूम रजा के बाद के उपन्यासकारों की परंपरा में आते हैं। बहुमुखी प्रतिभा संपन्न अब्दुल बिस्मिल्लाह जी कवि और साहित्यकार होने के साथ कलाकार, पत्रकार, विचारक, अनुवादक, संपादक, सामाजिक कार्यकर्ता और प्राध्यापक भी हैं। इनकी रचनाओं के कथपात्र वर्तमान विसंगतियों से गुजरते हुए आम आदमी के अस्तित्व पर गहराने वाले संकटों के विविध कणों को प्रकट करते हैं।[35]

अब्दुल बिस्मिल्लाह जी ने अपने साहित्यिक जीवन की शुरुआत उपन्यासों से की हैं। इनके प्रमुख उपन्यास हैं, 'जहरबाद', 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया', 'दंतकथा', 'समर शेष है', 'मुखड़ा क्या देखें' और 'रावी लिखता है।'

कहानी संग्रह निम्न हैं – 'अतिथि देवो भव', 'रफ रफ मेल', 'कितने कितने सवाल', 'रैन बसेरा', 'टूटा हुआ पंख' और 'जीनिया के फूल।'

'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' सोवियत भूमि नेहरू पुरस्कार से सम्मानित कृति है। इस उपन्यास में लेखन ने बनारस के अभावगस्त बुनकरों के जीवन से जुड़ी समस्याओं पर विशेष रुचि दिखाई है। इसकी कथावस्तु समाज के दो प्रमुख वर्ग-शोषक और शोषित पर केन्द्रित है। उपन्यास का शोषित वर्ग पूरा ही मुस्लिम समाज है जिसकी गरीबी पाठकों के आँखों में प्रतिबिम्बित होती है। बुनकरों की विडम्बना इन शब्दों में स्पष्ट है – "जो उँगलियाँ अनन्त रेशमी सौंदर्य को सिर जाती हैं, उन्हीं के घर की औरतों की एक मामूली सी कामना-एक सस्ती बनारसी साड़ी पहनने की उनकी आकांक्षा कभी पूरी नहीं होती।"[36] इसके अतिरिक्त इस उपन्यास में नारी जीवन से जुड़ी समस्या, प्रेम विवाह, तलाक पद्धतियों का पर्दाफाश हुआ है। मतीन, अलीमन, अल्ताब, बशीर जैसे पात्रों के जरिए उपन्यासकार ने बुनकर बिरादरी के आर्थिक शोषण, सामाजिक कुरीतियों को स्पष्ट किया है।

'मुखड़ा क्या देखें' बिस्मिल्लाह जी का बहुचर्चित उपन्यास है। इस उपन्यास में हिंदू-मुसलमान सांप्रदायिक दंगा प्रमुख विषय बनकर सामने आया है।

सांप्रदायिक वैमनस्य के कारण अली-चूड़िहर के परिवार को अपना गांव छोड़कर मध्य प्रदेश के एक इलाके में जाकर बसना पड़ता है। किंतु अली को अपने गांव की याद सताती रहती है इसलिए वह कुछ वर्ष पश्चात् अपने गांव में लौट आता है। गांव पहुँचने पर वहां का संपूर्ण नक्शा बदला हुआ पाता है। उसके सारे शत्रु संसार ही छोड़कर जा चुके थे। इस उपन्यास में अब्दुल बिस्मिल्लाह जी ने स्वातन्त्र्योत्तर भारतीय समाज के भीतरी हालात, कठिनाइयों और दबे-कुचले सपनों का चित्रण किया है। इसके अलावा सृष्टि नारायण पांडे और रामनारायण पांडे के माध्यम से शोषक की मानसिकता को उभारने का प्रयास किया है।

'जहरबाद' अब्दुल बिस्मिल्लाह जी का आत्मकथात्मक उपन्यास है। इस उपन्यास में मध्यप्रदेश के मांडला जिले के आदिवासी हिंदू और मुस्लिम परिवारों की जीवन स्थितियों, खान-पान, रस्म-रिवाज, आदि का वर्णन किया है।[37] हिंदू-मुस्लिम दोनों समाजों में मौजूद अस्पृश्यता की स्थिति को उभारा गया है। इस उपन्यास का वाचक जो एक नीच जाति से है एक बार वह एक गोंड परिवार में गया, जहां उसका स्पर्श एक खाद्य सामग्री से हो जाता है जिसे हिंदुओं की उस गरीब नीच जाति ने भी उसके द्वारा छू जाने से फेंक दिया। अब्दुल बिस्मिल्लाह जी ने वाचक के माध्यम से मुस्लिम परिवार की गरीबी का कुछ इस प्रकार वर्णन किया है - "मैं महुवे के रस में पगे उबले हुए चने खा रहा था और घर की स्थिति पर कुछ सोचने की कोशिश कर रहा था, ठीक उसी समय मैंने देखा अब्बा भी मेरी ही तरह चने खा रहे थे, पर अम्मा सिर्फ फुले हुए महुए कचर-कचर चबा रही थी।"[38]

'समर शेष है' अब्दुल बिस्मिल्लाह जी का आत्मकथात्मक उपन्यास है जो उनके जीवन संघर्षों से जुड़ी हुई है। साथ ही इस उपन्यास में लेखक ने इलाहाबाद के आसपास के बलातुर इलाके की निम्नवर्गीय मुस्लिम परिवार के संघर्ष की गाथा कही है।[39] इस उपन्यास में गरीब, अशिक्षित, मुस्लिम समाज की स्थितियों, स्त्री जीवन से जुड़े संघर्षों तथा नौटंकी से जुड़ी समस्याओं पर जोर दिया गया हैं।

'जहरबाद, झीनी-झीनी बीनी चदरिया, 'समर शेष है', 'मुखड़ा क्या देखे' जैसे उपन्यास सामाजिक यथार्थ से जुड़ी हैं। इन सभी उपन्यासों में उपन्यासकार गरीब समाज को सताने वाले निर्मम, क्रूर और स्वार्थी मनुष्य का चित्रण करता है। अब्दुल बिस्मिल्लाह जी ने मुस्लिम समाज की आर्थिक, धार्मिक, शैक्षिक

स्थिति की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित किया है। अब्दुल जी एक ओर मुस्लिम समाज की समस्याओं को उद्घाटित करते हैं तो दूसरी ओर उसका हल निकालने का भी प्रयास करते हैं।

इसी प्रकार अब्दुल बिस्मिल्लाह जी ने अपनी कहानियों में भी सांप्रदायिकता पर अपनी लेखनी चलाई। 'दंगाई' कहानी में पहले धार्मिक बंधन थे। लेकिन आगे चलकर वे सभी मिट जाते हैं। गांव में जब रामलीला होता है तो उसमें हिंदुओं के साथ-साथ मुसलमान भी हिस्सा लेते हैं। एक बार राम-लक्ष्मण के पात्र को लेकर ब्राह्मणों ने एतराज किया तो बशीर ने समझौता किया। इस बारे में बसंत का मित्र का मित्र ननकू उसे कहता है, "इस बशीर ने तो भाई बड़ा काम किया। उस साल यहाँ खून खराबा होने से बचा।"[40] यहाँ गांव की एकता में चल रहे सांस्कृतिक आयोजनों में भी सभी भाई-चारे का व्यवहार करते हैं। यहाँ जाति-धर्म का भेदभाव नहीं किया जाता है। वर्तमान में कुछ लोग फसाद मचाना चाहते हैं, लेकिन आज भी उन्हें उतनी कामयाबी नहीं मिल रही है, जितना अपेक्षित था।

'आधा फूल, आधा शव' कहानी में भी सांप्रदायिकता की समस्या को उठाया गया है। मुस्लिमों के कब्रिस्तान की जगह को लेकर पड़रौना के हिंदू-मुस्लिमों में संघर्ष हो जाता है। 'दूसरा सदमा' कहानी में रहमत चायवाले की दुकान पर देश की सांप्रदायिकता को लेकर चर्चा चल रही है। देश में मुस्लिमों की बढ़ती आबादी को हिंदू लोग घटाना चाहते हैं। रहमत चायवाले की दुकान पर मुल्क के अहम प्रकरण की बातें पूरी नहीं हो पाती, तो लोग नुक्कड़ों पर जोर-आजमाइश करते हैं। वहां का माहौल भी गर्म बनता है। लेखक ने उसे 'एहतेजाज' की संज्ञा दी है। उसे सफल बनाने के लिए मस्जिद में सुअर का गोश्त गिराया गया और उसे नापाक कर दिया। साथ ही किसी मंदिर में जली हुई घास दिखाई पड़ी। जिससे भयानक अग्निकांड की कल्पना की जा सके। इससे एक जगह फसाद होता तो, दूसरी जगह उसकी प्रतिक्रिया में फसाद होता है और आसपास का वातावरण भीतर-ही-भीतर सुलगने लगता है। लोगों को अपने-आप ही अपनी नागरिकता पर संदेश हो रहा है। इस प्रकार इस कहानी में सांप्रदायिकता की लपटों में झुलसते दोनों धर्मों के लोग दिखाई पड़ते हैं। अब्दुल बिस्मिल्लाह की अन्य कहानियों 'नया कबीरदास', 'दंगाई', 'जीना तो पड़ेगा', 'पेड़', 'अलिया धोबी' और 'पाव भर गोश्त' आदि कहानियों में भी हिंदू-मुस्लिम के सांप्रदायिक दंगों का चित्रण मिलता है।

अब्दुल बिस्मिल्लाह के साहित्य में वास्तविक और यथार्थ रूप से समाज के सभी अंगों और दृष्टिकोण का सशक्त चित्रण मिलता है। उसमें अपने और पराएपन का भाव नहीं है। उन्होंने दोनों धर्मों की अच्छाई और कुरूपता का चित्रण किया है। जहां एक ओर बालविवाह, अनमेल विवाह, बहु विवाह, विधवा की दयनीय दशा, संयुक्त परिवार का विघटन, टूटन, अवैध यौन संबंध, नारी शोषण, जाति व्यवस्था, आतंक, अन्याय, पिछड़ापन, गरीबी और व्यसनाधीनता है वहां दूसरी ओर रुग्ण मान्यताओं के प्रति विद्रोह, नई चेतना, सौहार्द्र, नैतिकता, मानवीय संवेदना, नारी चेतना और प्रेम भावना दिखाई देती है।

मुस्लिम हिंदी साहित्यकारों की कड़ी में अगले साहित्यकार शकील सिद्दीकी हैं। शकील सिद्दीकी ने मुख्य तौर पर अनुवाद पर काम किया है। इन्होंने उर्दू कहानियों और उपन्यासों का हिंदी में अनुवाद किया है। रूसवा के 'उमराव जान अदा' का हिंदी में अनुवाद शकील सिद्दीकी ने ही किया है। इसके अतिरिक्त इनके प्रमुख अनुवाद निम्नलिखित हैं - 'अतिशे रफ्ता', 'बेजुबान आँखें', 'गोदावरी', 'अधेरा पग', 'परी खाना', 'रामलाल की चुनिंदा कहानियाँ', 'रशीद जहां की कहानियाँ', 'अब इंसाफ होने वाला है' आदि।

अंगारे (कथा संकलन) शकील सिद्दीकी का एक अनुपम जबरदस्त अनुवाद है। वह स्वयं लिखते हैं - "उर्दू के अत्यंत चर्चित विवादास्पद कहानी-संग्रह 'अंगारे' का हिंदी में अनुवाद करके मुझे आत्मिक सुख प्राप्त हुआ है, जैसे किसी पुराने कर्ज को चुकाने का अवसर मिल गया हो। उन विचारों और विश्वासों से मैं बँधा रहा हूँ।"[41] 'अंगारे' में नौ कहानियाँ तथा एक एकांकी का संकलन है। यह संकलन 1932 में लखनऊ से छपा था। इस संकलन पर उस समय की अंग्रेजी सरकार ने लोगों के विरोध के कारण प्रतिबंध लगा दिया था। शकील सिद्दीकी जी ने इस अंगारे कहानी के संकलन को अनुवाद करके हिंदी जगत के पाठकों को इन विद्रोही तथा क्रान्तिकारी लेखकों के लेख से परिचित कराया। वो कहते हैं कि, "अंगारे की कहानियाँ आज भी बेचैन करती हैं, धार्मिक उन्माद तथा सामाजिक रुढ़ियों के विरुद्ध पाठकों को आंदोलित करने की सामर्थ्य अभी उनमें बाकी हैं। बुरे की निर्भीक आलोचना का साहस वो अब भी देती हैं। अर्थात् 'अंगारे' आज भी प्रासंगिक है।"[42]

इसके अलावा अनवर सुहैल ने मुस्लिम समाज की संस्कृति को अपने कथा साहित्य में व्यापकता से चित्रित किया है। मुस्लिम हिंदी साहित्यकारों के

समकालीन लेखकों में अनवर सुहैल एक प्रसिद्ध नाम है। इन्होंने अपनी कहानियों और उपन्यास द्वारा हिंदू-मुस्लिम सौहार्द्र तथा एकता को प्रतिष्ठित करने की कोशिश की है। अनवर सुहैल का जन्म 9 अक्टूबर 1964 को जांजगीर छत्तीसगढ़ में हुआ था। इनके कहानी संग्रह निम्न हैं – 'कुंजड़-कसाई', 'ग्यारह सितंबर के बाद', 'चहलयुम', 'गहरी जड़ें'। इन्होंने एक उपन्यास 'पहचान' भी लिखा है।

अनवर सुहैल ने अपनी कहानियों में मुस्लिम समाज की संस्कृति का बारीकी से वर्णन किया है। 'दहशतगर्द' कहानी में मिलाद-उन-नबी का जिक्र किया गया है। इसी कहानी में मूसा मियाँ के बारे में कहा गया है कि – "मिलाद शरीफ की शान हुआ करते थे धुनिया इसा मियाँ। वह पैगम्बर हजरत मुहम्मद साहब की शान में 'नात-शरीफ' बहुत मीठी आवाज में गाया करते थे।"[43] इस प्रकार धार्मिक त्योहार से इस्लाम की संस्कृति को उजागर किया है।

भारत के विभाजन के बाद मुस्लिम समाज को एक अलग पहचान मिली। यहां मुस्लिम समाज को शक की निगाह से देखा जाता रहा है। इसलिए मुस्लिम समाज आज भी अपने समाज के मुहल्ले में जाकर बसना चाहते हैं, जिससे अपने तीज-त्योहार अपने मर्जी से मना सके। अनवर सुहैल की 'नहीं मानेंगे, नहीं रहेंगे अब्बा' कहानी में इस यथार्थ का चित्रण किया गया है। इस कहानी में अनवर सुहैल कहते हैं – "असगर भाई को यह तो पसंद नहीं कि कोई उन्हें पाकिस्तानी कहे, किंतु इब्राहिमपुरा में आकर उन्हें वाकई सुकून हासिल हुआ था। यहाँ अपनी हुकूमत है। गैर दबकर रहते हैं। इत्मीनान से हरेक मजहबी तीज-त्योहारों का लुफ्त उठाया जाता है। रमजान के महीने में क्या छटा दिखती है। यहाँ पूरे महीने उत्सव का माहौल रहता है। चाँद दिखा नहीं कि हंगामा शुरू हो जाता है। 'तराहवी' की नमाज में भीड़ उमड़ पड़ती है।"[44]

अनवर सुहैल की 'फत्ते भाई' कहानी में मुहर्रम का सही चित्रण किया गया है। इस कहानी में लेखक कहते हैं कि "मुहर्रम की खास शीरनी दूध-मलीदा हुआ करती है। रोटी को चूरा करके उसमें शक्कर मिला कर मलीदा बनाया जाता। यह भी एक ऐसी परंपरा थी, जिसका हवाला इस्लामी इतिहास-कर्मकांड में नहीं मिलता। चावल और चने की दाल की खिचड़ी भी बतती। नगर के बड़े-बड़े सेठ-महाजन और समर्थ मुस्लिम श्रद्धालु एक-एक मन अनाज की खिचड़ी बनवा कर ताजिए के साथ घूमते मज़मे में बंटवाया करते। जगह-जगह शर्बत बांटी जाती। आस-पास की कोयला खदानों में बसे मुस्लिम गैर-मुस्लिम लोग नगर में

ताजिया-दर्शन को आते।"[45] आज मुरर्हम त्योहार का यह दृश्य जैसे समाज से गायब हो गया है।

इस प्रकार अनवर सुहैल ने मुस्लिम संस्कृति को उजागर करते हुए सबके मन में मुस्लिम लोगों के लिए एक स्थान निर्माण करने का सफल प्रयास किया है। इनकी कहानी में इस्लामी संस्कृति के सूक्ष्म चित्रण से न केवल हिंदू समाज, बल्कि हर धर्म के लोग मुस्लिम संस्कृति से परिचित हो जाते हैं।

प्रसिद्ध मुस्लिम नारी लेखका नासिरा शर्मा आधुनिक महिला साहित्यकारों में एक विशिष्ट स्थान रखती हैं। उनका जन्म 22 अगस्त सन् 1948 में इलाहाबाद के एक समृद्ध मुस्लिम परिवार में हुआ था। उन्होंने फारसी भाषा और साहित्य से एम.ए. किया। हिंदी तथा उर्दू के अतिरिक्त अंग्रेजी, पश्तो और फारसी भाषा पर भी नासिरा की बहुत ही अच्छी पकड़ है। वे ईरानी समाज, उनकी राजनीति तथा कला और संस्कृति की विशेषज्ञ मानी जाती हैं। नासिरा शर्मा ने तीन वर्षों तक जामिया मिल्लिया इस्लामिया में अध्यापन का कार्य भी किया।

नासिरा का गौरवर्ण, सुदृढ़ शरीर जितना सुन्दर और आकर्षक है, उनका आंतरिक व्यक्तित्व भी उतना ही प्रभावशाली है। उनके स्वभाव की सहजता, सरलता, उदारता और हंसमुख व्यक्तित्व अनायाम ही ध्यानाकर्षित करता है। उनकी छवि एक बेहद ही स्पष्टवक्ता की रही है। खरी-खरी कहने की उनकी आदत उनकी रचनाओं में भी परिलक्षित होती है।

आतिथ्य सत्कार उनके स्वभाव का हिस्सा है। वे किसी अन्य भारतीय महिला की ही भांति भारतीय परम्पराओं में दृढ़ विश्वास रखती हैं। उनके अनुसार आराधना व्यक्ति में बल और ऊर्जा का संचार करती है। उनका जीवन धर्मनिरपेक्षता का पर्याय है। मुस्लिम होते हुए भी उन्होंने हिंदू परिवार की बहू बनना स्वीकार किया। अपने निजी जीवन में वह इस्लाम को मानती हैं, किन्तु कभी अन्य धर्मों की मान्यताओं को मानने, उनका पालन आदि करने से तनिक भी गुरेज नहीं किया।

नासिरा की पहली कहानी 'राजा भैया' तब प्रकाशित हुई जब वे महज सातवीं कक्षा में थी। उन्होंने लेखनी में आजमायिस, बाल्यावस्था से ही शुरू कर दिया था, परन्तु विधिवत लेखन का आरंभ वर्ष 1975 से हुआ। इस वर्ष उनकी कहानी' बूतखाना' सारिका के नवलेखन अंक में तथा 'तकाजा' कहानी मनोरमा पत्रिका में प्रकाशित हुई। यहीं से उनकी लेखकीय जीवन का आरंभ हुआ।

नासिरा जी ने हिंदी साहित्य की अनेक विधाओं में अपनी लेखनी चलाई है। उनके कुल आठ उपन्यास और आठ कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। इसके अतिरिक्त उन्होंने बाल साहित्य, निबंध लेखन, समीक्षा और पत्रकारिता के क्षेत्र में भी लेखनी चलायी।

नासिरा शर्मा की कहानियां तथा उपन्यासों की पृष्ठभूमि मूलत: ईरान की है। इन कहानियों को भारतीय परिप्रेक्ष्य में देखा जाए तो काफी हद तक सही साबित होती है। औरत वहां भी धर्म और सत्ता के बीच फंसी रहती है और यहां भी। नासिरा शर्मा की कहानियों को भोगे हुए यथार्थ के विशेष संदर्भ में देखा जाए तो इन्होंने मुस्लिम समाज के भीतर स्त्रियों की दशा पर बेहतर ढंग से लिखा है। इन्होंने औरत के लिए 'औरत' नामक पुस्तक लिखी जिसे कामगार स्त्रियों के संदर्भ में लिखा गया है। लेखिका लगातार अपनी वर्गीय पक्षधरता बनाए रखती हैं। वहीं नासिरा निम्नवर्गीय तथा कामकाजी औरतों की समस्याओं पर ध्यान केन्द्रित करती हैं।

स्त्री विमर्श की दृष्टि से नासिरा की कहानियां अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। इन पर प्रेमचंद, मंटो, तबस्सुम आदि का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। लेखिका ने विभाजन, ईरानी क्रांति, दंगों तथा विदेशी पृष्ठभूमि पर आधारित अनेक कहानियां लिखी हैं। इनकी ईरानी क्रांति के संदर्भ में लिखी गई अधिकांश कहानियों के केन्द्र में औरत है। इनका कहानी संग्रह संगसार महत्वपूर्ण कृति है। उसकी पृष्ठभूमि ईरान है जिसमें धर्म, सत्ता और राजनीति के बीच किस तरह औरत सतायी जाती है यह दिखाने की कोशिश की गयी है। नासिरा शर्मा का उपन्यास 'सात नदियां एक समंदर' भी इसी विषय को आगे बढ़ाता है। नासिरा ने वेहद संजीदगी के साथ क्रांति के दौर में होने वाले मानव संहार की गाथा कही है। क्रांति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाली औरतें क्रांति के बाद पर्दे में आ गयी। उनकी सामाजिक और राजनीतिक आजादी पर रोक लगा दी गयी। ईरान की क्रांति से जुड़े इस तरह के कड़वे यथार्थ को लेखिका ने बारिकी से उभारने की कोशिश की है।

अभी पिछले वर्ष हमने एक बहुत ही महत्वपूर्ण साहित्यकार को खोया है। प्रसिद्ध 'सूखा बरगद' उपन्यास के रचयिता मंजूर एहतेशाम की मृत्यु कोरोना से हो गई। उनका जन्म 3 अप्रैल, 1948 को भोपाल में हुआ था। घरवाले चाहते थे कि वे इंजीनियर बने, पर नियति को तो कुछ और ही मंजूर था। लेखन में रुचि

के कारण मंजूर की इंजीनियरिंग की पढ़ाई अधूरी छूट गई। पहले दवा बेचने का काम किया और फिर फर्नीचर बेचने लगे। लेकिन लेखन हर दौर में जारी रहा। पहली कहानी 'रमजान में मौत' साल 1973 में छपी, तो पहला उपन्यास 'कुछ दिन और' साल 1976 में प्रकाशित हुआ। मंजूर की रचनाएं किसी चमत्कार के लिए व्यग्र नहीं दिखती, बल्कि वे अनेक अन्तर्विरोधों और त्रासदियों के बावजूद 'चमत्कार की तरह बचे जीवन' का आख्यान रचती हैं।

'सूखा बरगद' उपन्यास उनके बाह्य और आंतरिक संसार का एक विशिष्ट प्रतिबिम्ब रहा है जिसके लिए उन्हें श्रीकान्त वर्मा स्मृति सम्मान और भारतीय भाषा परिषद कलकत्ता का सम्मान प्राप्त हुआ। यह उपन्यास विभाजन के बाद के दौर को याद करते हुए तत्कालीन घटनाओं और माहौल का वर्णन करता है और साथ ही 1971 में भारत-पाकिस्तान के युद्ध के समय की घटनाओं को भी समेटे हुए है।

इस उपन्यास में मुस्लिम समाज के मानसिक द्वन्द्व को व्यक्त किया गया है, जिसमें लेखक के समकालीन अनुभवों का आभास मिलता है तथा उपन्यास के पात्रों की सोच और संघर्षों को एक स्पष्टता मिलती है। वर्तमान माहौल को देखते हुए यह उपन्यास आज के समय में भी प्रासंगिक है।

उपन्यास की कहानी भोपाल के एक शिक्षित मुस्लिम परिवार पर आधारित है जिसके सदस्यों के माध्यम से देश में अल्पसंख्यक समुदाय को पेश आने वाली समस्याओं का चित्रण किया गया है। मंजूर एहतेशाम ने दोनों पक्षों के झगड़े के पीछे राजनीति मंसूबों को रेखांकित किया है। साथ ही उन्होंने हिंदू-मुस्लिम समुदायों में धार्मिक कट्टरता का अनेक स्थानों पर उल्लेख किया है।

मंजूर एहतेशाम ने बरगद के पेड़ के माध्यम से सुहेल की मनोदशा में उसकी पुरानी याद और वर्तमान के आभास के वैषम्य को बहुत संवेदना से व्यक्त किया है। जिस हिंदुस्तान को वह एक हरे-भरे बरगद के रूप में देखता था और जिसकी छाया में उसे शांति मिलती थी अब वही बरगद का पेड़ प्रेम रूपी जल के अभाव में सूख गया है जहां छाया की अपेक्षा शरीर को झुलसाने वाली गर्मी और एक वीरानापन है। अब उसके लिए हिंदुस्तान एक सूखा बरगद हो चुका था।

लेखक ने सुहेल के माध्यम से भारत की धर्मनिरपेक्ष लोकतांत्रिक प्रणाली में

औपचारिक अवसरों पर एक विशेष समुदाय की सांस्कृतिक रीतियों जैसे कि भूमि-पूजन, संस्कृत के गीत एवं पाठ आदि के प्रचलन का उल्लेख करते हुए देश के लोकतांत्रिक मूल्यों पर सवाल उठाया है। लगातार अपनी वफादारी और सच्चाई पर प्रश्नचिन्ह लगाए जाने को लेकर मुस्लिम समाज के लोगों को पहुंचने वाली ठेस और उद्विग्नता को एहतेशाम ने इस उपन्यास में अनेक स्थान पर उजागर किया है। कहानी में सन् 71 के हिंदुस्तान-पाकिस्तान युद्ध के दौरान पाकिस्तान में बसे अपने रिश्तेदारों के लिए चिंतित भारतीय मुसलमानों की परेशानियों का वर्णन किया गया है। युद्ध के संकटपूर्ण हालात में भी स्वजनों के लिए खुलकर चिंता व्यक्त नहीं कर पाने की विवशता को रशीदा के परिवार के माध्यम से दर्शाया गया है। भयग्रस्त परिस्थितियों में अपनों की चिंता करना एक सहज मानवीय स्वभाव है लेकिन इसके कारण खुद को संदेह की दृष्टि से देखा जाना कहीं-न-कहीं उन्हें आक्रोश से भर देता है।

एहतेशाम ने तत्कालीन सामाजिक अराजकता और क्रूरता को सुहेल के प्रस्तुत संवाद के माध्यम से इंगित किया है- 'जमशेदपुर करबला बना हुआ है- मुसलमानों को मार-मारकर नास कर डाला है, वह जो एक राईटर था- हिंदू-मुसलमान भाई-भाई की थीम पर उर्दू में जिंदगी-भर कहानियां लिखता रहा, उसे भी निपटा दिया। अखबार में उसकी छोटी सी तस्वीर छपी है।'

सूखा बरगद हिंदू-मुसलमान के आपसी संबंधों की विषमताओं को निष्पक्षता से प्रस्तुत करता है। लेखक द्वारा उपन्यास में निरंतर दोनों समुदायों में सामंजस्य बिठाने का दृष्टिकोण लक्षित होता है जो अंत में एक हताशा और असुरक्षा की भावना में बदल जाता है।

मुजीब रिज़वी इलाहाबाद की मशहूर तहसील चयल के एक कस्बे में 14 मई, 1934 को पैदा हुए। आरंभिक शिक्षा इलाहाबाद में हुई। स्नातक की डिग्री इलाहाबाद यूनिवर्सिटी से हासिल की। इस दौरान वो पंडित सुंदरलाल के सानिध्य में स्वतंत्रता आंदोलन और अन्य गतिविधियों में भी सक्रिय रहे। अलीगढ़ से हिंदी में एम.ए. करने के बाद उन्होंने 1960 के दशक में जामिया मिल्लिया इस्लामिया में हिंदी विभाग की नींव डाली। उन्होंने जामिया और हिंदी विभाग की बेशकीमत खिदमत की और अंततः एक्टिंग वाइस चांसलर होकर वहीं से सेवानिवृत्त हुए। सूफी प्रेमाख्यान पर उनके अनेक निबंध हैं और वे इस विषय के अग्रदूत विशेषज्ञ थे। 'सब लिखनी के लिखु संसारा : पद्मावत और जायसी की दुनिया' उनकी

बहुचर्चित किताब है। जायसी, मीर अनीस, फ़िराक, तुलसी, मुल्ला दाऊद, कबीर और दूसरे सूफी-भक्ति विचारधारा के कवियों पर उनके निबंधों पर आधारित एक किताब 'पीछे फिरत कहत कबीर कबीर' 2009 में उर्दू में प्रकाशित हुई थी और यह अब हिंदी में भी उपलब्ध है। 24 मई, 2015 को उनका इंतकाल हुआ।

अलीगढ़ के डॉ. नज़ीर मुहम्मद के कबीर के काव्य रूप, संत साहित्य का अभिव्यंजनापरक अध्ययन, एकता के चरण, नज़ीर ग्रंथावली, डॉ. जाकिर हुसैन (उर्दू से हिन्दी सहअनुवाद), दलितोद्धारक रामशतक, ब्रज संस्कृति शतक, एकता के अमरस्वर, सर्वधर्म समभाव शतक, उद्बोधन-गान चेतना के बदलते हुए स्वर, नीति-नवनीत, महिला सशक्तिकरण आदि पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी है।

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में ही हिंदी के प्रोफेसर डॉ. अब्दुल अलीम के हिंदुस्तानी, आजकल, निशान्त, पासबान, भाषा-सौरभ, मश्अले-उर्दू आदि पत्रिकाओं में अनेक शोधपूर्ण एवं साहित्यिक लेख प्रकाशित हो चुके हैं। लेकिन उनकी प्रमुख रचना नजीर अकबरावादी और उनकी विचारधारा काफी चर्चित रही है।

मध्यकालीन चेतना एवं आधुनिक चेतना के समन्वयक सामासिक संस्कृति के प्रतीक कविवर नज़ीर अकबरावादी एक ऐसे व्यक्तित्व हैं जो अपने युगीन साहित्य के एक सशक्त और महत्वपूर्ण हस्ताक्षर होते हुए भी एक उपेक्षित सहित्यकार के रूप में अध्ययन और अध्यापन के क्षेत्र में उपेक्षा का विषय बने रहे। अब्दुल अलीम ने नज़ीर साहित्य की सार्थकता बताते हुए यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि नज़ीर का साहित्य आज भी उतना ही प्रासंगिक है, जितना कवि नज़ीर के अपने युग में था। इसका कारण है कि उनका साहित्य जीवन के उन शाश्वत मूल्यों, शाश्वत मानदण्डों और शाश्वत अनुभूतियों की अभिव्यक्ति है जो शाश्वत मानव चेतना की परिधि में आते हैं। सामाजिक और सांस्कृतिक चेतना की अनुभूति और उसकी अभिव्यक्ति कवि नज़ीर के संपूर्ण काव्य को प्राणवान बनाती है। उनकी रचनाओं में साहित्य और समाज के संदर्भ में अर्थवत्ता, वर्तमान राष्ट्रीय स्थितियों में उनकी रचनाओं का महत्व, साहित्य और समाज में मिलने वाली दिशा संकेतों पर दृष्टि केन्द्रित की गयी है। कवि नज़ीर और उनका काव्य एक ऐसा आलोक पुंज है जो साम्प्रदायिकता, भेदभाव, संकीर्णता, क्षेत्रीयता, वर्ग विभेद जैसे वर्तमान अंधेरों को समाप्त करने की क्षमता रखता है। आज देश में

विभिन्न आधारों पर जो बिखराव आया है, जिन नैतिक मूल्यों का ह्रास हमें पतन की ओर ले जा रहा है नज़ीर का काव्य उसके समाधान के लिए एक सम्यक दृष्टि प्रदान करता है।

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के प्रोफेसर शैलेश जैदी की अनेक रचनाएं प्रकाशित हो चुकी हैं। आज भी वे हिंदी साहित्य सेवा में तल्लीन है। उनकी काव्यकृतियों पर अबतक दो शोध प्रबंध लिखे जा चुके हैं और दो विश्वविद्यालयों में पी-एचडी. उपाधि के लिए शोध कार्य चल रहा है।

डॉ. मोहम्मद अलीम हिंदी, उर्दू और अंग्रेजी के प्रसिद्ध उपन्यासकार, नाटककार, कहानीकार, पटकथा लेखक और पत्रकार हैं। इनका जन्म बिहार के गांव चंदनबारा, पूर्वी चंपारण में 1971 में हुआ था। जामिया मिल्लिया इस्लामिया केन्द्रीय विश्वविद्यालय से हिंदी और अंग्रेजी में एम.ए. की डिग्री हासिल की और सूफी साहित्य पर पी-एचडी. की उपाधि प्राप्त की।

अब तक हिंदी एवं उर्दू में उनके तीन उपन्यास जो अमां मिली तो कहां मिली, मेरे नालों की गुमशुदा आवाज और एक मुसाफिर की कहानी, दो नाटक राबिया और इमामे हिंद : राम, अंग्रेजी में तीन उपन्यास राबिया : थ्रू ऑल जॉयस एंड सॉरोज, सेक्रेड सॉलीट्यूड, थ्री स्ट्रेंज प्रोफेसिज, एक जीवनी सैयद हामिद : ए रिलेंटलेस रिफॉर्मर और बच्चों और प्रौढ़ शिक्षा के अंतर्गत आधा दर्जन से अधिक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। अनेक पुस्तकों का अनुवाद भी किया है जिनमें गुड मुस्लिम बैड मुस्लिम, कन्फेशन ऑफ ए सेक्युलर फुनडमेंटलिस्ट (अंग्रेजी से हिंदी), गंगा मैया (हिंदी से उर्दू), दि लाइफ प्रोफेट मुहम्मद (अंग्रेजी से हिंदी) प्रमुख हैं।

दो दर्जन से अधिक धारावाहिकों का दूरदर्शन और जी टीवी के लिए लेखन भी इन्होंने किया है। अनेक डॉक्यूमेंट्री, कॉरपोरेट और ऐड फिल्मों की स्क्रिप्ट भी अंग्रेजी और हिंदी में लिखी है।

इन्हें साहित्यिक लेखन और पत्रकारिता के लिए संस्कृति पुरस्कार, मिनिस्ट्री ऑफ कल्चर का सीनियर फेलोशिप अवार्ड, हिंदी और उर्दू अकादमी दिल्ली अवार्ड, जामिया मिल्लिया इस्लामिया ग्लोबल आउट स्टैंडिंग एलुमनी अवार्ड एवं पत्रकारिता के लिए आईसीएन ग्लोबल अवार्ड इत्यादि मिल चुके हैं।

लखनऊ में 1 अप्रैल 1942 को जन्मी और ब्रिटेन में बसी जकिया जी का बचपन आज़मगढ़ में बीता। शुरुआती स्कूली पढ़ाई आज़मगढ़ की सरकारी कन्या पाठशाला में हुई। कॉलेज की पढ़ाई इलाहाबाद में और स्नातक की डिग्री बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से इन्होंने प्राप्त किया। बचपन से ही चित्रकारी एवं कविता व कहानी लिखने का इन्हें शौक रहा है।

हिंदी एवं उर्दू में समान अधिकार रखने वाली ज़किया जी की रचनाएं पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही हैं। वे इंग्लैंड में एशियाई लेखकों को मंच प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। हिन्दी कहानियों, उपन्यासों को उर्दू में अनूदित करवा कर प्रकाशित करवाने के बाद उन्होंने आठ उर्दू लेखकों की कहानियों को हिंदी में अनूदित करवा कर उसका संपादन किया है, जो ब्रिटेन की उर्दू क़लम के नाम से प्रकाशित हुई है। उनकी दूसरी संपादित पुस्तक प्रवासी हिंदी गज़ल संग्रह है।

ज़किया जी ब्रिटेन की लेबर पार्टी के सक्रिय सदस्या हैं। लेबर पार्टी के टिकट पर वे तीन बार चुनाव जीत कर काउंसलर निर्वाचित हो चुकी हैं। वे गरीबों और कमजोरों की लड़ाई पूरी शिद्दत से लड़ती हैं और उन्हें सरकार से उनके हक़ दिलवाने में सफल प्रयास करती हैं।

नाट्य लेखन

साहित्य का मूल दायित्व मानवीय मूल्यों और सामाजिक चेतना को उजागर करना है। साहित्यकार एक तरफ सामाजिक विसंगतियों का चित्रण करते हुए उनके प्रति आक्रोश व्यक्त करता है तो दूसरी ओर अपने साहित्य के माध्यम से एक सुखी समाज की स्थापना करने का प्रयास करता है। नाटक साहित्य की एक ऐसी विधा है जो रंगमंच के द्वारा लोगों को प्रत्यक्ष संदेश देता है।

हिंदी नाट्य साहित्य विकास के कई पड़ाव तय कर चुका है। इस यात्रा के दौरान जो नाट्योपलब्धियाँ प्राप्त हुईं, उन्हें समीक्षकों ने कतिपय युगों के अन्तर्गत रखने का प्रयास किया है। जैसे – 'भारतेन्दु युग', 'प्रसाद युग' तथा 'प्रसादोत्तर युग'। भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने हिंदी नाटक को युगबोध से जोड़ने का महत्वपूर्ण कार्य किया। स्वच्छन्दतावादी चेतना से युक्त जयशंकर प्रसाद के नाटकों का मुख्य स्वर अतीत का गौरवगान करना रहा है। साथ ही देश की अवनति के मूल कारणों की

खोज, राष्ट्रीय एकता को बनाए रखने की कोशिश, सांप्रदायिक सद्भावना पर जोर, खोई हुई आजादी को पुनः प्राप्त करना, आजादी की लड़ाई को एक प्रकार का धार एवं स्फूति प्रदान करना आदि उद्देश्य उनके नाटक में परिलक्षित हैं। वर्ष 1950 से हिंदी नाट्य साहित्य में प्रयोगशीलता के नये आयाम विकसित होने लगे और इसके संवाहक थे – जगदीश चन्द्र माथुर, मोहन राकेश और धर्मवीर भारती। इन्होंने अतीत के फलक पर समकालीन समस्याओं की अभिव्यक्ति करने की सफल कोशिश की। सन् 1974-75 के आसपास जनवादी आंदोलन के साथ-साथ नुक्कड़ नाटक का उदय हुआ। रंगकर्मी सफदर हाशमी ने इप्टा और दिल्ली जन नाट्य मंच में काम करते हुए नुक्कड़ नाटक की संभावनाओं को विस्तार दिया था। नुक्कड़ नाटक के संबंध में सफदर हाशमी का कहना है "वर्तमान पीढ़ी के नुक्कड़ रंगकर्मी, अपने पाँचवें और छठे दशक के पूर्ववर्तियों के विपरीत, इसके विशिष्ट आकारगत स्वरूप के बारे में कहीं ज्यादा सजग हैं। अपने रंगकर्म की सैद्धांतिक प्रकृति और राजनीतिक शक्तियों के साथ इसकी खुली पक्षधरता को बिना झिझक स्वीकार करके वे अब सिर्फ इश्तहार नाटक नहीं प्रस्तुत कर रहे हैं।"[46]

नुक्कड़ नाटकों के फलस्वरूप चौराहों, सड़कों, पार्कों एवं मैदानों में खेले जाने वाले नाटकों की धूम मच गई। इसका नतीजा यह हुआ कि नाटक बंद हॉल से स्वतंत्र हुआ और आम जनता के एकदम नजदीक पहुंचने लगे।

इसी परिदृश्य में हिंदी साहित्य के मुस्लिम नाटककारों में मुख्य नाम असगर वजाहत का उभरकर आता है। पिछली सदी के अंतिम दशकों से इक्कीसवीं सदी में हिंदी नाटकों को एक नई दिशा प्रदान करने में असगर वजाहत की अलग पहचान है। वे एक सफल नाटककार ही नहीं, कुशल रंगकर्मी भी हैं। विभाजन की त्रासदी ने बहुत से बड़े लेखक पैदा किए, उनमें असगर वजाहत अपनी संवेदनशील रचनाधर्मिता के हिमायती हैं। हिंदी में नाटक लेखन की स्थिति को लेकर वे बहुत चिंतित हैं। वो कहते हैं कि, "हिंदी लेखन की प्रतिभा जो कहानी, उपन्यास, संस्मरण लेखन के क्षेत्रों में दिखाई पड़ती है वह नाटक में नजर नहीं आती।"[47]

असगर वजाहत जी ने हिंदी नाट्य साहित्य को एक नई ऊँचाइयों तक पहुंचाया है। उन्होंने 'फिरंगी लौट आये' (1976), 'इन्ना की आवाज' (1986),

'वीरगति' (1988), 'पाँच नाटक' (1990), 'सबसे सस्ता गोश्त' (नुक्कड़ नाटक संग्रह) (1991), 'ओ जन्म्या ई नई' (2001), 'महाबली' उनकी प्रमुख नाट्य रचना है।

असगर वजाहत मानवीय संघर्ष के लेखक हैं। वे अपने नाटकों द्वारा दर्शकों को संघर्ष और बदलाव का संदेश देते हैं। वे परिवर्तन की दिशा ही नहीं बल्कि परिवर्तन के उपादान भी बताते हैं। उनके नाटक जीवन और जगत के रहस्यों से पर्दा हटाकर हमें सच्चाई से वाकिफ कराते हैं। धर्म और जाति के प्रति वजाहत की विचारधाराएँ स्पष्ट है। वजाहत तर्क के आधार पर मानव विरोधी ताकतों का विरोध करते हैं। वे सदैव उन पूँजीपति और सामंती ताकतों के प्रति विद्रोह प्रकट करते हैं जो भारतीय समाज को धर्म, सम्प्रदाय, जाति तथा भाषा के आधार पर बांट रहे हैं। वे कहते हैं, "लोगों के प्रति अन्याय, अपमान, अत्याचार के व्यवहार से मुझे बेहद दुख होता है। असमानता, शोषण और गरीबी भी मेरे दुख के कारण हैं। किसी के द्वारा झूठ, फरेब, मक्कारी, चालाकी, छद्म और कुटिलता से सीधे-सीधे लोगों को धोखा देना भी मेरे दुख का कारण बनता है। कुल मिलाकर जो कुछ भी मनुष्य विरोधी हो रहा है वह दुख का कारण है।"[48]

असगर जी के नाटकों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वो आम जन-जीवन के मुद्दों पर केन्द्रित है। उनकी रचनाओं के पात्र हमें अपने इर्द-गिर्द दिखाई देते हैं। उनका 'इन्ना की आवाज' नाटक आमजन के शोषण और शासक वर्ग की क्रूर मानसिकता को बेनकाब करता है। एक मासूम और बेकसूर मनुष्य इन्ना सत्ता के षड्यंत्रों का शिकार होता है। कुर्सी का नशा धीरे-धीरे उसे भी कठोर और निर्मम बना देता है। इन्ना भी 'हुक्म' देना यानि आमजन का शोषण करने लगता है। इन्ना के शब्दों में "मैं वजीर आजम हूं। मैं सब कुछ कर सकता हूँ। अब ये मेरा फजल है। इस ओहदे को कबूल कर लेने के बाद भी अगर मैंने कोई हुक्म न दिया जिससे अवाम का फायदा हो तो मेरी जिंदगी अजाब हो जाएगी। मुझे अपने आपको वजीरे आजम समझना ही पड़ेगा। हुक्म देना ही पड़ेगा"[49] इस तरह गंदी और गलीज राजनीति सदियों से घिनौना खेल खेलती आई है। जिसने भी इसके विरुद्ध जाने की कोशिश की उसका जीवन नारकीय हो गया। राजनीति का यह घिनौना खेल आज भी जारी है।

15 अगस्त 1947 को भारत का बंटवारा हो गया और पाकिस्तान का जन्म हुआ। यह विकट हादसा भारत के इतिहास में एक शर्मनाक त्रासदी के रूप में

घटित हुआ। स्वाधीन भारत की सबसे भयंकर एवं विकट समस्या कट्टर सांप्रदायिकता को लेकर पैदा हुई जिसका असर भारतीय मानस पर अब भी अंकित हुआ लगता है। स्वतंत्र भारत के संविधान में धर्मनिरपेक्ष और सांप्रदायिक सद्भाव पर अधिष्ठित कौम की संकल्पना है। मगर सच्चाई यह है कि आदर्श की फुलवारी में झूमते हमारे कदम बार-बार सांप्रदायिक तनाव की गर्मी से झुलसने लगते हैं। विभाजन के उपरांत जो दंगे-फसाद हुए थे, उनमें अनेकों की जिंदगी बर्बाद हो गयी। घोर सांप्रदायिक बैर के सबब हिंदू को मुसलमान म्लेच्छ तथा मुसलमान को हिंदू काफिर नजर आता है। मैनेजर पाण्डेय के शब्दों में "आज के भारतीय समाज में उग्र सांप्रदायिकता की आँधी चल रही है। धर्म के नाम पर घृणा, द्वेष और उन्माद का प्रचार-प्रसार हो रहा है। जाति भेद खूंखार जाति युद्ध बन रहा है। तरह-तरह के दुराग्रहों, कट्टरताओं और संकीर्णताओं का बोलबाला है।"[50] इस यथार्थ को पृष्ठभूमि के रूप में स्वीकार कर असगर वजाहत ने 'ओ जन्म्या ई नई' नामक नाटक की सृष्टि की। इस नाटक की कथाभूमि विभाजन के दरम्यान लाहौर के एक मोहल्ले की है। लाहौर में यह मसल मशहूर था कि 'जिन लाहौर नई देख्या ओ जन्म्या ई नई।'नाटक में एक ऐसे परिवार की पेशकश है जो विस्थापन के दौरान शरणार्थी बना दिये गये थे। यह नाटक देश विभाजन की त्रासदी पर आधारित है। यह हिंदू-मुस्लिम भाइचारे को बल प्रदान करने वाला एक प्रांसगिक, मार्मिक एवं अर्थपूर्ण नाटक है। नाट्यकार ने बड़ी कुशलता से सांप्रदायिक एकता की पृष्ठभूमि में प्रगाढ़ सांस्कृतिक, धार्मिक संबंधों को रेखांकित किया है। घोर सांप्रदायिकता के दहशत भरे वातावरण में भी हिंद औरत की हिफाजत करने वाले मुसलमानों तथा मरणोपरांत उसके दाह-संस्कार में शरीक होने को तत्पर सच्चे धार्मिक मौलवी और कतिपय मुसलमानों का चित्र खीचतें वक्त नाटककार का मकसद यकीनन ही इन्सानी रिश्तों के जज्बाती ताने-बाने में प्रस्तुत मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा करना है। अत: हिंदू-मुस्लिम एकता और भाईचारे को बल प्रदान करता है।

'सबसे सस्ता गोश्त' असगर वजाहत के साम्प्रदायिकता विरोधी नुक्कड़ नाटकों का संकलन है। इस नाटक में वे सांप्रदायिक राजनीति के घिनौने चरित्र को उजागर करते हैं। इसमें सांप्रदायिक दंगों को जबरन भड़काने वाले अपसंस्कृति के ठेकेदार व धर्मावलंबियों का जिक्र है। इसके तहत धर्म बनाम अत्याचार का ही चित्रण है। जैसे धर्म के नाम पर बच्चों की टांगे चीर देना, औरतों की बेइज्ज़ती करना, लोगों को जिंदा जलाना, लाशों की मंडी सजाना आदि। नाटक इन

ज्यादतियों के विरुद्ध हमला बोलता है। वोट बैंक की राजनीति के तहत मंदिर या मस्जिद में अपवित्र चीजों को डालकर लोगों में सांप्रदायिक हंगामा मचाने की रीति जारी है। इस बात का जिक्र प्रस्तुत नाटक में हुआ है। मुस्लिम नेता द्वारा मस्जिद में सुअर का गोश्त और हिंदू नेता द्वारा मंदिर में गाय का गोश्त डाल दिया जाता है।

"मुस्लिम नेता–बरादराने इस्लाम हिंदुओं ने तुम्हें बर्बाद कर दिया है। तुम्हारे घर उजाड़ दिए।

हिंदू नेता–आर्यावर्त के सुपुत्रों इन म्लेच्छों मुसलमानों ने भारत–माता के टुकड़े कर डाले।''[51]

नाटककार ने इसमें घोर सांप्रदायिकता की अवसन्न स्थिति में मानुषिक मूल्यों के क्षरण को दर्ज किया है। नाटक के अंत में जब दोनों मजहब के लोगों को यह पता चलता है कि मंदिर या मस्जिद में पड़ने वाला गोश्त गाय या सुअर का नहीं, बल्कि आदमी का है, वे चैन की साँस लेने लगते हैं।

"कुछ आवाजें – (ठंडेपन से) अच्छा आदमी का गोश्त है।

एक आवाज – तब कोई बात नहीं।

दूसरी आवाज – मंदिर अपवित्र नहीं हुआ।

तीसरी आवाज – मस्जिद नापाक नहीं हुई।"[52]

बहुत ही बेरहम माहौल का चित्र असगर वजाहत ने इस नाटक के द्वारा खींचा है। जहां आदमी की जान की कोई कीमत ही नहीं है। घोर सांप्रदायिकता के तमस ने यह साबित कर दिया कि आदमी का गोश्त ही सबसे सस्ता गोश्त है।

असगर वजाहत का नाटक 'हड्डी' आज के राजनीतिज्ञों के दोहरे चरित्र की ओर संकेत करता है। सत्ता मिलते ही वे गिरगिट की तरह अपना रंग बदल लेते हैं और आवाम पर झपटते हैं। नाटक में जंगल का दृश्य है। उद्घोषक के रूप में परी आकर धरती की सच्ची कहानी का संकेत करती है। जंगल में बिल्ले ने चूहों का जीना बेहाल कर रखा है। वह जंगल का राजा बनकर अपनी धुन में मस्त है कि किसी भी चूहे की सांस तक नहीं चलती। चूहों ने बिल्ले से लड़ने के लिए उपाय ढूँढ़ा। चूहों को किसी जानवर की बड़ी सी हड्डी मिल जाती है। वे उसे हथियार बनाकर बिल्ले से अपना बचाव करते हैं। सारे चूहे सुख–शान्ति का जीवन व्यतीत करने लगते हैं। किंतु जल्द ही वह चूहा राजा बन जाता है

जिसको वह हड्डी मिली थी। अब वह अपनी तानाशाही करने लगता है। अपनी नीति वह सभी पर थोपने लगता है। ठीक आज के राजनीतिज्ञों की तरह अधिकार या कुर्सी प्राप्त करते ही सबके ऊपर कुशासन करते हैं।

"चूहे-3 का कथन -

मैं राजा हूँ मैं स्वामी हूँ मैं मालिक हूँ

जो भी तुमको हुक्म सुनाऊँ

उसको फौरन पूरा करो तुम"[53]

अंत में सभी चूहे उससे दुखी होकर उसको खत्म कर देते हैं। हड्डी के समाप्त होते ही चूहा-3 अपनी हार मान लेता है। सभी चूहे कहते हैं -

"नौकर मालिक कोई नहीं

सेवक स्वामी कोई नहीं

तेरा, मेरा कोई नहीं

सब सबका है, सब सबका है"[54]

इस प्रकार यह नाटक सच्चे गणतंत्र की कामना करता है जहां नौकर मालिक कोई नहीं है। सब समान हैं। नाटक यह भी सिद्ध करता है कि अपना उल्लू सीधा करने में काले साहब उस गोरे साहब से तनिक भी कम नहीं हैं। आज की राजनीति में गुण्डागर्दी और दादागिरी ही चलती हैं।

डॉ. असगर वजाहत के सभी नाटक रंगमंच पर काफी सराहे गये हैं। साथ ही प्रदर्शन भी चर्चित हुए हैं। स्वयं एक रंगकर्मी होने के कारण उन्होंने सभी नाटकों की रचना रंगमंच से संपृक्त होकर की है। साथ ही उनकी प्रयोगधर्मिता को बरकरार रखने के लिए भी नाटक श्रेष्ठ सिद्ध हुए हैं।

अब्दुल बिस्मिल्लाह जी ने भी जहां उपन्यास तथा कहानी के द्वारा हिंदी साहित्य को शोभित किया है, वहीं उन्होंने एक नाटक की भी रचना की है। 'दो पैसों की जन्नत' नाटक उनका राजनीतिक व्यंग्य है। आजकल की राजनीति की पोल खोलता यह नाटक अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। राजनीति का स्तर कितना गिर चुका है तथा सत्ता के मद में चूर शासक किस प्रकार केवल अपने ऐशो-आराम की जिंदगी जीना चाहता है इस नाटक में बखूबी प्रदर्शित हुआ है। शासन तंत्र को साधारण जनता से कोई सरोकार नहीं होता है। यह नाटक शासक

और आम जनता के बीच के अंतर को स्पष्ट रूप से प्रदर्शित करता है। इस नाटक के माध्यम से अब्दुल बिस्मिल्लाह जी ने दिखाया है कि कैसे सत्ता के नशे में मद्होश होकर राजनेता ऐसे काम करते हैं जो किसी के लिए लाभदायक नहीं है। इस नाटक में दिखाया गया है कि शासक अपने लिये जन्नत का निर्माण करवाने का हुक्म देता है जिसका आमजन से कोई लेना-देना नहीं है। जन्नत बनाने के लिए सही-गलत का कुछ भी ध्यान नहीं रखा जाता है। आज भी इसी प्रकार सरकारें ऐसी-ऐसी इमारतें बनाने का आदेश देती हैं जिससे आम जनता को कोई फायदा नहीं है। केवल पैसों की बर्बादी होती है। यह नाटक वर्तमान समय में बिल्कुल प्रासंगिक है।

अन्य विधाओं में उपस्थिति

हिंदी साहित्य की अनेक विधाएँ हैं। इन विधाओं में समय-समय पर लेखकों ने अपनी लेखनी के द्वारा हिंदी साहित्य को संवारा है। कहानी, उपन्यास, नाटक, काव्य के अतिरिक्त अन्य विधा जैसे रेखाचित्र, संस्मरण, आलोचना, निबंध, यात्रावृत्तांत आदि विधाओं में भी मुस्लिम लेखकों ने अपना योगदान दिया है। अब हम कहानी, उपन्यास, नाटक आदि के इतर अन्य विधाओं में मुस्लिम साहित्यकारों के योगदान पर चर्चा करेंगे।

आधुनिक साहित्य जगत में राही मासूम रजा ने अपना विशिष्ठ स्थान बनाया है। जहां उनकी लेखनी उपन्यास, कहानी और कविता पर चली वहीं उन्होंने अन्य साहित्यिक विधाओं को भी सजाया है। राही जी ने निबंध लेखन में भी अपना लोहा मनवाया है। उनके निबंध उर्दू की 'शमा' पत्रिका में छपते रहते हैं। निबंधों के अतिरिक्त नवभारत टाइम्स (दिल्ली) में उनके लेख अक्सर छपते थे, जिनमें समाज, जीवन तथा सांस्कृतिक चर्चाओं की खुलकर विवेचना की जाती थी। उनके लेख विषयवस्तु में अपना व्यापक महत्व रखते हैं। राही मासूम रजा जी के कई लेख, व्यंग्य, निबंधों एवं पत्रों के संग्रह नवीनतम पुस्तकों के रूप में निकाले गये हैं, जो इस प्रकार हैं :-

1. खुदा हाफिज कहने का मोड़ (1999)
2. लगता है बेकार गए हम (1999)
3. गरीबे शहर (2001)

4. सिनेमा और संस्कृति (2001)
5. शीशे के मकान वाले (2001)

'छोटे आदमी की बड़ी कहानी' के नाम से 1966 में राही जी ने एक रेखाचित्र भी लिखा था। जिसमें हवलदार अब्दुल हमीद का रेखाचित्र बहुत ही मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

मेहरून्निसा परवेज आधुनिक हिंदी साहित्य की लेखिकाओं में बहुचर्चित नाम है। सुसंस्कृत, प्रगतिशील विचारधारा की मुस्लिम लेखिकाओं में उनकी एक अलग पहचान है। उपन्यास एवं कहानियों के अतिरिक्त मेहरून्निसा जी ने अनेक लेख भी लिखे हैं। उनके ये लेख धर्मयुग पत्रिका में प्रकाशित होते थे। उनके द्वारा लिखित लेख निम्न हैं :-

1. आर्थिक, सामाजिक, नैतिक घुटन: कस्बों के आइने में जगदलपुर[55]
2. रमजान की ईद[56]
3. मासूम आँखों के सवाल[57]
4. कुत्तों का ट्रेनिंग कालेज: पाठ्यक्रम जासूसी[58]
5. बस्तर मडई[59]
6. बांछड़ा: रोशनी की पहली दस्तक[60]
7. नागफनी का नंदन कानन[61]
8. चरार-ए-शरीफ: वहां अभी इंसान की मुरादे जिंदा है[62] आदि

इसके अतिरिक्त मेहरून्निसा परवेज ने कुछ संस्मरण भी लिखे हैं जो निम्नलिखित हैं :-

1. झरने के नीचे[63]
2. वह क्षण जिसने जीवन को नया मोड़ दिया: जशपुर जेल की नाशपाती[64]
3. ईद की वह याद: जिन्दा रहने का एहसास[65]

मेहरून्निसा परवेज के सुख और शांति भरे जीवन में दुख के बादल भी कभी-कभी मंडराते रहे हैं। उनके सत्रह वर्षीय पुत्र, श्री समर प्रसाद के अकस्मात निधन ने उन्हें मानसिक रूप से बिखेर दिया। अपने इसी दिवंगत पुत्र के स्मृति में वे 'समर लोक' त्रैमासिक पत्रिका का संपादन-प्रकाशन करती रही हैं। यह पत्रिका एक माँ का रचनात्मक समर-तर्पण है।

स्वातन्त्र्योत्तर लेखकों में शानी जी का महत्वपूर्ण स्थान है। शानी जी राही

मासूम रजा के बाद हिंदी साहित्य में मुस्लिम लेखक के रूप में अपना अलग स्थान रखते हैं। शानी जी ने हिंदी प्रेमियों को एक ऐसे साहित्य से परिचय कराया जो उनका स्वयं का भोगा हुआ था। अपने परिवेश और प्रवृति में पूर्ण समन्वय स्थापित करते हुए शानी ने आजादी के बाद भारतीय मुस्लिम जीवन की अभिव्यक्ति अपने साहित्य में की है। वैसे तो शानी जी ने कथा साहित्य के क्षेत्र में हिंदी साहित्य को नई ऊँचाइयों पर पहुंचाया किन्तु इसके अतिरिक्त भी उन्होंने अन्य साहित्यिक विधाओं में अपपा पूर्ण योगदान दिया है। इसमें प्रमुख रूप से निम्नलिखित हैं :-

संस्मरण-शाल वनों का द्वीप

निबंध संग्रह - एक शहर में सपने बिकते हैं

संपादन - साक्षात्कार, समकालीन भारतीय साहित्य, कहानी

स्वतंत्रता के पश्चात के लेखकों जिन्होंने हिंदी साहित्य को अपनी सार्थक रचनाशीलता के माध्यम से एक व्यापक फलक प्रदान किया है, उनमें असगर वजाहत जी का स्थान महत्वपूर्ण है। असगर वजाहत जी ने भी अन्य मुस्लिम हिंदी लेखकों की तरह नाटक, उपन्यास एवं कहानी में अपना कलम चलाया। एक नाटककार के रूप में तो वजाहत जी सुविख्यात हैं ही। किन्तु इन सबके अतिरिक्त भी वजाहत जी ने अन्य विधाओं में अपना लेखन कार्य किया है।

अनुवादक के रूप में वजाहत जी ने अपनी प्रतिभा का खूब परिचय दिया है। उन्होंने कुर्तुलऐन हैदर के उपन्यास 'आखिर-ए-शब के हमसफर' का हिंदी अनुवाद 'निशान्त के सहयात्री' के नाम से किया। असगर वजाहत जी ने कहानियों व लेखों के सफल सहज अनुवाद प्रस्तुत किए हैं। प्रो. मुहम्मद हसन के आलोचनात्मक ग्रंथ का अनुवाद 'नजीर अकबराबादी' नाम से किया।

आलोचना के क्षेत्र में भी असगर जी ने अपनी काबिलियत की मिसाल पेश की। 'हिंदी-उर्दू की प्रगतिशील कविता' और 'हिंदी कहानी पुनर्मूल्यांकन' इनके प्रमुख आलोचनात्मक ग्रंथ हैं। असगर वजाहत ने अपने समकालीन साहित्यकारों पर साहित्यिक टिप्पणी पेश की हैं। उनकी काबिलियत की प्रशंसा की है। इनके अलीगढ़ विश्वविद्यालय के समय राही मासूम रजा के साथ बीते दिनों के कुछ अंश का वर्णन कुँवर पाल सिंह जी ने अपनी पुस्तक 'राही और उनका रचना संसार' में किया है।[66]

असगर वजाहत ने देश-विदेश की कई यात्राएँ की हैं। अपने असंख्य लेखों

में उन्होंने उन यात्राओं की गुर को रेखांकित किया है। 'चलते तो अच्छा था' उनकी ईरान यात्रा का यात्रावृतांत है। यात्राओं का आनन्द और स्वयं देखने तथा खोजने का सन्तोष 'चलते तो अच्छा था' में जगह-जगह देखा जा सकता है। इन्होंने ये यात्राएँ साधारण ढंग से एक साधारण आदमी के रूप में की है जिसके परिणामस्वरूप वे उन लोगों से मिल पाए हैं, जिनसे अन्यथा मिल पाना कठिन है।

अब्दुल बिस्मिल्लाह हिंदी साहित्य जगत के प्रसिद्ध उपन्यासकार एवं कहानीकार हैं। वे एक प्रतिबद्ध रचनाकार हैं और पिछले लगभग तीन-चार दशकों से साहित्य सृजन में सक्रिय हैं। ग्रामीण जीवन व मुस्लिम समाज के संघर्ष, संवेदनाएँ, यातनाएं और अन्तर्द्वंद उनकी रचनाओं के मुख्य केन्द्र बिन्दु हैं। उन्होंने उपन्यास के साथ ही कहानी, कविता, नाटक जैसी सृजनात्मक विधाओं के अलावा आलोचना भी लिखी है। उनका आलोचना साहित्य निम्नलिखित है :-

1. विमर्श के आयाम
2. अल्पविराम
3. मध्यकालीन हिंदी काव्य में सांस्कृतिक समन्वय

अनवर सुहैल जी भी मुस्लिम हिंदी साहित्यकार हैं जिन्होंने उपन्यास व कहानी के अतिरिक्त संपादन में भी कार्य किया है। उन्होंने 'संकेत' नामक कविता पर केन्द्रित लघु पत्रिका का संपादन किया है।

शकील सिद्दीकी जी ने जहां अपने अनुवाद के कार्य द्वारा हिंदी साहित्य को उर्दू साहित्य से परिचित कराया वहीं उन्होंने संपादन में भी अपनी लेखनी चलाई। उन्होंने निम्नलिखित संपादन कार्यों को अंजाम दिया है।

1. आदमी और अदीब
2. सज्जाद जहीर और तरक्कीपसंद तहरीक
3. जंग-यह आत्महत्या का रास्ता है
4. विरासत 1857

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि हिंदी साहित्य के मुस्लिम साहित्यकारों ने सभी विधाओं के माध्यम से हिंदी साहित्य की सेवा की है। उनका यह प्रयास अतुलनीय है। हिंदी साहित्य के इस विशाल भंडार में उनका योगदान कम करके नहीं आँका जा सकता है। हिंदी साहित्य उनका हमेशा ऋणी रहेगा।

संदर्भ-ग्रन्थ सूची

1. हिंदी के मुस्लिम कथाकार, सं एम. फिरोज खान वाड्मय प्रकाशन - 2012
2. कहानीकार नासिरा शर्मा, डॉ. विजयकुमार राऊत, दिव्य प्रकाशन, कानपुर - 2018, पृष्ठ - 22
3. कथाकार अब्दुल बिस्मिल्लाह अंक, वाड्मय पत्रिका, अंक अक्टूबर, दिसंबर 2015, पृष्ठ - 139
4. डॉ. नमिता सिंह, राही के विचार, पृ. 67
5. वही, पृष्ठ - 69
6. वही, पृष्ठ - 95
7. डॉ. फीरोज, डॉ. राही मासूम रजा, जीवन वृत्त एवं कृतित्व (आलेख), पृष्ठ - 2
8. कथाकार अब्दुल बिस्मिल्लाह अंक, वाड्मय पत्रिका, अंक अक्टूबर-दिसंबर-2015, पृष्ठ - 140
9. वही, पृष्ठ - 140
10. वही, पृष्ठ - 141
11. वही, पृष्ठ - 142
12. वही, पृष्ठ - 142
13. वही, पृष्ठ - 143
14. वही, पृष्ठ - 144
15. वही, पृष्ठ - 145
16. प्रेमचंद, कुछ विचार, पपृष्ठ - 20
17. बोहल शोध मंजूषा, हिंदू-मुस्लिम समन्वय के लिए मुस्लिम साहित्यकारों का योगदान, पृष्ठ - 156 - 159

18. वही पृष्ठ - 159

19. डॉ. रानू मुखर्जी, डॉ. राही मासूम रजा का साहित्य और समकाल, पृष्ठ - 3

20. नमिता सिंह, राही के विचार, पृष्ठ - 95

21. शानी : आदमी और अदीब, भूमिका, डॉ. जानकी प्रसाद शर्मा, पृष्ठ - 6

22. वही, पृष्ठ - 96

23. वही, पृष्ठ - 97

24. वही, पृष्ठ - 97

25. वही, पृष्ठ - 99

26. वही, पृष्ठ - 99

27. वही, पृष्ठ - 100

28. वही, पृष्ठ - 157

29. मेहरून्निसा परवेज, आदम और हव्वा, पृष्ठ - 7

30. वही, पृष्ठ - 8

31. डॉ. रामदरश मिश्र, आज का हिंदी साहित्य : संवेदना और दृष्टि, पृष्ठ - 143-144

32. असगर वजाहत, कैसी आग लगाई, भूमिका

33. असगर वजाहत, मैं हिंदू हूँ, पृष्ठ - 129

34. असगर वजाहत, सब कहाँ कुछ, पृष्ठ - 12

35. व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृष्ठ - 13, मुस्लिम समाज जीवन और अब्दुल बिस्मिल्लाह के उपन्यास, डॉ. बाबा साहेब रसूल शेख

36. सजना कौल रेशमी दुनिया के भीतर की असलियत, पृष्ठ - 6, समीक्षा, अप्रैल-जून 1987

37. मुस्लिम उपन्यासकार : परिवेश और उपन्यास, डॉ. गौरव तिवारी, पृष्ठ - 166

38. जहरबाद, अब्दुल बिस्मिल्लाह, पृष्ठ - 36

39. हिंदी उपन्यासों में मुस्लिम आर्थिक जीवन, डॉ. शाहीन एजाज जमादार

40. रैन बसेरा, अब्दुल बिस्मिल्लाह, पृष्ठ - 52

41. हिंदी समय, आज भी सुलग रहे हैं छः दशक पुराने अंगारे, पृष्ठ - 1

42. वही, पृष्ठ - 4

43. ग्यारह सितंबर के बाद, अनवर सुहैल, पृष्ठ - 94

44. वही, पृष्ठ - 94

45. गहरी जड़ें, अनवर सुहैल, पृष्ठ - 134

46. सफदर हाशमी, जन नाट्य मंच, पृष्ठ - 45

47. नाट्य लेखन को समर्पित नहीं है, असगर वजाहत, नवभारत टाइम्स 25 मई 2008, पृष्ठ - 6

48. वनासजन, अंक - 21, जनवरी - मार्च 2017, पृष्ठ - 93

49. असगर वजाहत, असगर वजाहत के आठ दशक, पृष्ठ - 62

50. कबीर की खोज, राजकिशोर, पृष्ठ - 193

51. चार नुक्कड़ नाटक, असगर वजाहत, पृष्ठ - 9

52. वही, पृष्ठ - 7

53. साक्षात्कार - अप्रैल - मई 1986, पृष्ठ - 71

54. वही, पृष्ठ - 81

55. मेहरून्निसा परवेज, आर्थिक, सामाजिक, नैतिक घुटन : कस्बों के आइने में जगदलपुर, धर्मयुग 28 सितम्बर 1971

56. मेहरून्निसा परवेज, रमजान की ईद, धर्मयुग, 28 सितंबर 1975

57. मेहरून्निसा परवेज, मासूम आँखों के सवाल, धर्मयुग, 28 दिसम्बर 1977

58. मेहरून्निसा परवेज, कुत्तों का ट्रेनिंग कालेज : पाठ्यक्रम जासूसी, धर्मयुग, 19 जुलाई 1981

59. मेहरून्निसा परवेज, बस्तर मंडई, धर्मयुग, 30 अगस्त 1981

60. मेहरून्निसा परवेज, बाँछडा : रोशनी की पहली दस्तक, धर्मयुग, 13 मई 1984

61. मेहरून्निसा परवेज, नागफनी का नंदन कानन, धर्मयुग 15 जुलाई 1984

62. मेहरून्निसा परवेज–चरार–ए शरीफ वहां अभी इन्सान की मुरादें जिंदा है, धर्मयुग, सितम्बर 1995

63. मेहरून्निसा परवेज, झरने के नीचे, धर्मयुग, 11 जून 1964

64. मेहरून्निसा परवेज, वह क्षण जिसने जीवन को मोड़ दिया : जशपुर जेल की नाशपाती, धर्मयुग, 28 जून 1981

65. मेहरून्निसा परवेज, ईद की वह याद : जिंदा रहने का एहसास, धर्मयुग, 25 जुलई, 1982

66. यशपाल पुनर्मूल्यांकन, प्रो. कुंवरपाल सिंह, पृष्ठ – 144

चौथा अध्याय

मुस्लिम रचनाकारों के साहित्यिक योगदान का मूल्यांकन

हिंदी साहित्य के इतिहास को समृद्ध करने का श्रेय जितना हिंदू कवियों को है उतना ही मुसलमान कवियों का रहा है। मुसलमान साहित्यकारों ने भी हिंदी साहित्य के लिए इसके भिन्न-भिन्न कालों में इसकी प्रवृत्तियों के अनुसार अपनी-अपनी भूमिका निभायी है। यहाँ यह भी कहना गलत न होगा कि हिंदी साहित्य के कोई भी काल मुसलमान कवियों या साहित्यकारों की कृतियाँ के बिना पूरा नहीं माना जा सकता। अत: हिंदी साहित्य में मुसलमान साहित्यकारों को कभी उपेक्षा नहीं किया जा सकता और अगर ऐसा हुआ तब इनकी उपेक्षा से हिंदी साहित्य कोश लगभग अधूरा हो जाएगा।

साहित्य समाज का दर्पण होता है, अर्थात समाज में जो विचार, भावना तथा सोच प्रचलित रहती है कवि उसको अपनी मानसिक वृत्ति का आश्रय लेकर काव्य के रूप में निरूपित करता है। भारत विभिन्न धर्मों, भाषाओं, पंथों तथा सांस्कृतिक विभिन्नता वाला देश है, जिसका प्रभाव हमारे साहित्य पर भी पड़ता है। उदाहरण के तौर पर हम रामायण को ले सकते हैं, तुलसीदास के राम तथा काव्य रामायण के राम के गुणों में जमीन आसमान का अंतर है। यही हाल शंकरदेव असम के सुप्रसिद्ध कवि तथा अन्य बंगाली, उड़िया आदि कवियों के काव्य में भी देखा जा स.कता है। भारत में हिंदू-मुस्लिम संस्कृति के विविध रूप देखने को मिलता है। साम्प्रदायिकता आज-कल हिंदू-मुस्लिम तहजीब की सबसे बड़ी समस्या के रूप में देखा जा सकता है। भारतीय साहित्यकारों ने समय-समय इन दोनों सम्प्रदायों के मध्य वैचारिक साम्यता स्थापित करने का प्रयास किया।

'हिंदी साहित्य में मुस्लिम साहित्यकारों का योगदान' विषय रोचक और संवेदनशील है। रोचक इसलिए कह सकते हैं क्योंकि इसमें मुस्लिम साहित्यकारों के पराये होने का दंश अपने पूरे नैरन्तर्य के साथ देखा जा सकता है। यदि उन्होंने

हिंदू धर्म अपना लिया होता तो, वह भी भारतीयता को धारण कर लेते जैसे पूरवर्ती आक्रान्ताओं के साथ देखा जा सकता है जैसे-शक, तातरी, हूण, मंगोल आदि। ये आक्रमणकारी अपनी पुरातन संस्कृति को भारतीय संस्कृति में आत्मसात करके हिंदुत्व में लीन हो गये तथा उनका विदेशीपन विलुप्त हो गया। इस कारण उनके योगदान पर पृथक रूप से कोई चर्चा कभी होती नहीं। जबकि मुस्लिम समाज कभी भी भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग न बन सका, जिसके कारण हम उनके योगदान को लेकर रस्साकस्सी खेलते रहते हैं। यही विषय आज के समय में चिन्ता का पर्याय है, जिसकी चरम अभिव्यक्ति हमें समय-समय पर दृष्टिगोचर होती रहती है।

1947 में रेलवे स्टेशन पर हिंदू पानी तथा मुस्लिम पानी के बोर्ड लगे रहते थे। यानी प्राकृतिक संसाधनों को धर्म के चश्मे से देखा जा सकता है। साहित्य और भाषा को भी धर्मों में बाँटकर देखना अलगाववादी मानसिकता का परिचायक है। 21वीं शताब्दी में यह समस्या और अधिक विकराल होती जा रही है तथा यह माना जा रहा है कि हिंदी भाषा हिंदुओं की तथा उर्दू मुसलमानों की भाषा है। 19वीं शताब्दी के अंतिम दशक में पण्डित प्रताप नारायण मिश्र की यह पंक्तियाँ- 'जपौ निरन्तर एक जबान, हिंदी हिंदू हिंदुस्तान', जैसी पंक्तियों ने इस सोच को और अधिक मजबूती प्रदान की। हिंदी साहित्य का मध्यकालीन साहित्य तो साम्प्रदायिक विचारों की अग्रभूमि के रूप में देखा जा सकता है।

19वीं शताब्दी में जब हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन परम्परा की एक रूपरेखा तैयार हो रही थी तब आदि काव्य तथा मध्यकालीन काव्य को धर्म के चश्मे से देखकर विभाजित करने का प्रयास किया गया।

मध्यकालीन कविता को संत साहित्य, सूफी साहित्य, राम भक्ति कविता, कृष्ण भक्ति कविता में विभाजन कर शायद हम भारतीयों को बताना चाहते हैं कि भारत में कवि केवल धर्म और संस्कृति के आधार पर कविता लिखता है, उसकी कविता में वैचारिक तथ्य शामिल नहीं हैं। दूसरी बात इस विभाजन को हम इस दृष्टि से भी देख सकते हैं कि यह विभाजन साहित्य को धर्म से ऊपर देखने में शायद असमर्थ है। तभी तो कबीर, रैदास, रसखान के काव्य में लोगों को सामाजिक समरसता के भाव नजर नहीं आते। रामचन्द्र शुक्ल ने तो अपने साहित्यिक नजरों से यह सिद्ध कर ही दिया था कि सूफी काव्य तो केवल

मुस्लिम विचारों की अभिव्यक्ति है तथा उस पर भारतीय संस्कृति का प्रभाव है ही नहीं। कबीर के प्रति भी उनकी दृष्टि जगजाहिर है।

हिंदी भाषा के विकास में जितना योगदान हिंदू साहित्यकारों का है उतना ही मुस्लिम का भी। 18वीं शताब्दी में, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश, ब्रज, अवधी, ऱेख्ता, उर्दू सभी सामान्य भाषाएँ थीं जो साहित्य के रूप में प्रकट हुईं। सभी लेखकों ने इन भाषाओं में साहित्य सृजन किया तथा इसी का परिणाम था कि 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ तक हिंदी भाषा का आधुनिक रूप हमारे सामने नजर आने लगता है।

आज जिस साहित्य को हम ब्रज साहित्य और काल साहित्य की उपाधि से अलंकृत करते हैं, 18वीं शताब्दी के अंत तक, इसे लेखकों ने अपनी कविता के रंग में यह स्थान नहीं दिया। क्योंकि वह इसे पूरे समुदाय की भाषा मानने वाले थे। मुस्लिम साहित्यकार जो फारसी या संस्कृत के वैचारिक प्रभाव से पूरित थे वह अपनी रचनाओं, नस्तालीक (वर्तमान में उर्दू लिपि) में लिखते थे तथा इसको हिंदवी, हिंदी और देहलवी नाम से अभिहित करते थे तथा जो अपनी रचनाओं की नागरी या कैथी लिपि में लिखने के अभ्यस्त थे वे अपनी भाषा को भाखा कहते थे। बाबा फरीद, अमीर खुसरो, मुल्ला दाउद, मंझन, जायसी आदि इसी हिंदवी के कवि थे। अमीर खुसरो अपनी भाषा को हिंदवी कहते हैं। बदायूंनी चन्दायन के साहित्य को हिंदवी कहते हैं। जायसी पद्मावत में लिखते हैं कि- 'अरबी तुर्की हिंदवी, भाषा जेती आहि। जामें मारग प्रेम का, सभै सराहैं ताहिं।'[1]

ऐसे असंख्य उदाहरण दिये जा सकते हैं जिनसे यह निश्चित रूप से कहा जा सके कि तत्कालीन समाज में हिंदी/उर्दू को साम्प्रदायिक चश्मे से नहीं देखा जाता था तथा सभी की यह इच्छा थी कि साहित्य सृजन में धर्म को न आने दिया जा। गालिब के समय तक आते-आते हिंदी, हिंदवी, उर्दू और देहलवी एक दूसरे के पर्याय के रूप में प्रयोग किए जाने लगे।

यह नितान्त रूप से कहा जा सकता है कि 13वीं शताब्दी से लेकर 19वीं शताब्दी के मध्य तक हिंदी को एक भाषा के रूप में पहचान दिलाने वालों में मुस्लिम साहित्यकारों तथा संतों का अभूतपूर्व योगदान है तथा बिना उनके शायद हम हिंदी के इस रूप की कल्पना भी नहीं कर सकते। समा (सूफी गायन की

एक पद्धति) की महफिलों में फारसी की तुलना में जिस कदर हिंदवी के दोहे उपयोग हो रहे थे, वह हिंदवी के लोकप्रियता का ही प्रभाव था तथा सूफी संतों ने अपनी संस्कृति को जनमानस के मध्य तक लाने के लिए इसी भाषा को तरजीह दी जैसे महावीर तथा बुद्ध ने पालि तथा प्राकृत को दी थी। एक बार महान सूफी संत गेसूदराज ने ख्वाजा साहब से हिंदवी की लोकप्रियता का कारण पूछा तो ख्वाजा साहब बोले कि हिंदवी बड़ी कोमल तथा माधुर्यपूर्ण है तथा यह इतनी मीठी है कि इसको बोलते-बोलते मेरे अंदर भी मिठास आ जाती है तथा यह भारतीय संस्कृति के सनातन ललित कला को प्रतिबिम्बित करने का एक अनोखा हथियार है।

हिंदवी भाषा कहकर अपना साहित्य रचने वालों की स्थिति एक जैसी थी, चाहे वे हिंदू हों या मुसलमान। कबीर हिंदवी को संस्कृत से अधिक समृद्ध मानते हैं, वहीं तुलसीदास हिंदी को श्रेष्ठ मानते हैं। गुरु गोविन्द सिंह ने भी कृष्णावतार रचना में भाखा को अभिव्यक्ति का महत्वपूर्ण आधार स्तम्भ के रूप में निरूपित किया है। ये तथ्य स्पष्ट करते हैं कि हिंदवी को आगे बढ़ाने में सभी का योगदान है। इसको धर्म के आलम्बन में देखना उन सभी साहित्यकारों के साथ नाइंसाफी होगी जिन्होंने अपनी सारी जिन्दगी इसके पुनरुद्धार तथा विकास में अर्पण कर दिया।

भारत में हिंदू तथा इस्लाम धर्म के दो समानान्तर आंदोलनों का उदय 8वीं शताब्दी में हुआ जिसका पूर्ण विकास 15वीं तथा 16वीं शताब्दी में देखने को मिलता है। दोनों के ही भक्ति स्वरूप का बीज उपनिषदों, भागवतगीता तथा भागवत पुराण में मिलते हैं। इन दोनों ही आंदोलनों की प्रमुख विशेषता यह है कि इन्होंने भारतीय समाज को सैद्धांतिक विश्वासों, कर्मकाण्डों, जातिवाद, साम्प्रदायिकता तथा घृणा जैसी बुराइयों से मुक्त करवाया। दोनों के कार्य क्षेत्र समान थे, साधना पद्धति एक थी, जनमानस एक थे तथा एक ही भाषा को आधार बनाकर कार्य किया।

जब संवाद की भाषा एक ही हो तो कैसे यह कहा जाए कि मुस्लिम साहित्यकारों का योगदान हिंदी को उसकी उत्कृष्ट स्थान प्राप्ति में कम है।

एक और समस्या यह है कि अधिकांशत: हिंदी समालोचक इस तथ्य को

स्वीकारते हैं कि मुस्लिम साहित्यकारों ने केवल मसनवी शैली को ही आधार बनाया बल्कि अगर गहन अनुसंधान किया जाए तो यह स्पष्ट हो जाता है कि सूफी कवियों ने ही हिंदी साहित्य में सबसे पहले दोनों ही शक्ल में काव्य निबंधन की परम्परा का श्रीगणेश किया।

संदेश रासक इसका प्रामाणिक उदाहरण है। (अब्दुल रहमान कृत) उन्होंने 1213 ई. के आसपास प्रेमाख्यानक आधारित विरह काव्य की रचना की। इस साहित्य से एक तथ्य यह भी निकलता है कि मुस्लिम साहित्यकारों की पकड़ प्राकृत तथा अपभ्रंश जैसी भाषाओं पर भी समान रूप से थी तथा जैन मंदिरों से प्राप्त पाण्डुलिपियाँ इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। इसके अतिरिक्त जैन साहित्य तथा मुस्लिम साहित्य के कथानक भी आपस में मेल खाते हैं तथा दोनों ने शृंगार के संयोग तथा वियोग दोनों अवस्थाओं का समान रूप से चित्रण किया है। हिंदी साहित्य में मुस्लिम साहित्यकारों के योगदान के विषय में लिखते हुए दिनकर जी संस्कृति के चार अध्याय में लिखते हैं कि–'भारत में हिंदू मुसलमान सदियों से साथ-साथ रहते आ रहे हैं पर एक-दूसरे के बारे में उन्हें सही जानकारी नहीं के बराबर है।' इसके अतिरिक्त अभी हाल ही में प्रकाशित हिंदी साहित्य में मुस्लिम साहित्यकार (सम्पादक-जनार्दन मिश्र) लेखक - डॉ. रंजन जैदी राष्ट्रकवि के इस कथन की पुष्टि करता है। इस पुस्तक में उन्होंने 12 लेखकों के आलेखों को आधार बनाकर इसकी पुष्टि की है।

भारत विभाजन का प्रभाव हमारे तत्कालीन साहित्य पर भी दृष्टिगोचर होता है। हिंदुओं द्वारा लिखे जा रहे साहित्यिक रचनाओं में से अब मुस्लिम पात्रों की अनदेखी हो रही है। जबकि इसके विपरीत मुस्लिम साहित्यकार विभाजन के पूर्व भी और बाद भी दोनों ही समय में अपने साहित्य में हिंदू पात्रों को महत्व देते रहे हैं। उनके साहित्य में आज भी संस्कृत, संस्कृति तथा हिंदुस्तानी तीनों ही विद्यमान है। मुस्लिम साहित्यकारों ने तत्कालीन शासकों द्वारा किए जा रहे हिंदू विरोधी नीतियों, अव्यावहारिक विषयों तथा अत्याचारों को सदैव ही अपने काव्य में तरजीह दी है। मुस्लिम समाज में पैदा हुए सूफी संतों ने जहाँ एक तरफ हुमायूँ पर फिकरे कसें तो दूसरी तरफ जायसी ने अलाउद्दीन खिलजी को भी नहीं बख्शा। कबीर ने भी सिकन्दर लोदी की खूब खिंचाई की।

हिंदी साहित्य के इतिहास में आदिकाल से ही मुस्लिम रचनाकारों की एक

लंबी परंपरा दिखाई देती है। भक्तिकाल के अंतर्गत 'सूफी काव्य धारा' इस बात का प्रमाण है कि वे समन्वय में अटूट विश्वास रखते थे क्योंकि इनके माध्यम से कही गई प्रेम कहानियों में हिंदू समाज के देवी देवताओं का चित्रण मिलता है और इन सूफी रचनाकारों के काव्य को हिंदू-मुस्लिम दोनों वर्ग के लोग बड़े ही चाव से पढ़ते हैं। ईश्वर की भक्ति करने के लिए किसी विशेष धर्म का होना अनिवार्य नहीं है इस बात की झलक रसखान में दिखाई देती है जो मुसलमान होते हुए भी कृष्ण भक्ति शाखा के प्रमुख कवि हैं।

हिंदी साहित्य के इतिहास में समन्वय को बड़े ही शिद्दत से प्रस्तुत करने वाले मुस्लिम रचनाकारों में अमीर खुसरो, रसखान, रहीम, राही मासूम रजा, अब्दुल बिस्मिल्लाह, मंजूर एहतेशाम, शानी, नासिरा शर्मा, तसलीमा नसरीन, बदिउज्जमाँ खां, अब्दुल हुसैन, फैज अहमद फैज आदि प्रमुख हैं जिन्होंने हिंदू-मुस्लिमों के टूटे हुए दिलों को एक करने का प्रयास किया है।

सन् 1857 ई. के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में भारत की हिंदू-मुस्लिम जनता ने पहली बार अंग्रेजों की हुकूमत के खिलाफ मिलकर लड़ाई लड़ी, तब उनका एक ही उद्देश्य था कि भारत को अंग्रेजों से मुक्ति दिलाएं। लेकिन अंग्रेजों को ज्ञात हो गया था कि अगर भारत में राज करना है तो हिंदू और मुस्लिम जनता जो कि एक है उसे विभाजित करना चाहिए, इसलिए उन्होंने 'फूट डालो, राज करो' की नीति अपनाई। जिस भारत के एकता की दुहाई संसार भर के देशों में दी जाती थी, वह भारत सन् 1947 ई. में धर्म, भाषा एवं जाति के आधार पर विभाजित हो गया और भारतीय मुसलमानों के लिए छोड़ गया डर, शक, भय, असुरक्षा, नफरत जैसे भयानक शब्द। भारत विभाजन के पश्चात जरूरत थी कि भारतीय मुसलमान जो अपने नए मुल्क पाकिस्तान की बजाय भारत में ही रहना स्वीकार कर लिया था, उनकी सुरक्षा का प्रश्न क्योंकि भारत की जनता 'विशेष कर बहुसंख्यक समाज' विभाजन का प्रमुख कारण मुसलमानों को ही मानती थी। हिंदू और मुस्लिम समाज के दिलों में नफरत, हिंसा के कारण देश की फिजाएं खराब हो रही हैं, ऐसे में भारतीय संविधान और साहित्यकारों को याद किया जाता है, जिन्होंने नफरत की आग को कम करने की कोशिश हमेशा से की है।

धर्म अपने मूल चरित्र में मानव विरोधी नहीं होता, वह मनुष्य को सही मार्ग पर लाने के लिए मदद करता है। भारत के स्वतंत्र होने के बाद, हिंदी साहित्यकारों

ने हिंदू-मुस्लिम लोगों के बीच समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया है। राही मासूम रजा हिंदी साहित्य के प्रसिद्ध रचनाकार हैं। उनका प्रसिद्ध उपन्यास 'आधा गाँव' जो गाजीपुर के गंगौली के इर्द-गिर्द घुमता हुआ दिखाई देता है लेकिन इस गंगौली जैसे भारत में सैकड़ों मुस्लिम बहुल गाँवों का सटीक चित्रण इस उपन्यास में दिखाई देता है। इतना ही नहीं इस उपन्यास का पात्र फुन्नन मियां तो हिंदी साहित्य में अपने विचारों के कारण विशिष्ट स्थान रखता है। वह गंगौली गांव के मुस्लिम चरित्र का प्रतिनिधित्व करता है। फुन्नन मियां कोई बड़े ज्ञानी, नेता, संत, विद्वान्, समाज सुधारक नहीं हैं, उनके पास फलसफों, तारीखों का कोई जखीरा नहीं है, वह पढ़े लिखे नहीं है, देश दुनिया की बहुत-सी बातें वह नहीं जानते, उन्हें यह भी नहीं पता कि इस देश में हिंदू-मुस्लिम दो जातियों के लोग हैं, देश में मुसलमानों के लिए नए राष्ट्र की मांग की जा रही है, लेकिन 'आधा गाँव' के मुस्लिम अपना गंगौली छोड़कर नए मुस्लिम बहुल राष्ट्र में नहीं जाना चाहते हैं। उनका मन गंगौली में लग गया है। वे ठाकुर कुंवरपाल सिंह, परशुराम तथा झिंगुरिया आदि हिंदू भाइयों के साथ रहना चाहते हैं और उसका इन हिंदू भाइयों पर विश्वास है।

गंगौली अपने-आप में हिंदू-मुस्लिम समन्वय का प्रतीक दिखाई देता है क्योंकि तन्नु अलीगढ़ से आये काली शेरवानी से कहता है कि "मैं मुसलमान हूँ। लेकिन मुझे इस गाँव से मुहब्बत है, क्योंकि मैं खुद यह गाँव हूँ। मैं नील के इस गोदाम, इस तालाब और इन कच्चे रास्तों से प्यार करता हूँ क्योंकि यह मेरी ही मुख्तलिफ रूप हैं। मैदाने-जंग में जब मैं मौत के बहुत करीब आ जाती थीं तो मुझे अल्लाह जरूर याद आता था, लेकिन मक्कए,-मुअज्जमाया कर्बलाए,-मुअल्ला की जगह मुझे गंगौली याद आती है।"[2] राही मासूम रजा का सम्पूर्ण साहित्य साम्प्रदायिकता के विरुद्ध है, उनके साहित्य में हिंदुस्तानी-संस्कृति और उसकी साझी विरासत की झलक मिलती है। राही हिंदी में प्रेमचंद, यशपाल, भीष्म साहनी तथा मुक्तिबोध की परम्परा में हैं जो एक बड़े रचनाकार होने के साथ-साथ चिन्तक भी हैं। इनके साहित्य का प्रमुख उद्देश्य देश की अखंडता, एकता, साझी विरासत की रक्षा को बढ़ावा देना है क्योंकि वर्तमान समाज देश के मुस्लिम तबके को शक, नफरत से देख रहा है। इसलिए इनके दिलों को साफ करने का कार्य हिंदी साहित्य के रचनाकारों का है। राही उन शक्तियों एवं प्रवृतियों का विरोध करते हैं जिनमें भारतीय जनता की एकता को तोड़ने वाले

तत्व निहित हो जैसे धर्म, संप्रदाय, जातिवाद, भाषा के आधार पर भारतीय जनता को बांटना आदि का विरोध राही के साहित्य में दृष्टिगोचर होता है। साझी संस्कृति की विरासत की झलक इनके साहित्य में दिखाई देती है।

राही का दूसरा उपन्यास 'टोपी शुक्ला' अपने आप में समन्वय की विराट चेष्टा लेकर पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत होता है। इस उपन्यास का समय टोपी और राही का होते हुए भी हमारा और आपका भी समय है। इस उपन्यास की कहानी तीन प्रमुख पात्र- बलभद्र नारायण शुक्ला (टोपी शुक्ला), इफ्फन और इफ्फन की पत्नी सकीना के इर्द-गिर्द घुमती हुई दिखाई देती है। इस उपन्यास के माध्यम से राही मासूम रजा यह दिखाने का प्रयास करते हैं कि मित्रता में धर्म का स्थान नगणय हो जाता है। टोपी शुक्ला, इफ्फन और सकीना की दोस्ती बहुत ही गहरी हो जाती है। इफ्फन के घर टोपी का आना-जाना निर्विरोध चलता ही रहता है चाहे इफ्फन घर पर हो या न हो। इतना ही नहीं बल्कि सकीना टोपी को लेकर फिल्म भी देखने जाती है। जब इफ्फन नौकरी के बहाने परिवार सहित जम्मू जाता है, तब भी टोपी को इफ्फन, सकीना, शबनम की याद आती थी।

अत: कहा जा सकता है कि 'टोपी शुक्ला' का परिवेश हमारा अपना परिवेश दिखाई देता है। आज भी मुस्लिम परिवेश को देख कर लोगों के मन में नफरत, भय, शंका दिखाई देती है। राही ने 'टोपी शुक्ला' उपन्यास में मुस्लिम समाज के शिनाख्त और उनके प्रति नफरत और हिंसक प्रवृति को जिस शिल्प के साथ पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत किया है वह अद्‌भुत है।

जब टोपी शुक्ला अपनी काली शेरवानी से सज-धजकर ट्रेन से अपने गाँव की ओर जाते हैं तभी ट्रेन में पंडित जी खाना खा रहे हैं और वह पंडित से आग्रह करता है कि थोड़ा खिसक के बैठ जा। लेकिन पंडित टोपी की बातों को अनसुना करता है तभी सामने बैठे तोंदवाले सज्जन ने कहा कि 'इस तरह ऐंठना हो तो पाकिस्तान जाओ।' यह बात टोपी की समझ में आ गई थी कि उसे वह यात्री मुस्लिम समझ रहा है तभी टोपी कहता है कि ''मैं हिंदू हूँ''। टोपी ने कहा, मैं 'बलभद्र नारायण शुक्ला हूँ, और चलिए मान लिया कि मैं शेख सलामत हूँ तो क्या हुआ' ये बेंचें यात्रियों के बैठने को लगी हैं। मैं बाबा का खाना छीन तो नहीं रहा था। आप ही लोग मुसलमानों को भारत-विरोधी दल में धकेल रहे हैं। क्या शेरवानी मुसलमान है, यह तो कनिष्क के साथ आई थी। यह पायजामा भी

कनिष्क ही का है। हिंदू-मुस्लिम का भेदभाव झूठा है बेटा! पंडित जी ने कहा यह तो भगवान की लीला है। राही मासूम रजा के पात्र भारत देश से बड़ी मोहब्बत करते हैं क्योंकि उनका मानना है कि इसी भारत देश में इनका बचपन बीता, पूर्वजों की यादें, उनकी कब्र हैं और इनसे जिन्ना साहब हमें अलग नहीं कर सकते। उन्हें जितना मुस्लिमों पर विश्वास है उतना ही हिंदुओं पर भी। जो लोग पाकिस्तान जा चुके हैं उनके संदर्भ में सईदा कहती है कि 'मगर पाकिस्तान से कोई वापस नहीं आता, तो क्या पाकिस्तान मृत्यु-देश है।

राही मासूम रजा की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उनके साहित्य में समन्वय, मुस्लिम जनता का अपने देश के प्रति देश प्रेम, साम्प्रदायिकता का विरोध, साझी संस्कृति की पैरवी की गई है। राही के समग्र साहित्य में हमें समन्वय के बिंदु नजर आते हैं। राही के उपन्यास 'हिम्मत जौनपुरी', 'ओस की एक बूंद', 'दिल एक सादा कागज', असंतोष के दिन' आदि में हिंदू-मुस्लिम समाज के बीच समन्वय करने की बात किसी-न-किसी पात्र के माध्यम से देखा जा सकता है।

मंजूर एहतेशाम का प्रसिद्ध उपन्यास 'सूखा बरगद' का पात्र परवेज काफी समय पाकिस्तान और अमेरिका में रहकर भारत वापस लौट आता है तब सभी को हैरत होती है कि जहाँ मुसलमान पाकिस्तान और अमेरिका जाना चाहता है वहीं परवेज को भारत में बसना पसंद है। परवेज अपने अनुभवों को व्यक्त करते हुए कहता है कि मुसलमानों के लिए हिंदुस्तान ही बढ़िया राष्ट्र साबित हो सकता है खासतौर से पाकिस्तान या दूसरे इस्लामी देशों के मुकाबले कहीं बेहतर घर है। अत: कहा जा सकता है कि मंजूर एहतेशाम ने अपने साहित्य के माध्यम से हिंदू-मुस्लिम समन्वय को बढ़ावा देने का कार्य किया। 'सूखा बरगद' का सुहेल अपने-आप में राही के पात्र फुन्नन मियां, कम्मो, टोपी शुक्ला की सहज ही याद दिलाता है।

उसका भारत से और यहाँ के हिंदू भाइयों से इतना लगाव है कि वह अपने पूर्वजों के निर्णय को उचित मानते हुए कहता है कि 'हमारे बाप बेवकूफ नहीं थे जो सन 47 में यहाँ रहना तय किया। अगर सिर्फ कमाई देखी जाए तो उन जितने पढ़े-लिखे लोगों के लिए एक नए मुल्क में कहीं ज्यादा संभावनाएं थी। लेकिन अजनबी मुसलमानों के बीच चाहे वह अरब के हो, चाहे पाकिस्तान के

जीने और मरने से बेहतर अपने से हिंदुओं के बीच जीवन बिताना था।' मंजूर एहतेशाम का पात्र उस मुल्क से नफरत करता है जो मुल्क धर्म, जाति-मजहब, और शक के आधार पर विभाजित हो गया हो। उनका पात्र भारत में हिंदुओं के बीच ही अपने-आप को सुरक्षित महसूस करते हुए दिखाई देता है क्योंकि मंजूर एहतेशाम समन्वय में विश्वास रखने वाले लेखक हैं। इसी कारण उनका पात्र गुस्से में कहता है कि 'उस मुल्क से हमदर्दी कैसी, जिसे तुमने आज तक देखा नहीं' और इस गुनाह के एहसास से भी कैसे इनकार किया जाए कि हमदर्दी थी।'

विभाजन के पश्चात मुस्लिम जन-जीवन की गहरी जानकारी रखने वाले तो पाकिस्तान जा चुके थे लेकिन राही, शानी, अब्दुल बिस्मिल्लाह जैसे बड़े साहित्यकार अपने कथा-साहित्य के माध्यम से टूटे हुए दिलों को मिलाने का कार्य कर रहे थे। इनके इस नेक काम में यशपाल, भीष्म साहनी, विभूति नारायण राय, कामतानाथ, रवीन्द्र कालिया और कमलेश्वर जैसे रचनाकारों ने सांप्रदायिक तत्वों का विरोध एवं समन्वय के सिद्धांत का समर्थन किया है। मनुष्य का सबसे बड़ा धर्म इंसानियत है। विभाजन के पूर्व और बाद में कई हिंदू-मुस्लिम दंगे हुए, इनके बीच वैचारिक मतभेद देखे जा सकते हैं लेकिन यही धर्म आज इस देश में अमन और शाँति के लिए जिम्मेवार है। देश में हिंदू मुस्लिम का साथ रहने के पीछे गाँधी, मौलाना आजाद, अब्दुल कलाम जैसे बुद्धिजीवियों और साहित्यकारों के योगदान को भुला नहीं जा सकता।

हिंदी साहित्य के रचनाकारों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से हिंदू-मुस्लिम समन्वय के बिन्दुओं को रेखांकित किया है। भारत देश की महान संस्कृति का गौरव-गान, तथा हिंदू-मुस्लिम त्योहारों का चित्रण इनकी रचनाओं में दृष्टिगोचर होता है। इन रचनाकारों की रचनाओं को पढ़कर पाठक के मन में बैठी रूढ़ एवं मुसलमानों के प्रति उनकी परंपरावादी दृष्टिकोण में आमूल परिवर्तन दिखाई देता है, तथा उनके मन में एक-दूसरे के प्रति अपनेपन की भावना जागृत होती है।

मुस्लिम हिंदी कवियों ने पूरे तन, मन, धन से हिंदी की सेवा की तथा हिंदी साहित्य को समृद्ध किया। अब्दुल वाहिद तथा शाह मुहम्मद हुमायूँ तथा अकबर के दरबार से सम्बद्ध थे तथा इनका अरबी, फारसी, तुर्की, संस्कृत तथा हिंदी सभी भाषाओं पर अपनी पकड़ थी। अब्दुल रहमत पंजाब के प्रथम हिंदी मुस्लिम

कवि थे। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने संदेश रासक को अपभ्रंश का महत्वपूर्ण ग्रंथ माना है।

बाबा फरीद तथा अमीर खुसरो के योगदानों को हम कैसे विस्मृत कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त अब्दुल रहीम खानखाना, रसखान, सूजन, ताज जैसे सैकड़ों नाम हैं जिनकी रचनाओं को यदि हिंदी साहित्य में स्थान न दिया जाए तो हिंदी साहित्य अधूरा ही रह जायेगा। नामवर सिंह ने कहा था कि हिंदी साहित्य से मुसलमान पात्र गायब हो रहे हैं। 1990 में शानी ने इसी प्रश्न को एक बातचीत के दौरान प्रखर ढंग से प्रस्तुत किया। उनका कहना था कि हिंदी साहित्य में मुसलमान पात्र थे ही कहाँ जो गायब होंगे। शानी का तर्क है कि भारत के अन्य भाषाओं यथा बंगला, तेलगु, असमिया में साहित्यकार मुसलमान पात्रों का प्रयोग करता रहा है, मगर हिंदी में वह प्राय लुप्त-सा है। विभाजन के बाद हिंदी साहित्य में हिंदू परिवारों के साथ जो हुआ उसका बहुआयामी चित्रण तो मिलता है मगर विभाजन के बाद भारतीय मुसलमान और उसकी मर्मांतक पीड़ा की करुण पुकार को सुनने वाला कोई नहीं था। और तो और हिंदी साहित्यकारों के द्वारा सारा ठिकरा मुसलमानों के मत्थे ही मढ़ दिया गया जैसे सारा किया धरा उनका ही हो। भारत में 20 करोड़ मुसलमान रहते हैं मगर उनके रीतिरिवाज, उनके विचारों को तरजीह देना किसी भी हिंदी साहित्यकार को उल्लेख करना सही नहीं लगा।

इन सभी तथ्यों का मंथन करने पर हम कह सकते हैं कि मुसलमान लेखकों ने हिंदी साहित्य को अपनाया, उसका परिमार्जन किया। मुसलमान लेखकों की ही देन है कि हिंदी साहित्य आज इतना समृद्ध है कि विश्व के प्रमुख मंचों पर इसकी अपनी एक अलग पहचान है। आज यह विश्व की सबसे अधिक बोली, लिखी तथा कुछ नामचीन भाषाओं में से एक है। फिर भी मुसलमान लेखकों का हिंदी साहित्य में योगदान के रूप में जब बात उठती है तो यह हमारे सामने एक यक्ष प्रश्न की भाँति नजर आने लगता है।

अब समय आ गया है कि हिंदी साहित्य को पुन: मूल्यांकित किया जाए तथा मुस्लिम साहित्यकारों, सूफी संतों के योगदान पर एक जोरदार बहस हो। एक नये युग का सूत्रपात किया जाए, जहाँ हिंदी साहित्य किसी मजहब की भाषा बनकर हमारे सामने न आए, बल्कि यह धार्मिक सद्भाव तथा सांस्कृतिक एकता को लेकर आगे बढ़ने वाली एक भाषा के रूप में चिन्हित किया जाए। साथ ही हिंदी

साहित्यकारों को अपने साहित्य में मुसलमान पात्रों, उनकी सभ्यता संस्कृति को वही स्थान देना चाहिए जो मुसलमान लेखक अपने काव्य में देता है। आज के युग में साम्प्रदायिक ताकतें जिस तरह आगे बढ़ रही हैं उसको धूल धूसरित करने में साहित्य एक मात्र विकल्प है। इसको समझते हुए हिंदू तथा मुसलमान दोनों साहित्यकारों को सामान्य रूप से हिंदी को अपना मानकर दोनों की संस्कृति को साझा महत्व प्रदान करना चाहिए।[3]

संदर्भ-ग्रन्थ सूची

1. नारंग गोपिचंद-अमीर खुसरो का हिन्दवी काव्य
2. आधा गांव, राही मासूम राजा, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ, 250
3. हिंदी के मुस्लिम कथाकार - सं. एम. फिरोज खान, वाङमय प्रकाशन, 2012

परिशिष्ट-I

हिंदी साहित्य का आदिकाल और मुस्लिम रचनाकार

अब्दुर्रहमान

अद्दहमाण (अब्दुर रहमान) ने संदेश रासक नामक प्रसिद्ध काव्य की रचना की है। इनकी जन्मतिथि का अभी तक अंतिम रूप से निर्णय नहीं हो सका है। किंतु संदेश रासक के अंत:साक्ष्य के आधार पर मुनि जिनविजय ने कवि अब्दुल रहमान को अमीर खुसरो से पूर्ववर्ती सिद्ध किया है और इनका जन्म 12वीं शताब्दी में हुआ बताया है। साहित्य के एक अन्य इतिहासकार केशवराम काशीराम शास्त्री के अनुसार अब्दुर रहमान का जन्म 15वीं शताब्दी में हुआ। पर शास्त्री जी ने अपने मत की पुष्टि में कोई साक्ष्य नहीं दिया है। संदेश रासक के छंद संख्या तीन और चार के आधार पर इतना अवश्य कहा जा सकता है कि भारत के पश्चिम भाग में स्थित म्लेच्छ देश के अंतर्गत मीरहुसेन के पुत्र के रूप में अब्दुर रहमान का जन्म हुआ जो प्राकृत काव्य में निपुण था। केशवराम काशीराम शास्त्री का अनुमान है कि पश्चिम में भरुच के पास चौमूर नगर था जहाँ मुसलमानों का राज्य स्थापित होने पर अब्दुल रहमान के पूर्वज ने किसी हिंदू बालिका से विवाह कर लिया और उसी वंश में अब्दुल रहमान उत्पन्न हुआ जिसने प्राकृत एवं अपभ्रंश का अध्ययन किया एवं अपने ग्रंथ की रचना ग्राम्य अपभ्रंश में की। अब्दुर रहमान की केवल एक ही कृति है - संदेश रासक और इसकी हस्तलिखित प्रति पाटण के जैन भंडार में मिली है। अत: सेमझा जाता है कि कवि, किन्हीं कारणों से, पाटण में आ बसे होंगे और हिंदुओं तथा जैनों के संपर्क में रहने के कारण उन्होंने संस्कृत-प्राकृत-अपभ्रंश सीख ली होगी।

पाइय पिय बडवानलहु विरग्गिहि उप्पन्ति।
जं सिन्तउ थोरंगियहि जलइ पडिल्ली झन्ति।
सो सिज्जंत विवज्जइ सासे दीउंहएहि पयच्छि।
निबउंत बाह भर लोयणाइ धूमइण सिच्चंति।।

'संदेश रासक' में विविध छंदों का सुंदर प्रयोग हुआ है, हालाँकि इसका मुख्य छंद रासक है। इस प्रबंध काव्य में रासक के गेय रूप का पता चलता है। दोहा

छंद का भी सुंदर प्रयोग है। गाहा, पद्धरिया, रइडा, अडिल्ल और मालिनी छंद भी इसमें पर्याप्त है।

डॉ. नामवर सिंह 'संदेश रासक' की भाषा के संबंध में कहते हैं, ''यह समझना भ्रांति है कि वह ग्राम्य अपभ्रंश में लिखा हुआ काव्य है। वस्तुतः इसके भाव और भाषा पर नागरिकता की छाप है। छंद विविधता और अलंकार-सज्जा दोनों दृष्टियों से 'संदेश रासक' अत्यंत परिमार्जित रचना है।''[1]

इस संदेश रासक में ऐसी करुणा है जो पाठक को बरबस आकृष्ट कर लेती है। उपमाएँ परंपरागत और रूढ़ भी हैं तथापि बाह्यावृत्त की वैसी व्यंजना उसमें नहीं है जैसी आंतरिक अनुभूति की। ऋतु-प्रसंग में बाह्य-प्रकृति इस रूप में चित्रित नहीं हुई है, जिसमें आंतरिक अनुभूति की व्यंजना दब जाए। प्रिय के नगर से आने वाले अपरिचित पथिक के प्रति नायिका के चित्त में किसी प्रकार के दुराव का भाव नहीं है। वह बड़े सहज ढंग से अपनी कहानी कह जाती है। सारा वातावरण विश्वास और घरेलूपन का है। इस प्रकार 'संदेश रासक' अब्दुर्रहमान की अद्‌भुत विरह रचना है।

अमीर खुसरो

अबुल हसन यमीनुद्दीन अमीर खुसरो (1253-1325 ई.) 14वीं सदी के लगभग दिल्ली के निकट रहने वाले एक प्रमुख कवि, शायर, गायक और संगीतकार थे।[2] उनका परिवार कई पीढ़ियों से राजदरबार से संबंधित था, स्वयं अमीर खुसरो ने आठ सुल्तानों का शासन देखा था। खुसरो प्रथम मुस्लिम कवि थे जिन्होंने हिंदी शब्दों का खुलकर प्रयोग किया है। वह पहले व्यक्ति थे जिन्होंने हिंदी, हिंदवी और फारसी में एक साथ लिखा। उन्हें खड़ी बोली के आविष्कार का श्रेय दिया जाता है। वे अपनी पहेलियों और मुकरियों के लिए जाने जाते हैं। सबसे पहले उन्हीं ने अपनी भाषा के लिए हिंदवी का उल्लेख किया था। वे फारसी के कवि भी थे। उनको दिल्ली सल्तनत का आश्रय मिला हुआ था। उनके ग्रंथों की सूची लम्बी है।

मध्य एशिया की लाचन जाति के तुर्क सैफुद्दीन के पुत्र अमीर खुसरो का जन्म एटा उत्तर प्रदेश के पटियाली नामक कस्बे में हुआ था। लाचन जाति के तुर्क चंगेज खाँ के आक्रमणों से पीड़ित होकर बलबन (1266-1286 ई.) के राज्यकाल में शरणार्थी के रूप में भारत में आ बसे थे। खुसरो की माँ बलबन

के युद्धमंत्री इमादुतुल मुल्क की पुत्री तथा एक भारतीय मुसलमान महिला थीं। सात वर्ष की अवस्था में खुसरो के पिता का देहान्त हो गया। किशोरावस्था में उन्होंने कविता लिखना प्रारम्भ किया और 20 वर्ष के होते होते वे कवि के रूप में प्रसिद्ध हो गए। खुसरो में व्यावहारिक बुद्धि की कोई कमी नहीं थी। सामाजिक जीवन की खुसरो ने कभी अवहेलना नहीं की। खुसरो ने अपना सारा जीवन राज्याश्रय में ही बिताया। राजदरबार में रहते हुए भी खुसरो हमेशा कवि, कलाकार, संगीतज्ञ और सैनिक ही बने रहे। साहित्य के अतिरिक्त संगीत के क्षेत्र में भी खुसरो का महत्वपूर्ण योगदान है। उन्होंने भारतीय और ईरानी रागों का सुन्दर मिश्रण किया और एक नवीन राग शैली इमान, जिल्फ, साजगरी आदि को जन्म दिया। भारतीय गायन में कव्वाली और सितार को इन्हीं की देन माना जाता है। इन्होंने गीत के तर्ज पर फारसी में और अरबी गजल के शब्दों को मिलाकर कई पहेलियाँ और दोहे भी लिखे हैं।

माना जाता है कि खुसरो ने काव्य के क्षेत्र में शिक्षा किसी व्यक्ति विशेष से न लेकर सादी, सनाई, खलकानी, अनवरी तथा कमाल आदि के काव्य-ग्रन्थों से ली। विशेषत: खलकानी, सनाई और अनवरी का तो उनकी कई रचनाओं तथा कृतियों पर स्पष्ट प्रभाव है। उनकी साहित्यिक कृतियों में खालिक बारी (थिसॉरस ग्रंथ), हलत-ए-कन्हैया, नजराना-इन-हिंदी, शिरीन खुसरो, सिकंदरी और तुगलकनामा प्रमुख हैं। तुगलकनामा इनकी अंतिम कृति मानी जाती है। खुसरो अपने समय में अपनी पहेलियों के लिए भी बेहद प्रसिद्ध हुआ। उनकी पहेलियाँ आज भी प्रासंगिक मानी जाती हैं। माना जाता है उन्होंने राज्याश्रयी कवि होते हुए भी सामान्य जन के लिए भी साहित्य सृजन किया।

खुसरो सच्चे अर्थों में एक देशभक्त कवि थे। उनको जहाँ भी मौका मिला उन्होंने अपने देशभक्त होने का प्रमाण दिया। भारतीय पक्षियों का वर्णन करते हुए भारतीय ज्ञान, दर्शन, अतिथि-सत्कार, फूलों-वृक्षों, रीति-रिवाजों तथा सौन्दर्य की मुक्तकंठ से प्रशंसा करते हैं। एक अन्य स्थान पर वे कहते हैं, 'मैं हिंदुस्तान की तूती हूँ। अगर तुम वास्तव में मुझसे जानना चाहते हो, तो हिंदवी में पूछो, मैं तुम्हें अनुपम बातें बता सकूँगा।' इससे स्पष्ट संकेत मिलता है कि फारसी के इतने बड़े कवि होते हुए भी अपनी मातृभाषा 'हिन्दवी का उन्हें कम गर्व न था। वे एक कवि होने के साथ-साथ एक अच्छे संगीतज्ञ भी थे। उन्होंने संगीत को आधुनिक रूप प्रदान किया। वे कई भाषाओं के जानकार होते हुए भी हिंदी तथा फारसी

भाषा में अधिक रचनाएँ की। खुसरो को खड़ी बोली हिंदी का प्रथम कवि माना जाता है। हालाँकि, खड़ी बोली में उनकी अधिकांश रचनाएँ, नष्ट हो गईं और उनके नाम से उद्धृत कार्य हर जगह संदिग्ध है। लेकिन भारत की जमीन को इतना प्यार करने वाले संवेदनशील कवि ने जनता की बोली को अवश्य अपनाया होगा।

मध्यकालीन भारत के इतिहास की लंबे समय से दो आधारों पर व्याख्या की गई थी– मध्य एशियाई आक्रमणकारियों द्वारा भारतीय सभ्यता के विनाश का युग और मिश्रित संस्कृति का विकास। लेकिन उपरोक्त शब्द विरोधाभासी अर्थ को दर्शाते हैं क्योंकि यदि विदेशियों के आगमन ने भारत के गौरवशाली अतीत को पूरी तरह से समाप्त कर दिया तो हमारे अध्ययन काल में सांस्कृतिक अस्मिता का सुधार कैसे हो सकता है। इस संबंध में, इस अवधि के सांप्रदायिकतावादी आधुनिक विद्वानों को जिम्मेदार ठहराया जा सकता है जिन्होंने हिंदू और मुस्लिम दोनों की श्रेष्ठता पर या 'सामुदायिक संकट' की तथाकथित धारणा के साथ अवैज्ञानिक दृष्टिकोण का प्रसार करने की मांग की। वास्तव में, कई निष्पक्ष उपचारों को छोड़कर मध्यकालीन भारतीय इतिहास लेखन में प्रभुत्व स्थापित करने वाले मार्क्सवादी विद्वानों के पूर्वाग्रह की पहचान करना इतना कठिन भी नहीं है। हालाँकि, इस मिश्रित परंपरा की एक प्रमुख शाखा के रूप में रहस्यवादी साहित्यिक प्रथा भक्ति और सूफी आंदोलन से पनपी थी, जिसने ईश्वर के लिए प्रेम और भक्ति का विचार दिया, साथ ही साथ मानवीय संबंधों के आध्यात्मिक प्रसार के माध्यम से सामंजस्यपूर्ण सामाजिक संबंधों पर जोर दिया।

फारसी का सर्वमान्य कवि हिंदी भाषा में आकर विवादास्पद बन गया मगर आम लोगों के लिए नहीं बल्कि शोधकर्ताओं के लिए। लोगों ने इस शायर के हिंदवी कलाम को इस प्रकार स्वीकार किया है कि वह आज भी कई शताब्दियों पश्चात उनके दिलों, स्मृतियों, और जुबानों में बसा हुआ है। यह झगड़ा शोधकर्ताओं ने पैदा किया है कि यह कलाम उस शायर का है भी या नहीं, शायद जानबूझ कर अपने निजी स्वार्थ के कारण। झगड़ा तो तब पैदा हुआ जब खुसरो की सारी फारसी शायरी तो लिखित रूप में सुरक्षित चली आती है पर शायर ने अपने हिंदवी कलाम का संकलन और संपादन नहीं किया। फारसी के इस प्रसिद्ध कवि ने चलते-चलते उस भाषा में भी अपनी सृजनात्मक क्षमता का परिचय दिया जो अभी बन रही थी और जिसे आगे चलकर हिंदू और उर्दू का रूप धारण करना था। लेकिन यह काव्य संग्रह के रुप में संपादित नहीं हुआ। सो उसका कितना

ही भाग समय के हाथों नष्ट हो गया या गुम हो गया और कुछ भाग जानबूझ कर इल्मी डाकुओं ने बरबाद कर दिया। लेकिन इसका कुछ भाग सामूहिक जन स्मृति ने सुरक्षित कर लिया यानि जो पीढ़ी दर पीढ़ी मौखिक परम्परा में बचा चला आया है। कुछ शेर, दोहे, फुटकल पद, गीत या छंद और पहेलियाँ जहाँ-तहाँ तजकरों में उद्धृत हुए हैं। एक समय तक इस कलाम के अमीर खुसरो का कलाम होने में किसी को कोई भी संदेह नहीं था, मगर जब, शोधकर्ताओं ने जोर बाँधा तो उन्होंने जबरदस्ती इस कलाम को विवादास्पद बना दिया।

उर्दू के कुछ नामी गिरामी साहित्यकार काफी अर्से से ही हिंदी-उर्दू को निकट लाने के सख्त विरोधी रहे हैं। इसी परम्परा में वे अमीर खुसरो जैसे हिंदवी के जनकवि का हिंदी से किसी प्रकार का ताल्लुक बर्दाशत नहीं करते। उर्दू के प्रसिद्ध विद्वान तथा आलोचक सफदर आह अपनी पुस्तक, 'अमीर खुसरो बहैसियत हिंदी शायर' में लिखते हैं - उर्दू के शोधकर्ता प्रोफेसर महमूद शीरानी और काजी अब्दुल वदूद जैसे साहित्यिक लुटेरों और अदबी डाकुओं ने अमीर खुसरो की विद्यमान हिंदवी कविताओं को निजी स्वार्थ और हिंदी से धार्मिक घृणा के कारण, खुसरो की रचना ही मानने से इंकार कर दिया है। यही नहीं प्रो. महमूद शीरानी ने अपनी पुस्तक 'पंजाब में उर्दू' में जानबूझकर प्रोफेसर सिराजुद्दीन की किसी पॉकेट बुक से कुछ कविताएं, चुराकर, उन्हें अमीर खुसरो के नाम से प्रकाशित कर दिया है। ये लोग खुसरो के हिन्दवी कलाम पर हमले की तैयारियाँ कर रहे थे।

बाज उर्दू महक्कीन ने खुसरो के सारे हिंदवी कलाम की प्रामाणिकता से जानबूझ कर इंकार किया है ताकि खुसरो का हिंदी से कोई संबंध न रहे। उर्दू आलोचकों का एक वर्ग खुसरो को हिंदी साहित्य से जोड़ने के ही विरुद्ध रहा है। वे उसे फारसी तक सीमित कर देना चाहते हैं। इसी प्रकार डॉ. वाहीद मिर्जा जैसे विद्वान यह गलत निष्कर्ष निकालने की चेष्टा करते हैं कि खुसरो की नजर में उनकी अपनी हिंदवी रचनाओं का कोई महत्व नहीं था इसलिए उन्होंने उसे एकत्रित करने के बजाय मित्रों में बाँट दिया। आज भी उर्दू क्षेत्र में ऐसे लोगों की कमी नहीं है जो अपने घटिया निजी स्वार्थ और ऊँचे पद का लाभ उठाकर अमीर खुसरो का हिंदवी कलाम जानबूझ कर बर्बाद करने पर तुले हुए हैं।

अमीर खुसरो का साहित्यिक योगदान में एक महत्वपूर्ण स्थान है। अमीर खुसरो ने साहित्य और संगीत के क्षेत्र में बहुत बड़ा योगदान दिया। खुसरो एक शाही

कवि थे जिन्होंने फारसी में लिखा था। उनकी कविता और अन्य लेखन को उल्लेखनीय माना जाता था। खुसरो ने कई चंचल पहेलियाँ, गीत और किंवदंतियाँ लिखीं जिनकी आज भी अमिट छाप है और जिनका संगीत में उपयोग किया जाता है।

वह हिंदुस्तानी के नाम से जाने जाने वाले उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत के ख्याल के संस्थापक थे। उन्होंने राग ध्रुपद को संशोधित किया और इसमें फारसी धुन और बीट्स जोड़े। उन्होंने कव्वाली भी बनाई।[3]

संदर्भ-ग्रन्थ सूची

1. अद्दहमाण (अब्दुल रहमान) 2019 कृत 'संदेश रासक': Hindi Sahitya Vimarsh
2. Habib] M. (1927). Hazrat Amir Khusrau of Delhi, D.B. Taraporevala Sons and Co, Bombay, 47
3. जो फोर्ड (2021) 'साहित्य की दुनिया में अमीर खुसरो का मुख्य योगदान क्या है?'

परिशिष्ट-II

हिंदी साहित्य का मध्यकाल और मुस्लिम रचनाकार

कबीर दास

भारत के महान संत और आध्यात्मिक कवि कबीर दास का जन्म वर्ष 1398 ई. में हुआ था। कबीर ने एक साधारण गृहस्थ और एक सूफी का संतुलित जीवन जिया था।

इस्लाम के अनुसार, 'कबीर का अर्थ महान होता है।' कबीर के असली माता-पिता कौन थे, इसका कोई सबूत नहीं है, लेकिन ऐसा माना जाता है कि उनका पालन-पोषण एक गरीब मुस्लिम परिवार में हुआ था। वाराणसी के लहरतारा में संत कबीर मठ में एक तालाब है, जहाँ नीरू और नीमा नाम के एक जोड़े ने कबीर को पाया। कबीर को शाँति और सच्ची शिक्षण की एक महान इमारत के रूप में माना जाता है। कबीर दास के महान कार्यों को पढ़ने के लिए विद्वान और छात्र उत्साहित रहते हैं। ऐसा माना जाता है कि उन्होंने अपनी धार्मिक शिक्षा गुरु रामानंद से ली थी। शुरू में रामानंद कबीर दास को अपना शिष्य बनाने के लिए तैयार नहीं थे। लेकिन बाद की एक घटना ने कबीर को रामानंद का शिष्य बनाने में अहम भूमिका निभाई। एक बार की बात है, संत कबीर तालाब की सीढ़ियों पर लेटे हुए थे और राम-राम के मंत्र का जाप कर रहे थे। रामानंद सुबह स्नान करने जा रहे थे और कबीर उनके पैरों के नीचे आ गए, इससे रामानंद को अपनी गलती का एहसास हुआ और उन्हें मजबूर होकर कबीर को अपना शिष्य स्वीकार करना पड़ा।

कबीर दास जी के समय में देश संकट की घड़ी से गुजर रहा था। सामाजिक व्यवस्था पूरी तरह से डगमगाई हुई थी। अमीर वर्ग, वैभव-विलासिता का जीवन जी रहा था, वहीं गरीब दो वक्त की रोटी के लिए तरस रहा था। हिंदू और मुस्लिम के बीच जाति-पाति, धर्म और मजहब की खाई गहरी होती जा रही थी। एक महान क्रांतिकारी कवि होने के कारण उन्होंने समाज में व्याप्त कुरीतियों, बुराइयों को उजागर किया। संत कबीर भक्तिकालीन एकमात्र ऐसे कवि थे जिन्होंने राम-रहीम के नाम पर चल रहे पाखंड, भेद-भाव, कर्म-कांड को व्यक्त

किया था। आम आदमी जिस बात को कहने क्या सोचने से भी डरता था, उसे कबीर ने बड़े निडर भाव से व्यक्त किया था। कबीर ने अपनी वाणी द्वारा समाज में व्याप्त अनेक बुराइयों को दूर करने का प्रयास किया।

कबीर का काल संक्राति का काल था। तत्कालीन राजनीतिक वातावरण पूर्ण रुप से विषाक्त हो चुका था। इस समय की राजनीतिक व्यवस्था को बहुत अंश तक आज ही की तरह मुल्ला और पुजारी प्रेरित करते थे। हिंदू-मुसलमानों के भीतर भी निरंतर ईर्ष्या और द्वेष का बोलबाला था। तत्कालीन समृद्ध धर्मों बौद्ध, जैन, शैव एवं वैष्णवों के अंदर विभिन्न प्रकार की शाखाएँ, निकल रही थीं। सभी धर्मों के ठेकेदार आपस में लड़ने एवं झगड़ने में व्यस्त थे।

लोदी वंश का सर्वाधिक यशस्वी सुल्तान, सिकंदर शाह सन् 1489 ई. में गद्दी पर बैठा। सिकंदर को घरेलू परिस्थिति एवं कट्टर मुसलमानों का कड़ा विरोध सहना पड़ा। दुहरे विरोध के कारण वह अत्यंत असहिष्णु हो उठा था। सिकंदर शाह के तत्कालीन समाज में आंतरिक संघर्षों एवं विविध धार्मिक मतभेदों के कारण, भारतीय संस्कृति की केंद्रीय दृष्टि प्राय: समाप्त हो गयी थी। शक्तिशाली लोगों ने ऐसे-ऐसे कानून बना लिए थे जिसके द्वारा वह लोगों का शोषण किया करते थे। धर्म की आड़ में ये शोषक वर्ग अपनी चालाकी को देवी विधान से जोड़ देता था। तत्कालीन शासन- तंत्र और धर्म-तंत्र को देखते हुए, महात्मा कबीर ने जो कहा, उससे उनकी बगावत झलकती है-

दर की बात कहो दरवेसा बादशाह है कौन भेसा

कहाँ कूच कर हि मुकाया, मैं तोहि पूछा मुसलमाना

लाल जर्द का ताना- बाना कौन सुरत का करहु सलामा।

कबीर के समय में ही शासकों की नादानी के चलते, राजधानी को दिल्ली से दौलताबाद और पुन: दौलताबाद से दिल्ली बदलने के कारण अपार धन और जन की हानि हुई थी तथा प्रजा तबाह हो गई थी।

महात्मा कबीर साहब ने इस जर्जर स्थिति एवं विषम परिस्थिति से जनता को उबारने के लिए एक प्रकार से जेहाद छेड़ दिया था। एक क्रांतिकारी नेता के रूप में कबीर समाज के स्तर पर अपनी आवाज को बुलंद करने लगे। काजी,

मुल्लाओं एवं पुजारियों के साथ-साथ शासकों को धिक्कारते जिसके फलस्वरूप कबीर पर राजद्रोह का आरोप लगाकर तरह-तरह से प्रताड़ित किया गया।

'एकै जनी जन संसार' कहकर कबीर ने मानव मात्र में एकता का संचार किया तथा एक ऐसी समझदारी पैदा करने की चेष्टा की, कि लोग अपने उत्स को पहचान कर वैमनस्य की पीड़ा से मुक्ति पा सकें और मनुष्य को मनुष्य के रूप में प्रेम कर सकें।

आधुनिक राजनीतिक परिस्थितियों को देखकर ऐसा लगता है कि आज कबीर साहब होते, तो उनको निर्भीक रूप से राजनीतिक दलों एवं व्यक्तियों से तगड़ा विरोध रहता, क्योंकि आज की परिस्थिति अपेक्षाकृत अधिक नाजुक है। आज कबीर साहब तो नहीं हैं, मगर उनका साहित्य अवश्य है। कबीर साहित्य का आधार नीति और सत्य है और इसी आधार पर निर्मित राजसत्ता से राष्ट्र की प्रगति और जनता की खुशहाली संभव है। उनका साहित्य सांप्रदायिक सहिष्णुता के भाव से इतना परिपूर्ण है कि वह हमारे लिए आज भी पथ प्रदर्शन का आकाश दीप बना हुआ है। आज कबीर साहित्य को जन-जन तक प्रसार एवं प्रचार करने की आवश्यकता है, ताकि सभी लोग इसको जान सकें और स्वयं को शोषण से मुक्ति एवं समाज में सहिष्णुता बना सकें।

कबीर ने जीव को ब्रह्म का अंश माना है। वे जीव और ब्रह्म अथवा आत्मा और परमात्मा को एक मानते हैं। उन्होंने कहा भी है कि 'आत्मा राव अवर नहिं दूजा' जिस प्रकार ब्रह्म सर्वव्यापक है उसी प्रकार आत्मा केवल शरीर न होकर सर्वत्र है। क्योंकि वह ब्रह्म का ही दूसरा स्वरूप है।

आत्मा को ब्रह्म से अलग जानना केवल अज्ञान आधारित है। जब गुरु के द्वारा आत्मा ज्ञान से चेतनशील हो जाती है तब परमात्मा मिलते हैं और जीव और ब्रह्म में 'अद्‌वैत' भाव स्थापित हो जाता है। इस स्थिति में दोनों एकाकार हो जाते हैं और जीव को अपने जीवन का महत्व व उद्‌देश्य अर्थात् ब्रह्म दर्शन प्राप्त हो जाता है।

कबीर ने जीव को अपना वास्तविक स्वरूप पहचानने की बात कही है और जीव जब अपना और परमात्मा का एक ही स्वरूप जान जाता है तब वह

सांसारिकता एवं त्रिविध दु:खों दैहिक, दैविक, भौतिक से मुक्त होकर परमात्मा हो जाता है, ऐसी आत्मा अजर-अमर हो जाती है।

समालोचक कमलेश वर्मा की पुस्तक 'जाति के प्रश्न पर कबीर' में कबीर को एक नए दृष्टिकोण से देखने का प्रस्ताव है। पुस्तक कबीर पर लेखक के जाति सम्बन्धी निबंधों का संकलन है, जो समय-समय पर अनेक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे हैं। पुस्तक इसलिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि लगभग दो दशक पूर्व तक आलोचना के क्षेत्र में 'मार्क्सवादी विमर्श के वर्चस्व' के दौरान शायद इस किस्म की बहस की गुंजाइश नहीं थी। लेखक पुस्तक की भूमिका में इस ओर इशारा भी करता है। 'कबीर की जाति और धर्म को लेकर कई प्रकार के दावे किए जाते रहे हैं। अनेक अगर-मगर के बीच कबीर के दो सामाजिक पक्ष हमारे सम्मुख हैं, एक यह है कि कबीर दलित थे और दूसरा कबीर मनुष्य थे। डॉ. धर्मवीर पहले पक्ष में हैं और डॉ. पुरुषोत्तम अग्रवाल दूसरे पक्ष में। पहला पक्ष कबीर के सामाजिक पक्ष पर दलित दृष्टि से विचार करता है जबकि दूसरा पक्ष इसे गौण करने का प्रयास करता है।'

यह तथ्य इस पक्ष की ओर भी इशारा करता है कि विभिन्न विचारों, वर्गों तथा जातीय समूहों से जुड़े लोगों ने अपने-अपने दृष्टिकोणों से कबीर की व्याख्या की है। हजारी प्रसाद द्विवेदी की पुस्तक 'कबीर' क्लासिक मानी जाती है। वह कबीर को नाथपंथी बताते हैं। वह उनकी जाति के बारे में कोई स्पष्ट राय नहीं रखते। उनका सारा फोकस इस बात पर है कि कबीर को मुसलमान न माना जाए। विधवा ब्राह्मणी की अवधारणा को वह खारिज नहीं करते, तथा कबीर को मूलरूप से हिंदू समाज का व्यक्ति बनाए रखना चाहते हैं। वह अपनी पुस्तक की पहली पंक्ति में ही लिखते हैं कबीर दास का पालन-पोषण जुलाहा परिवार में हुआ था, मतलब कबीर का जन्म विधवा ब्राह्मणी से हुआ था।

कबीर जन्मना हिंदू थे, मुसलमान नहीं। इस पुस्तक का सुप्रसिद्ध टुकड़ा कि 'कबीर जन्म से अस्पृश्य, कर्म से वन्दनीय थे।' उनके लेखन का यह मुख्य अंतर्विरोध है। अस्पृश्यता का अर्थ अनुसूचित जाति में जन्मा व्यक्ति हो सकता है। इस्लाम सैद्धांतिक रूप से अस्पृश्यता को नहीं मानता। डॉ. धर्मवीर भी कबीर को अछूत तथा जुलाहा दोनों बता रहे थे। लेखक का यह स्पष्ट मानना है कि यह दोनों बातें एक साथ सिद्ध नहीं हो सकतीं। डॉ. धर्मवीर कबीर को दलितों

का संत मानते हैं। ब्राह्मण बनाम दलित मुद्दा इस पुस्तक में सिर चढ़कर बोलता है। दलित विमर्श की खुली घोषणा यह है कि दलित ही दलित साहित्य रच सकता है, तथा गैर दलित द्वारा रचित साहित्य किसी भी हालत में दलित साहित्य नहीं माना जा सकता।

मलिक मुहम्मद जायसी

मलिक मोहम्मद जायसी का जन्म वर्ष 1492 ई. में उत्तर प्रदेश के रायबरेली जिले के जायस नामक कस्बे में हुआ था। मलिक मोहम्मद के नाम के पीछे जायसी शब्द उपनाम की तरह उपयोग किया जाता है। इनके पिताजी का नाम मलिक राजे अशरफ था। वे एक मामूली जमींदार और किसान पृष्ठभूमि से थे।[1]

मलिक मोहम्मद ने बहुत कम उम्र में अपने पिता को खो दिया था और उसके कुछ सालों बाद उन्हें अपनी माँ के मातृत्व से भी वंचित होना पड़ा। बचपन में एक हादसे के कारण मलिक मोहम्मद एक आँख से अंधे हो गए थे और चेचक की बीमारी के कारण चेहरा भी खराब हो गया था। मलिक मोहम्मद जायसी के सात पुत्र थे और दुर्घटना में उनके सातों पुत्रों की मृत्यु हो गई थी। जिसके बाद ही इन्होंने अपना गृहस्थ जीवन त्याग दिया और सूफी संत बन गए।

जायसी के सूफी-काव्य में आधारभूत प्रवृति महत्वपूर्ण सिद्ध हुई है। कथाकार काव्य में रोचकता एवं निरंतरता स्थापना हेतु प्रसंगों, प्रतीकों, कहानियों, किस्सों, आदि का प्रयोग किया करते हैं जिन्हें 'सामाजिक रूढ़ियाँ' की संज्ञा दी जाती है। जायसी ने इन्हें कहानियों एवं आख्यानों के माध्यम से प्रस्तुत किया है। जायसी ने इन सामाजिक रूढ़ियों में 'द्वीप पर सुंदर स्त्री मिलन' के माध्यम से पद्मावती की प्राचीनतम कथा का समायोजन किया है जो सात-समुन्द्र पार, नौ-द्वारों के पहरों पर सैनिकों की निगरानी में रहती है। उसके सौन्दर्य से चन्द्रमा-कैलाश आदि प्रभावित होते दिखाए हैं। ऐसी सुन्दरी द्वीप पर नायक को मिलती है जिसे कथानक रूढ़ि रूप में स्थान दिया। पक्षियों द्वारा संचार की कला के रूप में जायसी जी ने तोते, हंस, सुक के रूप में सामाजिक रूढ़ियों को दिखाया है। पक्षियों का सौन्दर्य भी सामाजिक-रूढ़ियाँ रूप में द्रष्टव्य है।

भारतीय संस्कृति में राजाओं को 'सिद्धि-प्राप्ति हेतु जोगी बनना' दिखाया गया है। हीरामन तोता, गोपीचंद आदि से पद्मावती के सौंदर्य का वर्णन सुनकर उसे

प्राप्त करने के लिए रत्नसेन जोगी का रूप धारण करते हैं। जायसी ने 'प्रेमोदय: स्वप्न-दर्शन एवं चित्र दर्शन' प्रयोग माध्यम से उत्पन्न किया है। जायसी ने 'दूती' कथानक रुढ़ि के माध्यम से दूती द्वारा भेष बदल, धार्मिक मोह में बाँध, विवेक चालाकी-भय सहित लोभ-माया दिखा नायिका का हृदय-परिवर्तन कराना दिखाया गया है। हीरामन तोता एक-स्थान पर रत्नसेन को पद्मावती का सौन्दर्य-रूप दिखाकर रत्नसेन को बेहोश करा देता है। जायसी ने कथानक रूढ़ि में 'सात-समुंद्र' को दिखाया है। इन सात समुंदरों के नाम खारे, खीर, दधि, उदधि, सुरा, किलकिला, मानसर हैं।

मलिक मुहम्मद जायसी ने अपनी सम्पूर्ण रचनाओं में उसी सादगी और उन्हीं चिन्तनपूर्ण मनोव्यापारों का परिचय दिया है जो सूफी साधकों की अपनी विशेषताएँ हैं। जीवन के सच, सामयिक चिंतन, संस्कृति, इतिहास और आध्यात्मिक प्रबोध के गहरे गुम्फन इनके काव्यों में सहजता से परिलक्षित हो जाते हैं। प्रेमाख्यानों की समृद्ध भारतीय परम्परा एवं विशिष्ट फारसी प्रणाली के समन्वयात्मक रूप जायसी के प्रेमाख्यानों में अंकित हुआ था। जायसी के ग्रंथों का उल्लेख करते हुए जिस रचना को 'घनावत' के नाम से बताया जाता था और उसके अस्तित्व के अनुपलब्ध होने की सूचना मिलती थी वह रचना 'घनावत' न होकर 'कन्हावत' है और वह प्रामाणिक और प्रकाशित भी है। डॉ. परमेश्वरी लाल गुप्त और पण्डित शिवसहाय पाठक की अत्यन्त महत्वपूर्ण खोज के परिणामस्वरूप जायसी की अब तक अज्ञात रही रचना 'कन्हावत' का पता चला। 'कन्हावत' हिंदी सूफी काव्य परम्परा का ही नहीं अपितु सम्पूर्ण भक्तिकाल में अवधी भाषा में लिखा गया कृष्ण विषयक प्रथम महाकाव्य है। जिसका रचयिता एक मुसलमान कवि है और उसका नाम है मलिक मुहम्मद जायसी।

रसखान

रसखान हिंदी साहित्य में एक कृष्णभक्त मुस्लिम कवि थे। उन्हें तत्कालीन कवियों में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। इनके जन्म के सम्बंध में विद्वानों में मतभेद पाया जाता है। कुछ के अनुसार गदर के कारण दिल्ली श्मशान बन चुकी थी, तब दिल्ली छोड़कर वह ब्रज (मथुरा) चले गए। ऐतिहासिक साक्ष्य के आधार पर यह पता चलता है कि गदर संवत 1613 ई. में हुआ था। उनकी बात से ऐसा प्रतीत होता है कि वह उस समय वयस्क हो चुके थे। रसखान का जन्म सन्

1533 ई. मानना अधिक समीचीन प्रतीत होता है। भवानी शंकर याज्ञिक जी का भी यही मानना है। अनेक तथ्यों के आधार पर उन्होंने अपने मत की पुष्टि भी की है। रसखान कृष्ण भक्त थे और उनके सगुण और निर्गुण निराकार रूप दोनों के प्रति श्रद्धावन्त हैं। रसखान के सगुण कृष्ण वे सारी लीला, करते हैं, जो कृष्णलीला में प्रचलित रही हैं। जैसे- बाललीला, रासलीला, फागलीला, कुंजलीला आदि। उन्होंने अपने काव्य की सीमित परिधि में इन असीमित लीलाओं को बखूबी बाँधा है।[2]

रसखान को मध्यकालीन युग में सबसे महान सूफी कवि के रूप में जानना और लोकप्रिय बनाना महत्वपूर्ण है। इस्लामी रहस्यवाद मध्ययुगीन काल में एक महत्वपूर्ण आंदोलन रहा है और इसे भारत की मिश्रित संस्कृति के प्रमुख स्रोत के रूप में प्रचारित किया गया था।[3]

रसखान का पूरा नाम सैयद इब्राहिम था और उन्होंने अपना नाम केवल इस कारण रखा था कि वे इसका प्रयोग अपनी रचनाओं में कर सकें। रसखान को फारसी, हिंदी एवं संस्कृत का अच्छा ज्ञान था। फारसी में उन्होंने 'श्रीमद्भागवत' का अनुवाद कर के यह साबित कर दिया था। इसको देखकर इस बात का आभास होता है कि वह फारसी और हिंदी भाषाओं के अच्छा वक्ता होंगे। रसखान के काव्य का आधार भगवान श्रीकृष्ण हैं। रसखान ने उनकी ही लीलाओं का गान किया है। उनके पूरे काव्य-रचना में भगवान श्रीकृष्ण की भक्ति की गई है। इससे भी आगे बढ़ते हुए रसखान ने सुफिज्म (तसव्वुफ) को भी भगवान श्रीकृष्ण के माध्यम से ही प्रकट किया है।

इससे यह कहा जा सकता है कि वे सामाजिक एवं आपसी सौहार्द के कितने शुभचिंतक थे। प्रमुख कृष्णभक्त कवि रसखान की अनुरक्ति केवल कृष्ण के प्रति ही नहीं बल्कि कृष्ण-भूमि के प्रति भी उनका अनन्य अनुराग व्यक्त हुआ है। उनके काव्य में कृष्ण की रूप-माधुरी, ब्रज-महिमा, राधा-कृष्ण की प्रेम-लीलाओं का मनोहर वर्णन मिलता है। वे अपनी प्रेम की तन्मयता, भाव-विह्वलता और आसक्ति के उल्लास के लिए जितने प्रसिद्ध हैं उतने ही अपनी भाषा की मार्मिकता, शब्द-चयन तथा व्यंजक शैली के लिए। उनके यहाँ ब्रजभाषा का अत्यंत सरस और मनोरम प्रयोग मिलता है, जिसमें जरा भी शब्दाडंवर नहीं है। इस प्रकार के व्यक्तित्व के धनी कवि थे रसखान, जिनकी भक्ति किसी भी

हिंदूभक्त कवियों से नाममात्र भी कम नहीं। वे हिंदू संस्कृति के प्रबल समर्थक एवं प्रचारक थे, और इनके कारण ही हिंदी कृष्ण भक्ति साहित्य और भी समृद्ध हो पाने में समर्थ हो पाया।[4]

रहीम

इनका पूरा नाम अब्दुल रहीम खान-ए-खाना था। वे मध्यकालीन कवि, सेनापति, प्रशासक, आश्रयदाता, दानवीर, कूटनीतिज्ञ, बहुभाषाविद, कला प्रेमी, एवं विद्वान थे। वे भारतीय सामासिक संस्कृति के अनन्य आराध्यक तथा सभी संप्रदायों के प्रति समादर भाव के सत्यनिष्ठ साधक थे। उनका व्यक्तित्व बहुमुखी प्रतिभा से संपन्न था। वे एक ही साथ कलम और तलवार के धनी थे और मानव प्रेम के सूत्रधार थे। मध्यकालीन हिंदी साहित्य के कृष्णभक्त कवियों में रहीम अपना एक विशिष्ट स्थान रखते हैं। एक मुसलमान होते हुए भी कृष्ण भक्ति में इनका मन इस तरह रमा कि वे सबकुछ छोड़ कृष्ण की लीला का वर्णन, भजन कीर्तन में लीन हो गए। लाहौर में जन्म होने के बाद वहीं अपने पिता बैरम खां और माता सुल्ताना बेगम के साथ रहने लगे।

एक युद्ध में पिता की मृत्यु हो जाने के बाद सम्राट अकबर ने उन्हें और उनकी माता को अपना संरक्षण दिया और उनकी शिक्षा का विशिष्ट प्रबंध भी किया। अंतत: उनको 'मिर्जाखां' की उपाधि प्रदान की। रहीम दास जी केशवदास और तुलसीदास जी के समकालीन थे। उन्होंने खुद को रहमान के रूप में संबोधित किया, उनकी रचनाओं में रहस्यवाद की प्रधानता को उनके कार्यों में खुद को कृष्ण के पुत्र के रूप में साबित करने की कोशिश में देखा जा सकता है। इनके दोहों में भक्ति के दोनों रूप, नीति, प्रेम, रहस्य भाव, प्रकृति चित्रण, आदर्श, संदेश आदि साफतौर पर परिलक्षित होते हैं। इनके दोहों के निर्माण के पीछे इनका अनुभव श्रेयस्कर था। इनको बचपन से ही काव्य सृजन करने की विशेष रुचि थी और इस क्षेत्र में इन्हें कई काव्य गुरुओं का आशीर्वाद भी प्राप्त हुआ।

इनके नीति परक दोहे आज भी प्रासंगिक और प्रिय हैं। इनके नीति परक दोहे के साथ-साथ भक्ति और शृंगारिक दोहे भी बेहद प्रशंसनीय रहा है। रहीम सतसई, शृंगार सतसई, पंचाध्याई, मदनाष्टक, और तुर्की भाषा में लिखित 'बाबरनामा' फुटकर बरवै, फुटकर छंद तथा पद, फुटकर कवित्व, सवैये, संस्कृत काव्य

आदि प्रमुख हैं। कहा तो यहाँ तक जाता है कि रहीम धर्म से मुसलमान और संस्कृति से शुद्ध भारतीय थे। रहीम ने अपने काव्य सृजन में रामायण, महाभारत, पुराण तथा गीता जैसे ग्रंथों के कथानकों को अपना आधार बनाया। कविवर रहीम एक मुसलमान परिवार का वारिश होते हुए भी उनकी साहित्यिक भक्ति भावना किसी भी हिंदूभक्त साहित्यकारों से कम आंका नहीं जा सकता। उनको भारतीय धार्मिक परंपराओं और संस्कृति आदि का विशेष ज्ञान था। उन्होंने प्रभु श्रीकृष्ण की सगुण तथा निर्गुण दोनों रूपों का जो प्रशंसनीय वर्णन किया है उसे देखकर कहीं से भी यह प्रतीत नहीं होता कि वे हिंदू नहीं मुसलमान कवि हैं।

संदर्भ-ग्रन्थ सूची

1. हनीफ 2019 'मलिक मोहम्मद जायसी का जीवन परिचय और रचनाएँ'।
2. प्रो. देशराज सिंह भाटी, रसखान ग्रन्थावली, अशोक प्रकाशन, संस्करण 2010, पृष्ठ संख्या-53
3. रसखान, श्याम सुन्दर व्यास, साहित्य अकादमी, रवीन्द्र भवन, 35, फिरोजशाह मार्ग, नई दिल्ली-110001, सं - 2015, पृष्ठ - 45
4. वही, पृष्ठ - 46

परिशिष्ट-III

आधुनिक साहित्य की विविधता और मुस्लिम रचनाकारों की उपस्थिति

राही मासूम रजा

राही मासूम रजा का जन्म 1 सितंबर 1927 को गाजीपुर के गंगौली गाँव में हुआ था। आरंभिक शिक्षा-दीक्षा गाजीपुर में ही हुई। किस्सा है कि बचपन में एक बार बीमार पड़े तो स्कूल जाना छूट गया। पड़े-पड़े घर में मौजूद सारी किताबें पढ़ गए। किस्सों से उनका दिल बहलाने के लिए एक मुलाजिम कल्लू काका भी रखे गए थे। उन्होंने बाद में सुनाया कि कल्लू काका न होते तो उन्होंने शायद कोई कहानी न लिखी होती। आगे की पढ़ाई अलीगढ़ में हुई जहाँ अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय से उर्दू में 'तिलिस्म-ए-होशरुबा' पर पी-एचडी. की। फिर अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में ही उर्दू के प्राध्यापक लग गए। अलीगढ़ से उनका बेहद लगाव रहा। अलीगढ़ में ही नय्यरा से मिले जो उनकी जीवनसाथी बनीं। अलीगढ़ में ही वह कम्युनिस्ट भी हो गए थे। इतने कम्युनिस्ट कि नगरपालिका चुनाव में भूमिहीन मजदूर प्रत्याशी कॉमरेड पब्बर राम के पक्ष में न केवल अपने पिता के खिलाफ प्रचार किया, उन्हें हरवा भी दिया। उनका यह साम्यवादी नजरिया आगे भी बना रहा। वह वास्तविक अर्थों में 'सेकुलर' दृष्टिकोण भी रखते थे।

लेखन का आरंभ उन्होंने शायरी से किया था और शेरो-सुखन में एक मुकाम भी पाने लगे थे। फिर शायरी छोड़ दी और गद्य लिखने लगे। एक साथ कई चीजें लिखा करते थे। शाहिद अख्तर, आफाक हैदर और आफताब नासिरी उनके ही अलग-अलग नाम थे जो उन दिनों अलीगढ़ में रूमानी और जासूसी नॉवेल में चर्चा पा रहे थे। वह बाद में अलीगढ़ छोड़ बंबई चले गए। फिल्मों से उन्हें शुरू से ही आकर्षण रहा था। बंबई में संघर्ष लंबा चला। तब उनकी मदद धर्मवीर भारती और कमलेश्वर ने की। बाद में बी. आर. चोपड़ा और राज खोसला की दोस्ती काम आई जो उन्हें फिल्में देने लगे थे। बी. आर. चोपड़ा ने बाद में बेहद लोकप्रिय हुए महाभारत धारावाहिक का पटकथा-लेखन उनसे कराया।

बंबई उनके लिए साहित्यिक लेखन के दृष्टिकोण से भी उर्वर रही जहाँ उन्होंने 'आधा गाँव', 'दिल एक सादा कागज', 'ओस की बूँद', 'हिम्मत जौनपुरी' जैसे उपन्यास लिखे थे। ये सभी कृतियाँ हिंदी में थीं। इससे पहले वह उर्दू में नज्म और गजल लिखते रहे थे। उन्होंने उर्दू में एक महाकाव्य भी लिखा था जो बाद में हिंदी में 'क्रांति कथा' शीर्षक से छपी।

'टोपी शुक्ला', 'कटरा बी आर्जू', 'मुहब्बत के सिवा', 'असंतोष के दिन', 'नीम का पेड़' उनके अन्य उपन्यास हैं। 'नया साल', 'मौजे-गुल: मौजे-सबा', 'रक्से-मय', 'अजनबी शहर के अजनबी रास्ते', 'गरीबे शहर' उनके प्रमुख उर्दू काव्य-संग्रह हैं। उनकी उर्दू कविताओं के हिंदी अनुवाद को 'मैं एक फेरीवाला', 'शीशे के मकां वाले', 'गरीबे शहर' संकलनों में प्रकाशित किया गया है। 'देश में निकला होगा चाँद' उनकी बेहद लोकप्रिय नज्म है जिसे जगजीत सिंह, चित्रा सिंह ने पहली बार गाया था। उन्होंने कई फिल्मों और धारावाहिकों के लिए पटकथा और संवाद-लेखन किया था। 'मैं तुलसी तेरे आँगन की' फिल्म की पटकथा के लिए उन्हें 'फिल्म फेयर' मिला था। भारत सरकार ने उन्हें पद्म श्री और पद्म भूषण से सम्मानित किया।

15 मार्च 1992 को 64 वर्ष की आयु में बंबई में उनका निधन हो गया।

राही का काव्य साहित्य

दर्द तन्हाई का

नीम के पेड़ में अटका हुआ चाँद

नीम के पेड़ से छन-छन के बरसता हुआ दर्द

दर्द यादों-भरी तन्हाई का

दर्द उन यादों की रानाई का

ढलता सूरज, घटता चाँद, बूढ़ा पेड़

जब भी मैं तुझको याद आऊँ

तू ये सोच के दिल मत छोटा करना

मेरे–तेरे बीच न जाने कितना जुबाबों के दरिया हैं

कितनी तहज़ीबों के समंदर

रात का पेड़

रास्ते

चाँदनी औढ़ कर सो गए

झील पर बींद की सिलवटें पड़ गई

आहटें

बावन साल पुरानी आँखें

बावन साल पुरानी आँखें

कब तक जागें

देखे–अनदेखे सपनों से भागें

दश्तै–तमन्ना

लम्हा–लम्हा

शिकायत

रात के बाद भी रात आती रही है अब तक

कल का कुछ ठीक नहीं

क्या पता

रात ही आ जाए फिर इस रात के बाद

ख्वाब

आओ

वापिस चलें

रात के रास्ते पर वहाँ
नींद की बस्तियाँ थीं जहाँ
खाक छानें
कोई ख़्वाब ढूँढ़ें

इक्कीसवाँ साल

मर्यिम बेटी
जब तू आकर मेरी गोद में घुस जाती है
तब मुझको ऐसा लगता है
जैसे जाड़े की एक घुँघली सुबह,
रजाई कुहर की सर से फेंक के

वरना ज़िंदगी क्या है

घर के बिकलें तो सही
अपनी वहशत के लिए ढंग का सहरा ढूँढ़ें
औस की झील में हसरत का जजीरा ढूँढ़ें
वक्त बहता हुआ दरिया है तो क्या

फिर गली आ गई दर्द की

फिर गली आ गई दर्द की
फिर किसी चारागर का पयाम आएगा
जख्म का चाँद निकलेगा फिर
मरहमै–खाके–राहे–का माँगता

राही का कथा साहित्य

सन् 1948 तक मासूम रजा 'राही' उपनाम से उर्दू शायरी में प्रवेश पा चुके थे। धीरे-धीरे उनकी प्रतिभा से डॉ. एजाज हुसैन जैसे विद्वान भी प्रभावित होने लगे। उनकी साहित्यिक गतिविधियों का क्षेत्र विस्तृत होने लगा। एक-एक करके डॉ. अजमल अजमली, श्री मुजाविर हुसैन (इब्ने सईद), श्री जमाल रिजवी (शकील जमाली), मसूद अख्तर जमाल, खामोश गाजीपुरी, तेग इलाहाबादी,असरार जैसे नवोदित शायरों के साथ-साथ बलवंत सिंह और फिराक गोरखपुरी जैसे स्थापित लोगों से उनका संपर्क होने लगा। इन मिलने-जुलने वाले अधिकांश साहित्यकारों का रुझान प्रगतिशील विचारों के प्रति थी। राही मासूम रजा का प्रगतिशील विचारधारा से पहले ही संबंध था, फलत: इन लोगों के संपर्क में आने के पश्चात उनके विचारों को और अधिक बल प्राप्त हुआ। स्वाभाविक रूप से उनकी दृष्टि भी साफ हुई। सब लोगों ने डॉ. एजाज हुसैन के संरक्षण में मिलकर 'नकहत' क्लब की स्थापना किया। इसके गोरखपुर में होने वाले पहले अधिवेशन के साथ ही नियमित रूप से राही ने इसकी गतिविधियों में हिस्सा लेना प्रारम्भ कर दिया था। पटना के सम्मेलन तक राही मंझ चुके थे। आजमगढ़ का सम्मेलन होते-होते उनकी शायरी प्रसिद्धि के शिखर को छूने लगी थी। इसी बीच साहित्य के क्षेत्र में उन्होंने उर्दू के उपन्यास 'मुहब्बत के सिवा' के साथ प्रवेश किया पर वो एक रोमानी उपन्यास साबित हुआ। उन्होंने शायरी के समानांतर 'मोहब्बत के सिवा' की तर्ज पर कई उपन्यास लिखे। एक उपन्यासकार के रूप में उन्होंने 'शाहिद अख्तर' नाम अपनाया।

राही का इलाहाबाद में प्रगतिशील साहित्यकार वर्ग से जुड़ना स्वाभाविक था, क्योंकि साम्यवादी विचारधारा का प्रभाव उन पर गाजीपुर में ही पड़ चुका था, परंतु गैर प्रगतिवादियों से भी उन्हें कोई परहेज नहीं था। इलाहाबाद का तत्कालीन साहित्य संसार प्रगतिवादियों के अतिरिक्त कांग्रेसी, महासभाई इत्यादि सभी विचारधारा के साहित्यकारों का गढ़ था। 'परिमल' नामक संस्था में बच्चन एवं धर्मवीर भारती इत्यादि हिंदी कवि सक्रिय थे। प्रत्येक विचारधारा के साहित्यकारों एवं संस्थाओं से संपर्क में आने के कारण उन्हें एक विस्तृत साहित्यिक फलक मिला, जहाँ उनकी प्रतिभा प्रस्फुटित हुई। 'हिंदोस्तां की मुकद्दस जीम, जैसे मेले में तनहा हो नाजनी' नज्म ने पहली बार उनकी इलाहाबाद के बाहर के साहित्यकारों के बीच प्रसिद्धि दिलाई थी।

अन्य विधाओं में राही

नज़्म

चाँद की बुढ़िया

माँ से इक बच्चे ने पूछा
चाँद में ये घब्बा कैसा है
माँ ये बोली
चंदा बेटे
जिस को तुम घब्बा कहते हो वो तो इक पागल बुढ़िया है

तन्हाई

आज अपने कमरे में
किस कदर अकेला हूँ
शाम का धुंधलका है
सोचता हूँ गिन डालूँ

शानी

गुलशेर ख़ाँ शानी का जन्म 16 मई, 1933 को जगदलपुर में हुआ था। उन्होंने अपनी लेखनी का सफ़र जगदलपुर से आरंभ कर ग्वालियर और फिर भोपाल, दिल्ली तक तय किया। वे 'मध्य प्रदेश साहित्य परिषद', भोपाल के सचिव और परिषद की साहित्यिक पत्रिका 'साक्षात्कार' के संस्थापक-संपादक रहे।

'गुलशेर खां शानी' का महत्वपूर्ण उपन्यास 'काला जल' है। इस उपन्यास के कारण रचयिता को उपन्यासकार के रूप में काफी प्रसिद्धि मिली। यह उपन्यास मुस्लिम मध्यवर्गीय परिवारों की त्रासदियों से भरी हुई महागाथा है। इस उपन्यास की कथा को तीन हिस्सों में बांटा गया है। इस उपन्यास में दो मुस्लिम परिवारों की तीन परिवारों की तीन पीढ़ियों की कहानी का चित्रण किया गया है, जिसमें छोटी फूफी और बब्बन के परिवार का वर्णन है। मोहिसन, बब्बन, आपा फुफी,

सल्लो, अम्मी आदि पात्रों के इर्द-गिर्द पूरे उपन्यास की कथा घूमती है। शिया मुस्लिम परिवारों में शबे बरात बहुत ही महत्व रखता है। उपन्यास में शबे-बारात में फतिहा पढ़ने की रस्म को बब्बन के माध्यम से लेखक ने चित्रित किया है – 'छोटी फूफी के घर पर शबे-बारात के दिन परिवार के दिवंगत लोगों की रूहों को फातिहा देने की रस्म बब्बन पूरा कर रहा है।'[1] उनकी फूफी द्वारा एक लिस्ट निकाली जाती है जिसमें मिर्जा करामत बेग का नाम आता है और कथा यहीं से फ्लैश बैक में जाती है।

मेहरून्निसा परवे़ज

मेहरून्निसा परवे़ज का जन्म मुस्लिम परिवार में 10 दिसम्बर 1944 को बालाघाट में चलती बैलगाड़ी में हुआ। अजान में ही उनका नाम मेहरून्निसा रखा गया। इतिहास प्रसिद्ध नूरजहां का पहला नाम भी मेहरून्निसा था, उनका भी जन्म इस प्रकार चलती बैलगाड़ी में हुआ था। इसलिए इनका नाम भी मेहरून्निसा रखा गया। जिसका अर्थ है 'प्यार करने वाली स्त्री'।

कहानीकार मेहरुन्निसा परवेज की लेखनी में वह जादू है, जिसके स्पर्श से उनकी प्रत्येक कहानी कुंदन बन गई है। कहानियों में चुंबकीय शक्ति है, जिसके कारण सामान्य-से-सामान्य जन उनकी प्रत्येक कहानी की ओर स्वतः खिंचा चला आता है। पढ़ने के उपरांत वे तहेदिल से भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं। रचनाधर्मिता की ये ही विशेषताएँ, एक कहानीकार को जनप्रिय एवं लोकप्रिय बनाती हैं। ख्याति प्रदान करती हैं। कथाकार मेहरून्निसा परवेज ने कहानियों में आस-पास के जीवन में घटित घटनाओं को बीनकर उन्हें कहानी का जामा पहना कर उनमें प्राण फूँक दिएं हैं। जिसके कारण उनकी कहानियों में घटित घटनाएँ, आम जन को अपने आस-पास की प्रतीत होती हैं।

मेहरून्निसा परवेज जी का पहला उपन्यास है **'आँखों की दहलीज'।** इसमें नारी जीवन के विविध रूपों को उभारा गया है। नारी जीवन की सार्थकता उसके स्त्रीत्व में नहीं, मातृत्व में है, यही लेखिका की इस उपन्यास में मान्यता है। तालिया का पति शमीम है। डॉक्टर जब कहता है कि जीवनभर यह स्त्री माँ नहीं बन सकती, तो न सिर्फ पति, बल्कि माँ और उसकी सहेली जमीला भी दु:खी होती है। एक और युगल जावेद और रेहाना है। रेहाना जब दूसरे प्रसव के लिए

मायके जाती है तो इस बीच उसका पति अकेला हो जाता है। तालिया की माँ स्वयं संतान की आशा में अपनी बेटी और जावेद का मिलन करा देती है। पर तालिया के मन में इतनी आत्मग्लानि जागती है कि वह खिड़की से कूदकर आत्महत्या करना चाहती है। पति या प्रेमी में से किसे चुने, उसकी दुविधा यही है। बच जाने पर दोनों को ही छोड़कर वह किसी अनजान दिशा में चल देती है। यह उपन्यास नारी जीवन के अधूरेपन को लेकर चलता है, जिसमें नारी जीवन के अंतरमंथन को, उसके जीवन की निराशा, छटपटाहट को लेखिका ने सच्चाई के साथ चित्रित किया है। तालिया माँ न बन सकने की कसक और जावेद के साथ अचानक बन गये शारीरिक संबंधों का तनाव लिए एक अधूरी नारी है और अंत में वह अपनी निराशाजनक पराजय, अपने जीवन की असार्थकता को स्वीकार करते हुए जमीला एवं शमीम को जोड़कर किसी अनभिज्ञ दिशा में बढ़ जाती है।

मेहरून्निसा परवेज का 'हर घर' एक मध्यमवर्गीय ईसाई परिवार के आंतरिक टूट पर आधारित उपन्यास है। इसके मुख्य बिन्दु तीन हैं – एलमा, रेशमा तथा आंटी। एलमा तलाकशुदा युवती है, जो जीवनपर्यन्त आघात सहती रहती है। उसपर दमे की जानलेवा रोग झेलती हुई एकाएक लड़खड़ा जाती है। जब उसका भाई चंद सिक्कों के लिए उसे होटल के एक अंधेरे कमरे में भेज देता है, जहाँ वह बिना किसी प्रतिवाद के भद्दे और घिनौने 'बॉस' की कामना तृप्त करती रहती है। इसके विपरीत रेशमा अपने हिंदू प्रेमी की प्रेमिका तथा एक बच्चे की बिनब्याही माँ होते हुए भी पश्चाताप के स्थान पर अधिकारों की माँग करती है। एलमा का बिना प्रतिरोध के घिनौनी स्थितियों को सहते चला जाना गले से उतरता नहीं। रेशमा इसकी अपेक्षा में अधिक सशक्त पात्र है। एलमा जहाँ बिना कुछ पा, सब खोती चली जाती है, वहाँ रेशमा बिना कुछ खो, सब कुछ पाने का सार्थक प्रयत्न करती है।

शकील सिद्दिकी

विभाजन के दो वर्ष बाद जन्मे हिंदी के सुपरिचित कथाकार शकील सिद्दिकी को उर्दू-हिंदी के बीच एक सम्पर्क के रूप में जाना जाता है। उन्होंने मौलिक लेखन के साथ ही उर्दू की अनेक महत्त्वपूर्ण व चर्चित कृतियों का हिंदी अनुवाद भी किया। मिर्जा हादी रूस्वा के लोकप्रिय उपन्यास 'उमराव जान अदा' के श्रेष्ठ

अनुवाद के अतिरिक्त उन्होंने जमीला हाशमी के दो महत्त्वपूर्ण उपन्यासों, गुलाम अब्बास की लम्बी कहानी 'आनंदी' जिस पर बाद में 'मंडी' फिल्म बनी पाकिस्तान में कम्युनिस्टों के दमन पर आधारित मेजर इसहा़क की रिपोर्ट 'एक कम्युनिस्ट का कत्ल', फ़हमीदा रेयाज के लघु उपन्यास 'गोदावरी' तथा नवाब बाजिद अली शाह की दुर्लभ आत्मकथा 'परीखाना' का भी हिंदी रूपान्तरण किया।

असगर वजाहत

असगर वजाहत का जन्म 5 जुलाई 1946 को फतेहपुर, उत्तर प्रदेश, भारत में हुआ था। उन्होंने अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय से हिंदी में एम.ए. तक की पढ़ाई की एवं वहीं से पी-एच.डी. की उपाधि भी पायी। पोस्ट डॉक्टोरल रिसर्च जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, दिल्ली से किया। 1971 से जामिया मिल्लिया इस्लामिया, दिल्ली के हिंदी विभाग में अध्यापन किया। 5 वर्ष ओत्वोश लोरांड विश्वविद्यालय, बुडापेस्ट, हंगरी में भी अध्यापन किया। यूरोप और अमेरिका के कई विश्वविद्यालयों में उनके व्याख्यान हो चुके हैं।

असगर वजाहत द्वारा लिखित 'जिन लाहौर नई देख्या वो जन्म्या ही नई' सबसे प्रसिद्ध नाटक है जिसका प्रदर्शन भारत के कई शहरों में हुआ। वाशिंगटन, सिडनी, कराची और लाहौर में भी इसे दिखाया गया। अंग्रेजी और अन्य भारतीय भाषाओं में इसके अनुवाद हुए हैं।[2]

अब्दुल बिस्मिल्लाह

अब्दुल बिस्मिल्लाह का जन्म 5 जुलाई 1949 ई. को इलाहाबाद जिले के बलापुर नामक गाँव में हुआ। अब्दुल बिस्मिल्लाह की माँ ने तीन बच्चों को जन्म दिया किंतु उनमें से कोई भी जीवित न रहा। इसीलिए अब्दुल बिस्मिल्लाह के जन्म के समय वह अत्यंत चिंतित थी। गाँव में एक फकीर ने माँ को दुआ दी तुम्हारा बेटा इकबाल-मंद (तेजस्वी) हो और यह भी कहा कि इसका नाम 'बिस्मिल्लाह' रखना। अत: माँ ने अपने बेटे का नाम बिस्मिल्लाह रख दिया। आगे चलकर जब उन्होंने स्कूल में प्रवेश पाया तब उन के गुरुजन ने उनके नाम के आगे 'अब्दुल' जोड़ दिया। इस तरह वे अब्दुल बिस्मिल्लाह के नाम से पुकारे जाने लगे।[3]

अब्दुल बिस्मिल्लाह को बचपन में पारिवारिक सुख नहीं मिला। आठ साल की उम्र में उनकी माता का देहांत हो गया। उसके बाद पिताजी अब्दुल बिस्मिल्लाह को मध्यप्रदेश से अपना सारा कारोबार खत्म कर के बलापुर ले आए। बलापुर में रिश्तेदारों के पास रहकर उनके दुर्व्यवहार को सहना पड़ा। पिताजी कुछ काम नहीं करते थे अत: बचपन से ही अब्दुल बिस्मिल्लाह को दूसरों के घर में काम करना पड़ा। पढ़ने-लिखने की उम्र में वे बकरियाँ चराना, पानी लाना, लकड़ियाँ लाना आदि काम किया करते। इस तरह आर्थिक अभाव में उन्होंने अपना बचपन गुजारा। अब्दुल बिस्मिल्लाह की प्रारंभिक शिक्षा मध्यप्रदेश के मंडला जिले में हुई। माता-पिता के स्वर्गवास के बाद हाईस्कूल से लेकर बी.ए. तक की शिक्षा मिर्जापुर (उ. प्र.) में हुई। अब्दुल बिस्मिल्लाह ने रिश्तेदारों के यहाँ आश्रय पाकर उनकी सेवा कर के हाईस्कूल की शिक्षा पूर्ण की। महाविद्यालयीय शिक्षा के लिए उन्हें कई छोटी-मोटी नौकरियाँ करनी पड़ी। इलाहाबाद विश्वविद्यालय से हिंदी साहित्य में एम.ए. तथा डी. फिल. की उपाधियाँ प्राप्त की। डी. फिल. के गुरु कवि जगदीश गुप्त रहे। यह उपाधि 'मध्यकालीन हिंदी काव्य में सांस्कृतिक समन्वय' विषय पर प्राप्त की।

असमत फातेमा नामक पढ़ी-लिखी, सुशिक्षित तथा संस्कारी महिला के साथ अब्दुल बिस्मिल्लाह का विवाह हुआ। उनके तीन बच्चे-दो लड़कियाँ शिरी और इकरा तथा एक लड़का हिलाल है। अब्दुल बिस्मिल्लाह के नौकरी की शुरुआत पत्रकारिता से हुई, 'माया' के संपादकीय विभाग में उन्होंने काम किया। फिर एक दो स्थानों पर अध्यापकी करते हुए बनारस पहुँचे। वहाँ एक कॉलेज में दस साल तक पढ़ाया। उसी दौरान शिक्षक आंदोलन में सक्रिय भागीदारी के चलते जेल जाना पड़ा। बनारस से ही 'कदम' नामक एक पत्रिका भी निकाली। सन् 1984 से केंद्रीय विश्वविद्यालय जामिया मिल्लिया इस्लामिया, नई दिल्ली के हिंदी विभाग में प्राध्यापक के रूप में कार्यरत थे।

अब्दुल बिस्मिल्लाह ने ट्यूनिशिया में संपन्न अफ्रो-एशियाई लेखक सम्मेलन में भाग लिया। उन्होंने सोवियत संघ की यात्रा की। अतिथि अध्यापक के रूप में पोलैंड में तीन साल तक कार्य किया। उनके विचार प्रगतिशील धारा से जुड़े हुए रहे। अब्दुल बिस्मिल्लाह नाम से ही धार्मिक कट्टरता का आभास होता है लेकिन बिस्मिल्लाह जी बिल्कुल धार्मिक वृत्ति के नहीं हैं। उनके सहयोगी कहते हैं कि 'वे धार्मिक नहीं हैं। पहले वे रोजा-नमाज के पाबंद थे लेकिन अब वे

ईद-बकरीद के अलावा नमाज नहीं पढ़ते। वे धार्मिक रूढ़ियों से ऊपर उठे हुए हैं, इसलिए पोंगापंथियों की तरह होली और दीवाली मनाने में परहेज नहीं करते। उन्होंने दुनिया के सभी प्रमुख धर्मग्रंथों का पारायण किया है इसलिए वे उनकी बारीकियों से अच्छी तरह परिचित हैं।

अब्दुल बिस्मिल्लाह 'आज' को बेहतर से बेहतर ढंग से जीने में विश्वास रखते हैं क्योंकि कल क्या होगा, कोई नहीं जानता। उन्हीं का एक दोहा है-

'हार जीत का ठीक नहीं है, अजब सफर का खेल।

ना जाने किस टेसन जाकर रुक जा, ये रेल॥'

अब्दुल बिस्मिल्लाह के लेखन की शुरुआत कविता और कहानी दोनों में एक साथ हुई। प्रारम्भ में उनकी कहानियों का विषय प्रेम हुआ करता था। अपने प्रारम्भिक रचनाकाल में वे बंगला के शरतचंद्र और हिंदी के जयशंकर प्रसाद से प्रभावित हुए। इसलिए उनकी आरम्भिक प्रेम कहानियों में प्रेम को भावात्मक धरातल पर अभिव्यक्ति मिली है। इस संग्रह की प्रेमपरक कहानियाँ मादा सारस की कातर आँखें, पटाक्षेप, जीनिया के फूल और दावत प्रमुख हैं। 'दावत' अब्दुल बिस्मिल्लाह की प्रारम्भिक कहानी होते हुए भी वस्तु और शिल्प की दृष्टि से सशक्त है।[4]

'मुखड़ा क्या देखे' उपन्यास किसी विशेष गाँव या विशेष पात्रों की कथा न होकर सामान्य भारतीय जनमानस की कथा है। इस उपन्यास को बहुसंख्यक अथवा अल्पसंख्यक समाज की दृष्टि से भी नहीं देखा जा सकता।

भारतवर्ष बहुजातीय, बहुधार्मिक और बहुभाषायी देश है। हिंदी में ऐसे अनेक उपन्यास आए हैं, जो या तो बहुसंख्यक समाज की कहानी कहते हैं या फिर अल्पसंख्यक समाज की, लेकिन 'मुखड़ा क्या देखे' समग्र भारतीय समाज की कहानी कहता है, जिसमें संपन्न वर्ग के हिंदू और मुसलमान दोनों मिलकर हिंदू 'परजा' और मुसलमान 'परजा' का शोषण करते हैं।

अब्दुल बिस्मिल्लाह के लेखन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे जिस विषय पर लिखते हैं उसमें आकंठ डूब जाते हैं। यही कारण है कि इस उपन्यास में जिस प्रामाणिकता के साथ उन्होंने मुसलमान रीति-रिवाजों का चित्रण किया है, उसी प्रामाणिकता के साथ हिंदू और ईसाई समुदाय के रीति-रिवाजों का भी

चित्रण किया है। अर्थात् पिछले बीस वर्षों में आए हिंदी उपन्यासों में शायद पहली बार ऐसा हुआ है कि हिंदी में लिखा गया यह उपन्यास समूचे भारतीय समाज का प्रतिनिधित्व करता है। इसकी अंतर्वस्तु और शिल्प पर ठेठ देसी रंगों एवं संस्कारों की गहरी छाप है।

विरासत अगर संघर्ष की हो तो उसे अगली पीढ़ी को सौंप देने की कला सिखाता है – अब्दुल बिस्मिल्लाह का उपन्यास – **'झीनी झीनी बीनी चदरिया'।** इस उपन्यास को लिखने से पहले दस वर्षों तक अब्दुल बिस्मिल्लाह ने बनारस के बुनकरों के बीच रहकर उनके जीवन का अध्ययन किया, जिसके कारण इस उपन्यास में बुनकरों की हँसी-खुशी, दुख-दर्द, हसरत-उम्मीद, जद्दोजहद और संघर्ष... यानी सब कुछ सच के समक्ष खड़ा हो जाता है आईना बनकर – यही इस उपन्यास की विशेषता है। बनारस के बुनकरों की व्यथा-कथा कहनेवाला यह उपन्यास न केवल सतत् संघर्ष की प्रेरणा देता है बल्कि यह नसीहत भी देता है कि जो संघर्ष अंजाम तक नहीं पहुँच पाए उसकी युयुत्सा से स्वर को आनेवाली पीढ़ी तक जाने दो।

इस प्रक्रिया में लेखक ने शोषण के पूरे तंत्र को बड़ी बारीकी से उकेरा है, बेनकाब किया है। भ्रष्ट राजनीतिक हथकंडों और बेअसर कल्याणकारी योजनाओं का जैसा खुलासा 'झीनी झीनी बीनी चदरिया' की शब्द-योजना में नहीं, बल्कि अभिव्यक्ति की कलात्मकता में है जिसके फलस्वरूप इसके पात्र रऊफ चचा, नजबुनिया, नसीबुन बुआ, रेहाना, कमरुन, लतीफ, बशीर और अल्ताफ उपन्यास की पंक्तियों में जीवन्त हो उठते हैं और उनका संघर्ष बरबस पाठकों की संवेदना बटोर लेता है। वस्तुत: इस उपन्यास के माध्यम से हम जिस लोकोन्मुख सामाजिक यथार्थ से रूबरू होते हैं, जिस परिवेश की जीवन्त उपस्थिति से गुजरते हैं, उसका रचनात्मक महत्त्व होने के साथ ही ऐतिहासिक महत्त्व भी है।

बिस्मिल्लाह जी की 'दो पैसों की जन्नत' नाटक सन् 1997 में प्रकाशित हुआ। इस में चार नाटक संकलित हैं-

1. दो पैसे की जन्नत
2. कागज का घोड़ा
3. कलियुग का रथ

4. जनता खुद देखेगी

बहुचर्चित कथाकार अब्दुल बिस्मिल्लाह का रचना-कर्म आज के ज्वलंत सामाजिक सवालों से जुड़ा हुआ है और 'अतिथि देवो भव' में शामिल कहानियाँ उनकी इस रचनात्मक प्रतिबद्धता को और अधिक गहरा करती हैं। कहानियों की इस दुनिया में प्रवेश करते हुए हम भारतीय समाज के विभिन्न तबकों, संस्कारों और परंपराओं से जुड़े कुछ ऐसे चरित्रों से परिचित होते हैं, जिन्हें व्यक्तियों के बजाय सहज ही मानव-मूल्यों की संज्ञा दी जा सकती है। ऐसे चरित्रों में 'अलिया धोबी और पाव-भर गोश्त' का अलिया, 'पुण्यभोज' का खुदाबकस, 'खाल खींचनेदाले', का भुनेसर, 'नर-लीला' की कमली', 'सुलह' का महादेव, 'यह कोई अन्त नहीं' का सरवर और 'दूसरा सदमा' के गुलामू चचा विशेष उल्लेखनीय हैं।

इन कथा-चरित्रों की शक्लें और कार्य-व्यवहार भले ही अनेक हों, लेकिन अपने इर्द-गिर्द क्रियाशील अमानवीय तंत्र के विरुद्ध उनका गुस्सा और संघर्ष एक है। वर्तमान व्यवस्था के मानव-विरोधी स्वरूप को वे जिस प्रकार महसूस करते हैं और पहचानते हैं- वह न केवल उन्हें, बल्कि इन कहानियों को भी अविस्मरणीय बना देता है। इनके अलावा कुछ कहानियाँ ऐसे चरित्रों को भी सामने लाती हैं, जो पोर-पोर लंपटता से भरे हैं और आधुनिक जीवन-स्थितियों से परिचालित मानव-स्वभाव के संदर्भ में कई स्तरों पर विद्रूप पैदा करते हैं। वस्तुत: अपने वर्तमान से सीधे साक्षात्कार के लिए भी इन कहानियों को उसी सहजता से ग्रहण किया जा सकता है, जिस सहजता से ये लिखी गई हैं।[5]

अनवर सुहैल

09 अक्टूबर 1964 को छत्तीसगढ़ के जांजगीर में जन्में अनवर सुहैल जी के अब तक दो उपन्यास, तीन कथा संग्रह और एक कविता संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। कोल इण्डिया लिमिटेड की एक भूमिगत खदान में पेशे से वरिष्ठ खान प्रबंधक हैं। संकेत नामक लघुपत्रिका का सम्पादन भी कर रहे हैं।

अनवर सुहैल जी से मेरा पहला परिचय 'असुविधा' पत्रिका के माध्यम से हुआ। उसके बाद से यत्र-तत्र मैं उनकी कविताएं, पढ़ता ही रहा हूँ। उनकी कविताओं की सहज संप्रेषणीयता और नए जीवनानुभव मुझे आकर्षित करते रहे

हैं। अब तक उनके तीन कविता संग्रह आ चुके हैं। उन्होंने अपनी कविताओं में बदलते समय और समाज की हर छोटी–बड़ी दास्तान और जीवन के विविध पहलुओं को दर्ज किया है पर मुझे उनकी कविताओं का सबसे प्रिय स्वर वह लगा जिसमें वे खादान जीवन से अनुस्यूत अपने अनुभवों को अपनी कविताओं की अंतर्वस्तु बनाते हैं।

काव्य लेखन

उसने अपनी बात कही तो

उसने अपनी बात कही तो

भड़क उठे शोले

गरज उठी बन्दूकें

चमचमाने लगीं तलवारें

निकलने लगी गालियाँ

उसने मुझसे कहा

उसने मुझसे कहा

ये क्या लिखते रहते हो

गरीबी के बारे में

अभावों, असुविधाओं,

तन और मन पर लगे घावों के बारे में

दहशतगर्द

अरे भईया, गजब हो गया! ईसा मियां का बेटा मुसुआ ससुरा आतंकवादी निकल गया।

नगर के सबसे पुराने धुनिया ईसा मियां का बेटा मूसा उर्फ मुसुआ और आतंकवादी...

कुंजड़-कसाई

'कुंजड़-कसाइयों को तमीज कहाँ... तमीज का ठेका तो तुम्हारे सैयदों ने जो ले रक्खा है,' मुहम्मद लतीफ कुरैशी ऊर्फ एम एल कुरैशी

बहुत कम बोला करते। कभी बोलते भी तो कफन फाड़कर बोलते। ऐसे कि सामने वाला खून के घूँट पीकर रह जाए।

संदर्भ-ग्रन्थ सूची

1. गुलशेर खाँ शानी, काला जल, पृ - 22,26,28
2. असगर वजाहत के आठ नाटक, किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली, सजिल्द संस्करण-2016, पृष्ठ - 7
3. डॉ. गौरव तिवारी, मुस्लिम उपन्यासकार, परिवेश और उपन्यास - पृष्ठ -166
4. व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृष्ठ-13, मुस्लिम समाज जीवन और अब्दुल बिस्मिल्लाह के उपन्यास- डॉ. बाबा साहेब रसूल शेख।
5. अब्दुल बिस्मिल्लाह, अतिथि देवो भव, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1990, अंतरावरण पृष्ठ।

परिशिष्ट-IV

मुस्लिम हिंदी साहित्यकार एवं उनकी रचनाएं

(**नोट :** इस परिशिष्ट को गंगा प्रसाद सिंह विशारद द्वारा संग्रहित पुस्तक 'हिंदी के मुसलमान कवि' के आधार पर तैयार किया गया है। इसके प्रकाशक दुर्गाप्रसाद खत्री प्रोप्राइटर लहरी बुक डिपो, काशी है। प्रकाशन वर्ष : 1926)

आदिकाल

अब्दुल रहमान : संदेश रासक

अमीर खुसरो : खालिकबारी, खुसरो की पहेलियां, मुकरिया, शृंगारी, दो सुखने, गजल, ख्याल, कव्वाली, रुबाई।

मध्यकाल (भक्ति एवं रीति)

कबीर - सुख निधान, गोरखनाथ की गोष्ठी, कबीर पांजी, बलख की रमैनी, आनंद राम सागर, रामानंद की गोष्ठी, शब्दावली, मंगल, बसंत, होली, रेखता, झूलन, कहरा, हिंदोल, बारहमासा, चांचर, चौतीसी, अलिफनामा, रमैनी, साखी, बीजक।

मंझन - नख शिख, ऋतु वर्णन।

कमाल (कबीर का पुत्र) - कालीदास हजारा में कविताएं संग्रहित।

मलिक मुहम्मद जायसी - (कुल 21 रचनाएं) प्रमुख रचनाएं- पद्मावत, अखरावट, आखिरी कलाम, कहरनामा, चित्ररेखा, कान्हावत।

रज्जब - रज्जब जी की बानी।

बादशाह अकबर - चार कविताएं लिखी।

तानसेन - संगीतसार, रागमाला, श्री गणेश स्तोत्र।

रहीम - रहीम सतसई, वरवै नायका भेद, मदनाष्टक, रासपंचाध्यायी, शृंगार सोरठा।

शेख सादी - रेखता, सवैया, भुजंग प्रयात (फुटकर कविता)।

रसखान - सुजान रसखान, प्रेमवाटिका।

कुतुबन शेख – मृगावती।

आलम – आलम केलि, माधवा नल काम कंदला, आलम की स्फुट कविता।

शेख रंगरेजिन – शिव के प्रति, दुर्गा के प्रति, गंगा वर्णन, दीनता, कवित्त।

रूपवती बेगम – एक दोहा।

मोहम्मद जलालुद्दीन – इनके छंद हजारा में मिलते हैं।

मुबारक – तिलशतक, अलक शतक।

जहांगीर – राग कल्प द्रुम में स्फुट पद मिलते हैं।

जमाल – जमाल पचीसी।

कादिर बक्स – कुछ स्फुट छंद।

शहरयार – एक कवित्त।

अहमद – रस विनोद नामक कोकशास्त्र।

उसमान – चित्रावली।

शाहजहां – रागकल्पद्रुम में कुछ कविताएं।

ताहिर – एक कोकसार।

औरंगजेब – रागकल्पद्रुम में कुछ कविताएं।

ताज – गणेश स्तुति, सरस्वती समाराधन, भवानी वंदना, हरदेव जी की प्रार्थना, दशावतार, बारहमासा, होरी–फाग पर कविताएं।

बहादुर शाह जफ़र – पहेली, पद, भैरवी, चौताल

हुसन – हजारा में इनके छंद।

रसलीन – अंगदर्पण, रस प्रबोध।

अब्दुल रहमान – यमक शतक।

अहमदुल्लाह – दक्षण विलास।

नूर मोहम्मद – इन्द्रावती।

अली मुहिब्ब खां – खटमल बारसी (हाव्य कविता)

महताब – नखसिख।

प्रेमी यमन - अनेकार्थ माला।

दीन हरवेश - दीन प्रकाश।

इंशा अल्लाह खां - उदयभान चरित, रानी केतकी की कहानी।

आजम - नख शिख, षट ऋतु।

हफीजुल्ला खां - नवीन संग्रह, हजारा, प्रेम तरंगिनी, मनमोहनी, रसिक संजीवनी।

नजीर - कुल्लियाते नजीर में संग्रहित।

करीब बख्स - नगमये मोहब्बत पुस्तक में संग्रहित।

तेग अली - बदमाश दर्पण।

आधुनिक काल

सैय्यद अमीर अली 'मीर' : बूढ़े का ब्याह, बच्चे का ब्याह, नीति दर्पण, सदाचारी बालक, काव्य संग्रह, गद्य लेख माला।

सैय्यद छेदाशाह - ज्ञानोपदेश शतक, पुरुषार्थ प्रकाश, क्षत्रिय भेंट, काव्य शिक्षा सटीक 3 भाग, श्रीकान्यकुब्ज पुष्पांजलि, भक्ति पंचाशिका, करुणा बत्तीसी, हरगंगा रामायण सात कांड, काव्य शिक्षा सटीक 12 भाग, गंगा पंचाशिका, श्रीकृष्ण पंचााशिका, मारकंडेय वंशावली, आनंद प्रकाश, पंडा पचीसी, कुंती का संदेश, विदुषी बाला काव्य, बाबा काव्य, नीति, क्षत्रिय माला, टीका भगवद्गीता (आत्मबोध), नवरस काव्य संग्रह, शोक प्रकाश, लव-कुश वीरता।

स्वातंत्र्योत्तर रचनाकार

राही मासूम रजा - (1 सितंबर, 1927 - 15 मार्च 1992)।

उपन्यास - आधा गांव, दिल एक सादा कागज, ओस की बूंद, हिम्मत जौनपुरी, नीम का पेड़, कटरा बीआर्जू, टोपी शुक्ला, सीन 75

जीवनी - छोटे आदमी की बड़ी कहानी।

महाकाव्य - क्रांति कथा

गुलशेर खां शानी - (16 मई, 1933 - 10 फरवरी, 1995)।

कहानी संग्रह - बबूल की छांव, डाली नहीं फूलती, छोटे घेरे का विद्रोह, एक से मकानों का नगर, युद्ध, शर्त का क्या हुआ? बिरादरी तथा अन्य कहानियां, सड़क पार करते हुए, जहां पनाह, जंगल,

उपन्यास - कस्तूरी, पत्थरों में बंद आवाज, काला जल, नदी और सीपियां, सांप और सीढ़ी।

संस्मरण - शालवनों का द्वीप

निबंध संग्रह - एक शहर में सपने बिकते हैं, नैना कभी न दीठ।

संपादन - साक्षात्कार (साहित्यिक पत्रिका), समकालीन भारतीय साहित्य, कहानी।

मेहरुन्निसा परवेज - (10 दिसंबर, 1944 जन्म)।

उपन्यास - आंखों की दहलीज, कोरजा, अकेला पलाश, समरांगण और पासंग।

कहानियां - आदम और हव्वा, टहनियों पर धूप, गलत पुरुष, फाल्गुनी, अंतिम पढ़ाई, सोने का बेसर, अयोध्या से वापसी, एक और सैलाव, कोई नहीं, कानी बाट, ढहता कुतुबमीनार, रिश्ते, अम्मा और समर।

शकील सिद्दीकी - (18 जुलाई, 1949 जन्म)

अनुवाद - उमराव जान अदा, अतिशे रफ्ता, बेजुबान आंखें, गोदावरी, अंधेरा पग, परी खाना, रामलाल की चुनिंदा कहानियां, रशीद जहां की कहानियां, अंगारे, अब इंसाफ होने वाला है।

संपादन - आदमी और अदीब, सज्जाद जहीर और तरक्की, पसंद तहरीक, जंग-यह आत्महत्या का रास्ता है, विरासत 1857।

असगर वजाहत - (जन्म, 5 जुलाई 1946)

कहानी संग्रह - अंधेरे से, दिल्ली पहुंचना है, स्विमिंग पूल, सब कहां कुछ, मैं हिंदू हूं, मुस्लिम काम, डेमोक्रेशिया, भीड़तंत्र।

नाटक - फिरंगी लौट आये, इन्ना की आवाज, वीरगति, समिधा, जिस लौहार नहीं देख्या ओ जन्याइ नई, अकी, गोडसे @ गांधी.कॉम, पाकिटमार रंगमंडल, सबसे सस्ता गोश्त।

उपन्यास - सात आसमान, पहर-दोपहर, कैसी आगी लगाई, बरखा रचाई, धरा अंकुराई, गजरत बरसत, रात में जागने वाले, मनमाटी।

यात्रा वृतांत – चलते तो अच्छा था, पाकिस्तान का मतलब क्या, रास्ते की तलाश में, दो कदम पीछे भी।

निबंध – सफाई गंदा काम है, ताकि देश में नमक रहें।

संस्मरण : कथा से इतर

आलोचना – हिंदी-उर्दू की प्रगतिशील कविता।

अब्दुल बिस्मिल्लाह (जन्म 5 जुलाई, 1949)।

उपन्यास – झीनी झीनी बीनी चदरिया, मुखरा क्या देखे, समर शेष है, जहरबाद, दंतकथा, अपवित्र आख्यान, रावी लिखता है, कुठाव।

कविता संग्रह – मुझे बोलने दो, छोटे-छोटे बुतों का बयान, वली मोहम्मद और करीमन बी की कविताएं, कविता फिर लिखी जाएगी, दुर्दिनों में कविता।

कहानी संग्रह – अतिथि देवो भव, रफ रफ मेल, कितने-कितने सवाल, रैन बसेरा, टूटा हुआ पंख, जीनिया के फूल, शादी का जोकर।

नाटक – दो पैसे की जन्नत।

दोह संग्रह – किसके हाथ गुलेल।

आलोचना – विमर्श के आयाम, अल्प विराम, मध्यकालीन हिंदी काव्य में सांस्कृतिक समन्वय, उत्तर आधुनिकता के दौर में।

अनवर सुहैल (जन्म 9 अक्टूबर 1964)।

उपन्यास – पहचान।

कहानियां – कुंजड़-कसाई, ग्यारह सितंबर के बाद, गहरी जड़ें, नसीबन, पुरानी रस्सी, पीरू हज्जाम उर्फ हजरत जी।

कविताएं – अंडर टेस्टिंग, भूपत के खपरे, मार्केट वैल्यू, स्मार्ट-सिटी।

नासिरा शर्मा – (जन्म 1948)।

उपन्यास – सात नदियां एक समंदर, शाल्मली, ठीकरे की मंगनी, जिंदा मुहावरे, अक्षय वट, कुइयांजान, जीरो रोड, पारिजात, अजनवी जजीरा, कागज की नाव।

कहानी संग्रह – पत्थर गली, संगसार, इब्ने मरियम, शामी कागज, शबीना के चालीस चोर, खुदा की वापसी, इस्सानी नस्ल, दूसरा ताजमहल, जहां फव्वारे लहू रोते हैं, बुतखाना।

बाल साहित्य – संसार अपने-अपने (नाटक)।

मंजूर एहतेशाम (3 अप्रैल, 1948–26 अप्रैल 2021)

उपन्यास – कुछ दिन और, सूखा बरगद, दास्तान-ए-लापता, बशारत मंजिल, पहर ढलते।

कहानी संग्रह – तसबीह, तमाशा।

नाटक – एक था बादशाह

मुज़ीब रिज़वी (14 मई, 1934 – 24 मई, 2015 ई.)।

रचनाएं – सब लिखनी के लिखु संसारा : पद्मावत और जायसी की दुनिया, पीछे फिरत कहत कबीर, कबीर।

डॉ. नज़ीर मुहम्मद (जन्म 31 जुलाई 1930 ई.)।

प्रमुख रचनाएं – कबीर के काव्य रूप, संत साहित्य का अभिव्यंजनापरक अध्ययन, एकता के चरण, नज़ीर ग्रंथावली, सर्वधर्म समभाव शतक, दलितोद्धार रामशतक, ब्रजसंस्कृति शतक, एकता के अमरस्वर, उद्बोधनगान चेतना की बदलते स्वर, नीति-नवनीत, महिला सशक्तिकरण, डॉ. जाकिर हुसैन (अनुवाद)।

डॉ. अब्दुल अलीम (जन्म 1959 ई.)।

रचना – नज़ीर अकबराबादी और उनकी विचारधारा।

डॉ. मोहम्मद अलीम दर (जन्म 1971 ई.)।

उपन्यास – जो अमां मिली तो कहां मिली, मेरे नालों की गुमशुदा आवाज, एक मुसाफिर की कहानी

नाटक – राबिया, इमादे हिंद : राम

प्रो. शैलेश जैदी (जन्म 16 अग्रस्त 1943)।

प्रमुख रचनाएं – रसलीन के कवित्त (शोधपरक भूमिका, संपादन एवं व्याख्या), हिन्दी शायरी का एक तारीखी जायजा (उर्दू भाषा में), चांद के पत्थर (कविता संग्रह), बिलग्राम के मुसलमान हिंदी कवि (पी-एचडी. का शोध -प्रबंध), तुलसी काव्य की अरबी फारसी शब्दावली : एक सांस्कृतिक अध्ययन, हिंदी के कतिपय मुसलमान कवि, मानस और मानसकार (संपादन), प्रेमचन्द की उपन्यास यात्रा : नवमूल्यांकन (प्रकाशित ग्रंथ पर अ. मु. वि. की डी. लिट्. उपाधि से सम्मानित) सूरज एक सलीब (कविता संग्रह), गोदान एक

नव्य दृष्टि, हंसी फूटने के बाद (कविता संग्रह), कोयले दहकते हैं (ग़ज़ल संग्रह), अब किसे बनवास दोगे (आधुनिक संदर्भों में राम कथा पर आधारित खण्ड काव्य), अलखबानी (फारसी में लिखित शेख अब्दुल कुद्दूस गंगोही की प्रसिद्ध पुस्तक रुश्दनामा का डेढ़ सौ पृष्ठों की भूमिका सहित हिंदी अनुवाद एवं संपादन), अ डेस्क्रिप्टिव कैटलॉग ऑफ परशिअन मैनस्क्रिप्ट्स ऑफ मौलाना आज़ाद लाइब्रेरी, अलीगढ़ ऑन हिंदू रेलीजन (अंग्रेजी भाषा में), सूरदास के रूहानी नगमें (सूरदास के 101 पदों का काव्यानुवाद), सैयद अहमद खां और उनका युग।

मध्यकाल के कवि जिनकी रचनाएं उपलब्ध नहीं या उनका समय ज्ञात नहीं है

मीर रुस्तम	अनिस
मुहम्मद	खान सुल्तान
जैनुद्दीन मुहम्मद	फकीरुद्दीन
दरिया साहब	मसऊद
यारी साहेब	कुतुब अली
करीम	अकरम फैज
आदिल	फैजी
महबूब	फहीम
अब्दुल जलील	मुल्ला दाऊद
आजमशाह	इब्राहीम आदिल शाह (नौरस)
मोहम्मद शाह	इब्राहिम सैय्यद
जुल्फिकार	काजीकदम
तालिब शाह	दराशाह (दोहास्तव संग्रह, सार संग्रह)
तालिब अली	दानिशशमन्द खां
नेवाज	आसिफ खां
लतीफ	करीब
कारेखां फकीर	याकूब खां (रसभूषण)
रसिया	रहीम

युसुफ खां
मीर अहमद
किशवर अली (सार चंद्रिका)
अकबर खां (योग दर्पण सार)
अनवर खां (अनवर चंद्रिका)
आजम खां (श्रृंगार दर्पण)
अखतर
अजब रंग
अजमत
अजमेरी
अजीज दीन
अफसोस
अलमस्त
अल्ली
आलम
आशक
इमदाद
इश्कदीन
इशक
उल्फत राय राजा ''मस्तपिया''
(रोबाब मगनी)
कदर
काजिम
काजम वा कायम
कादर करीम
कुतुब
खलील
खालस

खुशहाल
खैराशाह
दताबां
दादन
नज़्म
नज़ीर
नबी
निजामी
निजामुद्दीन औलिया
नूर
फकीर हुसेन शाह
फरहत
फाज़िल अली (फाजिल अली प्रकाश)
बाजिन्द
मकसूद
मुलतान आलम
मीरन
मुश्तरी
मौजदीन शाह
वहजन
वहाब
वाहिद
लतीफ हुसैन
शाद
सनद
सुन्दर कली
सुलनान
सैयद

बरकतुल्ला	शह तुराब अली (काकोरी)
हकीम हाजी अली खां	यकरंग
हाफिज	आशी
हामिद्	लालदास
हिम्मत खां	खिरदमंद अली
हुसैन शाह	मंसूर
हैदर	काजी अशरफ महमूद

'रागकल्पद्रुम' में उल्लेखित कुछ अन्य मध्यकालीन मुस्लिम कवि

अचपल मौज	आगर
अजब	आगा मोतुमदौलासखी बहादुर
अजीब	आनन्द रंग
अलह्दाद	आलमगीर
अदारंग	आलम मदतशाह
अनलहक	आलम शाह
अनलहक चिस्ती	आली
असीर खां	आली भागी
अम्बिया शेख	आवासी जी
अलावदीन शाह	आशक रंग
अलीमन	आशिक
अली अकबर हसन	आसफुद्दौला
अली गुलामशाह हासानी	आसान शेष
अली सूरतजा	आलम हुसेन
अली अहमदाली	आरिफ
असगर अली खां	आसिफ
अहमद शाह	इच्छा बरस

इनायत अली	कुतुब मूलक
इमाम खां	ख्वाजा मौजुद्दीन कुतुबुद्दीन
इमाम बख्श	ख्वाजादीन शकर गंज
इमान दीन	ख्वाजामीर
इलतमास	ख्वाजा हसन
इब्राहिम	ख्याल खुशाल
इबलीस	ख्वाजा कुतुब
इन्शा	ख्वाजा खिदर
इसन्ना शाह काजी	खान आलम (नव्वाब)
इसफ सने	खिजर
ईशक मोहम्मद	खुशरंग
इश्क रंग	गफूर
उदोत सेन	गबरू
उमर बक्स	गाजी
उश्शाक	गामू
एगाजुद्दीन हैदर	गुजर
औसान	गुलशन पीर
कबीर खां	गुलामी
कलंदर शाह	चांदशाह
कसम साहेब	छजुखां
कायम खां	जग्नूमग्नू खां
काले मिर्जा	जलालदीन
कासम शाह	जलालदीन मोहम्मद गाजी
काजी अकरम	जलालदीन मोहम्मद बाकर
कीरत शाह	जलाल मोहम्मद शाह
कुतुबुद्दीन	जहूर

जलील	नाजामदीन
जान जाना	नाशर खां
जालिम	नासर पीर
जाफर खां	निजामुद्दीन औलिया (सुल्तान)
जाफर सादक	निशात
जाफर पीर	निजामुद्दीन चिस्ती
जिन्द	निजामी औलिया
जीवन खां	निजामुद्दीन
जुलकर नैन	नेवाज खां
जैनुद्दीन	न्यामत खां
जैनलावदीन	पंथी (मिरजा रोशन जमार)
तान प्रवीन	पान खां
तान वर	पीर मुरतजा अली
तान बरस	प्यार खां
दरिया खां	प्रेम जान
दिलरंग	प्रेमी (शाह बरकत)
दिलाराम	फरीद
दिलारामह	फजायल खां
दुलेखां	फरीद शकर गज
दौलत खां	फजअली
नज़ीर	फारातुला
नबी	बक्स साकिल
नजफशाह मूरतजा	बद्रूद्दीन मीर
नवल अजब	बहराम खां
नरीम मोहम्मद	बाकर खां
नसीरूद्दीन	बांक वरस

बाग बहार
बासद खां
बाणी विलास
मजनू
मदत अली
मदन साहब
मदन हैदरी
मनरंग
मर्दान औलिया
मस्तान
महम्मद खां
महम्मद
महम्मद इश्कदा
महम्मद मेदी साहब जमान
मदनायक (निजामुद्दीन बिलग्रामी)
मलिक नूर मोहम्मद
महबूब पीर
महबूब बांदा
मारू जी
मान खां
मियां मिरजा
मीम महोब्बत
मीर रूस्तम
मीर माधो
मुहम्मद बाकर
मुहम्मद नबी

मुबारक हजरत औलिया
मुराद
मुराद अली
मूर खां
सूरत शाह अली
मूरतजा
मेंहदी
मौज
मौजुद्दीन शाह
मौजुद्दीन
मौजुद्दीन अजमेरो
मौजुद्दीन ख्वाजा
मीर अली शाह गुदर
युसुफ
रहीम बक्स
रज्जव अली
रस रंग
रहमतुल्लाह
रहमान
रंग बरस
रंग रस
राग रस खां
शाह जमन
शाह जमाल
शाह जलाल
शाह पणा

शाह बहादुर	सुल्तान दूलह
शाह सवाल	सुल्तान मसादक
शाह मोहम्मद	सुल्तान सलेम
शाह शफी	सुलतानी
शाह हादी	सेख नसीरूद्दीन
शूकर जामी	सेख फरीद
शेख गदाई	सय्यद सालार
शेख मशायक औलिया	सौरोट पेचारे
शेख फरीद	हमदम
शेख शाहजादा	हजरत अली
शेख सलेम	हजरत मिर्जा
सखन मखन	हजरत वर्वा औलिया
सरस रंग	हसुखा
सालार जग	हल खां
शाह आलम	हसन
शाह शिकन्दर	हाफ़िज तुरक
साह जी	हाशम बीजापुरी
साहनशाह पीर	हिम्मद बहादुर (नव्वाब)
साहब किरान शाहेजहां	हिदायत
साह मर्दान	हिदायत आज़िज
साहब खां	हिम्मत
सादी खां	हुमायूं
सुजान अली	धहुसेन मारहरी
सुल्तान अली खां	हुसेनी
सुल्तान इब्राहिम	हुसैन हाली खां